

1.2

परतन्त्रि, करीब

नं- ११०-५

स्मरण भगवत् भाषा

स्वकीयात्वनिराशर्विन्नाः तस्य

परकीयात्वनिरुपपन्नम्

श्रीश्रीराधाकृपाकटाक्षस्तवाजः

आम्नाय-बन्धालयः

परतन्त्रि, करीब

वाराणसी-५

थालय

वाराणसी-५

118

ॐ श्री श्रीगौरहरिजयति ॐ

स्मरणा मंगल भाषा

(श्री गुण मंजरी विरचिता)

आम्नाय-ग्रन्थालय,
कस्तूरिनी, करौली
वाराणसी-६



प्रकाशक

कृष्णदास बाबा,

गवालियर मंदिर, कुसुम सरोवर, (मथुरा)

भूलन पूर्णिमा, सम्बत २०१६

❀ समर्पण-पत्र ❀

— ❀ ❀ ❀ —

भज-निताङ्गौर राधेश्याम ।

जय-हरे कृष्ण हरे राम ॥

परम स्नेहभाजन, हरि-गुरुपरायण, भक्तवर,

नित्यवाम प्राप्त, आगरा निवासी प्रसिद्ध

‘डाक्टर’ गोकुल नारायण जी व्यास

के पुनीत स्मरण में यह ग्रन्थ रत्न

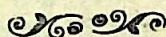
प्रकाशित होकर समर्पित है ।

(कृष्णदास बाबा)

विद्यालय प्रेस, वृन्दावन ।

❀ श्री श्रीगौरहरिजयति ❀

प्राक्कथन



परमाराध्य, श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेव के प्रिय परिकर, रागमार्ग के आदि गुरु श्री रूपगोस्वामी, महोदय ने श्री वृन्दावन विहारी राधागोविन्द की दैनन्दिनी अष्टकालीन लीला का सूत्ररूप बारह श्लोक से निर्माण कर 'स्मरण मंगल स्त्रोत्र' नाम से प्रसिद्ध किया। जिसके आधारभूत ग्रन्थ पद्मपुराण पाताल-खण्डीय वृन्दावन माहात्म्य के ४ अध्याय व सनत्कुमार संहिता का ३६ वाँ पटल है।

सूत्ररूप उन बारह श्लोक को मूलरूप मान कर अथवा उन्हीं का आधार लेकर उनके समसामयिक व परवर्ती गौड़ीय अचार्यों ने बृहत् तथा लघुआकार में अनेक ग्रंथों का निर्माण किया है। जैसा कि श्रीकविकर्ण पर महोदय के द्वारा विरचित "श्रीकृष्णान्हिक कौमुदी, श्रीकृष्णदास कविराजगोस्वामी द्वारा विरचित" "श्री गोविन्दलीलामृत" एवं श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती जी द्वारा निर्मित "कृष्णभावनामृत" ये तीन बड़े बड़े संस्कृत भाषा के ग्रन्थरत्न हैं। संस्कृत साहित्य भण्डार में इनकी काफी प्रसिद्धि है। इन्हीं की सहायता लेकर गौड़ीय वैष्णवों की लीलास्मरण भित्ति बनी हुई है। बंगभाषाभाषी गौड़ीय वैष्णवाचार्यों ने भी संस्कृत न जानने वाले वैष्णवों के लिये विविध पयारादि छन्दबद्ध ग्रन्थ में बंगभाषा में अनेक ग्रन्थ की रचना कर लीलास्मरण करने वाले रसिकों का महान् उपकार किया। उनमें श्रीयदुनन्द-

(ख)

नदास ठाकुर जी के द्वारा रचित गोविन्दलीलामृत ग्रन्थ का अनुवाद श्रीरायशेखर जी की “दण्डात्मिकालीला” एवं नरोत्तम ठाकुर महाशय के “स्मरणमंगल” आदि प्रसिद्ध हैं। इधर हिन्दी भाषा मर्मज्ञ आचार्य गण ने हिन्दी भाषा भाषी रसिक सज्जनों के लिये ब्रज-भाषा पद्य में विविध छन्दों से अनेक महत्व पूर्ण ग्रंथ की रचना की। उनमें से श्री वृन्दावन दास जी कृत “अष्टयाम” दामोदरदास जी कृत “स्मरणमंगलभाषा” श्री मधुसूदन गोस्वामी जी के “स्मरणमंगल” प्रसिद्ध हैं। ये तीन ग्रंथ हमारे द्वारा प्रकाशित भी हो चुके हैं। श्री बलवंत भैयासाहिब (ग्वालियर) का स्मरण मंगल भी बहुत सुन्दर है उसका भी प्रकाशन हो गया है।

पाटना श्रीकृष्णचैतन्य गोस्वामी महाराज के पुस्तकागार में गोविन्दलीलामृत का आनुक्रमिक एक अनुवाद मैंने देखा था गुण मंजरी कृत अष्टकाल सम्बन्धी यह प्रस्तुत “स्मरण मंगल” संक्षिप्त एवं अत्यन्त सरल है। पहले अनेक अनुसंधान करने पर भी यह ग्रंथ मुझे प्राप्त नहीं हुआ था, परन्तु अचानक ही प्रातः स्मरणीय स्वर्गीय श्री राधाचरण गोस्वामी महोदय वृन्दावन के ग्रंथागार से मिल गया। पाटना गुलजारबाग श्री कृष्ण चैतन्य-गोस्वामी जी के पुस्तकालय में भी एक कापी देखने में मिली। ग्रंथकार का परिचय संबंध में कोई विशेष बात ज्ञात नहीं है। उन्होंने अपने इस ग्रंथ में प्रत्येक याम लीला वर्णन के पश्चात्—

“रूपमंजरी पद कमल तिनके करिके ध्यान ऐसा लिखा है। संस्कृत भाषा में विरचित इसके आधार भूत मूल ग्रंथ श्री रूप-गोस्वामी जी के “स्मरण मंगल स्तोत्र” है यह पहले हम कह आये हैं। श्री रूपगोस्वामी ब्रज में रूप मञ्जरी करके विख्यात हैं। श्री मन्महाप्रभु लीला में जो रूपगोस्वामी है वे श्रीकृष्ण लीला में रूप मंजरी थे यह निर्विवाद है।

(ग)

श्री राधाचरणगोस्वामी महोदय की लाईब्रेरी में ग्रन्थकार का नाम रूपमंजरी पड़ा है। इस के प्रत्येक काल के परिशेष में रूप मंजरी की पादपद्मा की गई है। इसी कारण किसी ने भ्रम-वश रूपमंजरी इसके रचयिता ऐसा लिख दिया जो वास्तविक में ग्रन्थ के रचयिता गुणमंजरी जी हैं जो कि 'पटना लाईब्रेरी के ग्रन्थ में लिखा गया है। प्रत्येक काल की लीला के पश्चात् रूपमंजरी के नाम से वन्दना करते हुए उक्त काल आख्यान की पूर्ति का जो उल्लेख किया गया है वह रचयिता की मौलिक रचना नहीं हैं परन्तु श्री नरोत्तमठाकुर महाशय के द्वारा विरचित बंगभाषा पयार के "स्मरणमंगल" ग्रंथ का ब्रजभाषा में रूपान्तर अनुवाद है। श्री नरोत्तमठाकुर महाशय का "स्मरणमंगल" गौड़ीय वैष्णव समाज में अत्यन्त प्रसिद्ध है। नाना स्थान से उस का वंगाक्षर में प्रकाशन भी हो गया है "धानाकुडिया" से प्रकाशित "बृहद्भक्तितत्त्वसार" में भी इसका प्रकाशन हुआ है। "गुणमंजरी" ने इसी का ही ब्रजभाषा में रूपान्तर किया है। पहले ऐसा अनुमान था कि ग्रंथकार का नाम जो भी कुछ रहा हो परन्तु वे अपने को रूपमंजरी गण पाती अवश्य मानते थे। उसी में यह ग्रंथ रूपमंजरी नाम से विरचित करके प्रसिद्ध हुआ अथवा ग्रंथकार अपने को सिद्ध रूप में 'रूप मंजरी' मानते होंगे। पटना ग्रंथागार से प्राप्त प्रति में गुणमंजरी नाम पड़ा हुआ है। अतः रचयिता के उपनाम (सिद्ध नाम) गुणमंजरी है, उनका पूरा नाम अन्य कुछ होगा। इसकी रचना परिपाटी अति सुन्दर है संक्षेप में दैन्यन्दिनी लीला को अवगत कराने में यह परम उपादेय है। बहुत दिनों से इसको प्रकाशनार्थ मन में प्रवल इच्छा थी, परन्तु तब समय नहीं आया था। वर्तमान में मैं इसको प्रकाशित करने में इसीलिये बाध्य हुआ कि अत्यन्त अनुसन्धान

(घ)

करने पर यह ज्ञात हुआ कि यह तो श्रीनरोत्तमठाकुर महाशय के द्वारा विरचित ब्रजभाषा पयार के "स्मरण मंगल" का संपूर्ण ब्रजभाषा में अनुवाद है। दोनों का मिलान करके देखा तो यह यथार्थ सत्य मिला। इसलिये भी इसका प्रकाशन में प्रबल इच्छा उठी और प्रेस में देने को बाध्य हुआ हूँ। ग्रंथकार का यह उपनाम अर्थात् सिद्ध नाम है, उनका वास्तविक नाम क्या था वह अज्ञात ही है। ठाकुर महाशय के "स्मरण मंगल" निर्माण के बाद अथवा उसकी प्रसिद्धि हो जाने के उपरान्त ही इसकी रचना हुई है। अतः ठाकुर महाशय के समसामयिक व परवर्ती काल में ग्रंथकार की स्थिति सिद्ध होती है।

कृष्णदास बाबा
ग्वालियर मन्दिर
कुमुमसरोवर
(मथुरा)



॥ श्रीराधारमण जी सहाय ॥

श्री - स्मरण - मंगल - भाषा



वंदौ गुरु गोविंद पद नोके । सुमिरत पूरहि वाञ्छित जीके ॥
 वंदौ श्रीमत् रूप सनातन । श्रीगोपालभट्ट जग - पावन ॥
 श्रीरघुनाथभट्ट शिर नाऊं । जीव गुसाईं कृपा मनाऊं ॥
 दास - गुसाईं कहना कोजै । जुगल प्रेम मोहि पूरण दीजै ॥
 वंदौ ब्रजमंडल तोरथ - वर । नंदगांव वरसानों गिरिवर ॥
 वंदौ जुगल कुंड सुखरास । जहाँ दुहुँन को नित्य विलास ॥
 वंदौ वृन्दावन करि विनती । जीवन मरन तुमहि मम गती ॥
 नौमि भगवती पूरणमासी । जोगमाया सब गुन की रासी ॥
 पिय प्यारी की लीला सारी । तिहि घटना सब जानन हारो ॥
 ब्रज पूजित कृष्ण तट रहै । निशिदिन पिय प्यारी सुख चहै ॥
 तासु शिष्य द्वे वीरा वृंदा । स्यामा-स्याम कूं देत आनंदा ॥
 वृन्दावन वृंदा कौं दोनों । अरु ब्रज वीरा आलय कीनों ॥
 सिद्ध मंत्र अस वृंदा जानै । वनदेवी तिहि दास्य बखानै ॥
 दिव्य शक्ति अस वृन्दा पाई । दूती ह्वै दुहुँ देत मिलाई ॥
 राधाकृष्ण जो कछु मन धरें । सो सो वृंदा पूरण करें ॥
 मनिमय भूमि कल्पतरु कुंज । विलसत मध्य दुहुँ रसपुंज ॥
 रतन थांमरें मंडप क्यारी । अति अनूप सुंदर फुलवारी ॥
 छह ऋतु मूर्तिवंत नित सोहत । पक्षी गान करत मन मोहत ॥
 जमुना कमलभरो सुखदैनी । कनक किनारे रतन नसैनी ॥
 निरतत मोर भ्रमर भंकारत । सुक-सारी रस कथा उचारत ॥
 चिदानंदमय पर तें परें । बीस कोस वन सब मन हरें ॥
 वृंदादेवी करत सुसेवन । ताहि तें कहियै वृन्दावन ॥

[२]

वृंदा - कृपा लैहै वृंदावन । सेवा प्रेम वास सह सखियन ॥
 वृंदा चरन करौ आराधन । सब मंगल ह्वै वाञ्छित पूरण ॥
 पूरनमासी करुणा कीजै । पद छाया दै यह वर दीजै ॥
 ब्रज मधि सिद्ध देह मैं लहूँ । सखी ह्वै सखियन संग रहूँ ॥
 दिव्य वसन भूषन करि भूषित । नव नव राग करौ सेवा नित ॥
 उज्ज्वल गोप - किसोरी प्रेम । लक्षवान ज्यों झलमल हेम ॥
 जहि मुनिगन सब वांछा करें । वेद शास्त्र सब साक्षी भरें ॥
 अष्ट सखी ललितादिक ध्याऊँ । सकल मंजरी गए सिर नाऊँ ॥
 तिन प्रसाद सौं प्रेमहि पाऊँ । श्रीराधा-चरणबुज ध्याऊँ ॥
 राधा - चरन - रेणु सिर धरै । राधारमण कृपा तव करै ॥
 ब्रह्मा शिव लक्ष्म्यादि अगोचर । ब्रजतिय प्रेमानंद मनोहर ॥
 उद्धव नारद पार न पावै । श्रीहलधर मन ही मन भावै ॥
 जत्र ब्रजतिय अनुगामिनि होय । प्रेम भक्ति पावै तव कोय ॥
 अष्टकाल लीला मन लावै । मनही मन करि निसदिन ध्यावै ॥
 पुनि गुरुदत्त देह नित भावै । तव ता सिद्ध देह वीं पावै ॥
 यही तत्व निश्चय जिय धरो । निसदिन मानसि सेवा करो ॥
 अष्टकाल लीला मन भाई । श्रीमत् रूप गुसाईं गाई ॥
 मंगल रूप ते ग्यारह श्लोक । सुमिरत हरत भक्त के सोक ॥
 सुमिरन - मंगल यादितें कहियै । ताको भाषा हितदै लहियै ॥
 भक्ति हेत यह कीनी भाषा । जो जन जानें सो उर राखा ॥

श्रीअष्टकाल के ग्यारह श्लोक हैं, ताको प्रथम श्लोक
 मंगलाचरण को है—

श्रीराधा - प्राणबंधोश्चरणकमलयोः केशशेषादगम्या,
 या साध्या प्रेमसेवा ब्रजचरितपरं गीदलोल्यैकलभ्या ।
 सा स्यात् प्राप्ता यया तां प्रथयितुमधुना मानसीमस्य सेवां,
 भाव्यां रागाध्वपान्यं ब्रजमनुचरितं नैत्यिकं तस्य नौमि ॥१॥

[१]

भाषा—श्रीराधा जी के प्राणबंधु श्रीकृष्ण तिनके चरण-रविन्द की जो प्रेम सेवा है सो ब्रह्मा, शिव शेषादि को अग्रग्न्य है। क्योंकि वे अपने अपने अधिकार में नियुक्त हैं जब अपनी अधिकार छोड़िके ब्रजवासिन को आनुगत्य लहैं और रागात्मिका देह पावें तब प्रेम सेवा जो कहिये साक्षात् सेवा सो पावें। सो उनते अधिकार छूटत नहीं। अधिकार के अवरोध ते उनको प्रेम-सेवा अग्रग्न्य है। और ब्रजचरित्र विषे जो तत्पर हैं तिनको सो प्रेम सेवा साध्या है। ब्रज विषे मधुर-वात्सल्यादि चार भाव हैं सो जब कोई साधक काहू भाव युक्त होय के गाढ़ लोभ करिकें मानसी सेवा में मन लगावै तब प्रेम सेवा पावै सो मानसी सेवा रागमार्ग के जो पथिक हैं तिन ही करि भावनीय है। ऐसी जो मानसी सेवा ताके विस्तार करिवे को श्रीकृष्ण ब्रज में जो नित्य लीला करत हैं ता लीला को दंडवत करत हों ॥

अब एक श्लोक करिके अष्टकाल की लीला कहत हैं—

कुंजादगोष्ठं निशान्ते प्रविशति कुस्ते दोहनाम्नाशनाद्यां,
 प्रातः सायं च लीलां विहरति सखिभिः सङ्गवे चारयन् गाः।
 मध्याह्ने चाथ नक्तं विलसति विपिने राघयाद्वाऽपरान्ते,
 गोष्ठं याति प्रदोषे रमयति सुहृदो यः स कृष्णोऽवतान्नः ॥२॥

जो श्रीकृष्ण निशान्त काल में आनंद कुंज ते घर को आवे हैं और प्रातःकाल में गोदोहन और भोजनादि लीला करत हैं, और पूर्वाह्न काल में गोचारन और सखान संग में क्रीडा करत हैं, मध्याह्नकाल में श्री राधाजी संग श्रीकुंड में विहार करत हैं, अपरान्हकाल में वृंदावन तें घर को आवत हैं, प्रदोष-काल में सुहृदों को सुख देत हैं, नक्तकाल में श्रीराधा संग वृंदावन में विलास करत हैं ऐसे जो श्रीकृष्ण सो हम सबन की रक्षा करें।

[४]

अब एक एक श्लोक करि कै सात काल की लीला सात
श्लोकों में कहैं हैं और अष्टम काल को लीला दो श्लोक करिके
वरनन करेंगे ।

रात्र्यन्ते त्रस्तवृन्देरितबहुविरवै वीधितो कीरसारी,
पद्यैर्हृद्यैरवद्यैरतिमुखशयनादुत्थितो तो सखीभिः ।
दृष्टो हृष्टो तदात्वोदितरतिललितो कक्खटीगीः सशंको,
राधाकृष्णो सवृष्णावपि निज निज धाम्नाप्ततल्पो स्मरामि ॥३॥

सेस रैन श्रीवृंदा जागी । सखियन संग महा अनुरागी ॥
राधा कृष्ण रसालस भरे । देखे नाना रंगन ढरे ॥
प्रातकाल को शंका भइ । पक्षीगन को आग्या दइ ॥
आग्या पाय सुपुलकित भये । कुंज भवन में सानन्द गये ॥
सुक सारी रम कथा सुनामें । स्यामा स्याम सुखन उयजामें ॥
आनंदित ह्वै नाचन मोर । सुनि जागे दुहुँ नवल किसोर ॥
सखीन संग तव वृंदा आइ । बहुविधि रस को कथा सुनाइ ॥
कोकिल पंचम सुरह जु गावै । पुनि कपोत फुत्कार सुनावै ॥
बहुरि कक्खटी बोली बानी । जटिला अहै प्रति दुख दानी ॥
नंद भवन कोलाहल भारी । जागी वेग न करो अवारी ॥
पट भूपन सामग्री जेती । सखियन हाथ लईं सब तेती ॥
कौन हूँ टूटी माला लई । कौन हूँ पंखो कर में गही ॥
कौन हूँ कंचन थारी लीनी । किन हूँ पिक दानी कर कीनी ॥
कौन हूँ पान दान कर कीनी । किन हूँ स्वणं पोंजरा लीनी ॥
इहि विधि सखिन हाथ सब कीयो । आनंद मंजरी चामर लीयो ॥
कुंज भवन बाहर दुहुँ आये । बिरह विक्रम नैनन जन छाये ॥
बार बार दुहुँ आलिंगन कर । जात भये अपने अपने घर ॥
सचकित नैन गये निज धाम । दोउवन जाय कियो विश्राम ॥
भरि हुलास तव प्यारी पायन । रास मंजरो सेवत चायन ॥

[५]

सहचरि हूँ सोई सुख पाय । इतमें प्रातकाल भयो आय ॥

रूपमंजरी पद कमल तिन कौ करि कै ध्यान ।

करि संक्षेपहि वरनियो प्रथय काल अख्यान ॥

यह सुनि सब मन शंका छाये । अदल बदल भट पट पहराये ॥

दुहं विरह सौं अति दुख छाये । करसों कर गृह चलत सुभाये ॥

गह निशान्त काल की लीला छहघड़ी रात रहेंतें प्रात भये
लों कही । अब छहघड़ी दिन चढ़े ताई प्रातकाल है ताकी लीला
कहेंतें है । श्लोक—

राधां स्नातविभूषितां व्रजपयाहुतां सखीभिः प्रगे

तद्गृहे विहितान्नपाकरचनां कृष्णावशेषाशनाम् ।

कृष्णं बुद्धमवाप्तधेनुमदनं निर्वृद्ध गोदोहनं

सुस्नातं कृतभोजनं सहचरैस्ताञ्चाथ तञ्चाश्रये ॥४॥

प्रात क्रिया करि पूरनमासी । नंदालय आई सुखरासी ॥

जसुमति तिहि पद लागत भई । पूरनमां असीस बहु दई ॥

कृष्ण दरस उरकंठा छई । कृष्ण शयन की ठौर सो गई ॥

खोलि कपाट जसोमति रानी । पूरनमां सौं बोली बानी ॥

देखो पहर्यो नीचल नीलांबर । नख छत लगे सकल अंगन पर

ग्वालन संग लड़न वन मांही । पीतांबर हूँ की सुधि नाहीं ॥

स्नेह तें रानी गद्गद् बानी । कुच पय खवत बहत दृग पानी ॥

अंध दंड मोहि यह मुत अहो । वन वन फिरत करों कहा कहो ॥

वचन न मानत कीजै कहा । डोलत दूत कंस के महा ॥

भयो प्रात जागे रंग भरे । ग्वाल वाल सब अंगना खरे ॥

सुत उठि पूरणमां को नये । बहुरो बाहर चलत भये ॥

दाम सुदाम सुबल मधुमंगल । श्रीदामा कोकिल अरु ऊजल ॥

श्लोक कृष्ण बलि आदिक जेते, मिल करि खिड़कन चले सुतेते ॥

[६]

इतक जावट ग्राम जहां प्यारी । जागी सो सुनियै विधि सारो ॥
 राधिका माता कीरति नामा । तासु मातु मुखरा अभिरामा ॥
 श्रीवृषभानु सासु गुण गूढ़ी । राधा की नानी अति वूढ़ी ॥
 सो अभिमन्यु गेह में आई । नातिन देख सु आनंद छाई ॥
 ताहि देखि जटिला सिर नायो आदर करि कछु वचन सुनायो ॥
 पूरनमा सों मैं पूछी जवै । कहना करिकें बोली तवै ॥
 वारह वरस बधु के हाथा । रवि पुत्रवाओ यथा विधि साथा ॥
 रवि पूजे धन गोधन जितो । तुम्हरे पूरण ल्लै है तितो ॥
 अरु जसुमति को आज्ञा करिहो । निज सुत आयु बड़ी विस्तरिहो ॥
 पुनि जटिला मुखरा सों कहि । तुम हूँ कहो नातिनी यही ॥
 पूजा विधि सब नीकें जानो । अंग हीन पूजा मति ठानो ॥
 यह कह दूहुँ शयन गृह गई । खोलि कपाट जगावत भई ॥
 बधु अंग पटपीत ही देखा । होय ससंक वक्र मुख पेखा ॥
 वृष्णि विसाखा सों यह बात । पीताम्बर कैसे बधु गात ? ॥
 जो उपहास करत रह सबै । सो मैं आंखिन देखी अबै ॥
 यह मेरे उर आग सी लागी । यह कह थर थर कांपन लागी ॥
 जटिला वचन सुनत आलीगन । दुखित भई लागीं सब चिन्तन ॥
 जटिला वचन सुनी सब काना । कठपुतली बत् भई अजाना ॥
 तब हीं विसाखा आगे छई । दासो भट पट बदलत भई ॥
 पुनि जटिला सों बोलि बानी । तुम्हरी दृष्टि छीन भई जानी ॥
 कहां पीतपट राधा गात । तुम विचार विन भाषत बात ॥
 तब लख नीलांवर लज गई । चुप ल्लै निज गृह जात भई ॥
 सखी चतुर तब हसत भई सब , श्रीराधा बाहर आई तब ॥
 पुनि सखियन सेवा मन लायो । मुख प्रछालि उदटनो लगायो ॥
 रस बातन कहि स्नान कराये । पट भूषन बहु विधि पहराये ॥
 तब श्री जसुमति कुंदलताहि । यह कह जटिला ढिग पठाहि ॥

राधा पायो दुरवासा वर । ताते ताके हाथ सुधा-सर ॥
 तिहि कर परसित वस्तु जो खाय । ताकी छुधा आयु बढ़ जाय ॥
 मो सुत छुधा अल्प अति लही । तब करि कृपा पूर्णिमा कही ॥
 पांय लाग जटिला हि सुनैयो । सखियन संग राधा को लैयो ।
 जसुमति सों सनि कु दलता जो । आय पांय परि सबै कही सो ॥
 जटिला सो पुनि आग्या पाई । सखियन संग राधिका आई ॥
 आय जसोदा पायन परी । दै असीस जसुमत सुख भरी ॥
 गोदी लै पुन चुम्बन करिकै । आग्या दीन्हौ आनंद भरिकै ॥
 रोहिनी अरु सब सखियन संग । पाक गेह जावो भरि रंग ॥
 फैंनी लडुवा खीर सुहाई । भात सीखरनि अति सुखदाई ॥
 मोहनभोग ताहरी नीको । करो सुधार भावती जीकी ॥
 बहु पानक भाजो तरकारो । बड़ा पकौरा अति रुचिकारी ॥
 अरु बहु विधि व्यंजन अति स्वाद । कीजै प्यारी भरि प्रह्लाद ॥
 यह सुनि राधा रङ्गन छाई । पाक गृह सखियन संग आई ॥
 कृष्ण हेतु सब वस्तु कीनीं । कृष्ण दरस उत्कंठा भीनीं ॥
 तब दासन श्रीकृष्ण नहवाये । पटभूषन बहुविधि पहिराये ॥
 कर स्नान भोजन गृह आये । बल अरु सखन संग सुख पाये ॥
 पाक गृह मंडल करि बैठे । तारा मधि मनु चन्द्रमा जेठे ॥
 तब माय जसुमति कंचन थारी । भरि भरि देति सबै अंकवारी ॥
 दुहर तीन सै साठ सुव्यंजन । राधा आनि दिये मनरंजन ॥
 तब हरि जतनन भाव छिपाये । करत प्रसंसा भोजन पाये ॥
 मधुमंगल करि हास्य महान करयो आचमन खाये पान ॥
 रतन सेज सुख पीढ़े जाय । सेवा करत दासगण चाय ॥
 पुनि जसुमत अति हठ करि छाई । राधा सखियन संग जिवाई ॥
 सुत विवाह उत्कंठा ठानै । पटभूषन जसुमत बहु आनै ॥
 ते पट भूषन अति छवि छाये । श्री जसुमत राधा पहिराये ॥

[८]

पुन सब सखियन हैं पहिराये । दै सिंदूर तांबूल चवाये ॥
 रूपमंजरी पद कमल चित्त में करिकें ध्यान ।
 करि संछेप हि वरनियो दुनीय काल आख्यान ॥

अब पूर्वार्त्तिकाल बारह घड़ी दिन बड़े पर्यन्त है ताको
 वरनन करत है । श्लोक—

कृष्णं गोभिः स्वमित्रैर्विपिनमनुसृतं गोष्ठ-लोकानुयातं
 श्रीराधास्फूर्ति गोलं तदभि स्तुतिकृते प्राप्त तत्कुण्डतीरम् ।
 राधाञ्चालोक्य कृष्णं कृतगृह गमन मार्ययाकीर्चनायै
 दिष्टां कृष्णप्रवृत्त्यै प्रहितनिजसखी वर्त्म नेत्रा स्मरामि ॥

सृंग वेनु बजन लागे तब । वृजवासी देखन आये सब ॥
 त्रिभुवन विजयी वेस बनायो । मोर पछ गुंजन करि छायो ॥
 तनु छुतिकर बहु भूषन राजै । कटि किकनि पद नूपुर बाजै ॥
 पत वसन त वंदन छायो । सकल सखन अस वेस बनायो ।
 तब जसुमति अति व्याकुल भई । सुत मुख चूमि सुमिरि कर दई
 पुनि बलदेव हि हाथ गहायो । सृंग वेनु तब सखन बजायो ॥
 रामकृष्ण वनगमन कियो तब । वृजजन व्याकुल अति ही भये सब
 होय अचेत रहे सब ही जब । बोध परस्पर पुन बगदे सब ॥
 आय घरन द्विज गणन बुलाये । सुत मंगल हित दान कराये ॥
 कृष्ण सखन संग वन में जोय । बहु विध खेल करत सुख पाय ॥
 पुनि जसुदा जोछाक पठाई । श्री बल-कृष्ण सखन संग पाई ॥
 ठौर ठौर पुनि सखन राखकारि । मधुमंगल सुवल हि बोले हरि ॥
 हम माधवी विपिन जैहैं अब । यह कह कुंडतीर आये तब ॥
 इत श्रीकृष्ण दरस रसीली । श्रीराधा निज मन्दिर चली ॥
 यसुमत कुंदलता संग दई । कर गहायो अरु बोलत भई ॥

[६]

जटिला सों यो विनती कीजो । मेरे सुत असीस बहु दीजो ॥
 जटिला करै कृपा सु महान । तो होय मम सुत को कल्याण ॥
 कुंदलता राधा संग आई । जटिला सों कहि विनय सुनाई ॥
 सुनि जटिला दई बहुत असीस । मोहन जीजै कोटि वरीस ॥
 पुन जटिला ललिता सों कही । सीघ्र जैहो रवि मंदिर सही ॥
 सौं पि हों बधू तिहारे हाथ । पुजवावो विधि सों दिननाथ ॥
 यह कह गृह कारज लागी जव । ललिता तुलसी सों बोली तव ॥
 तुम वीरी माला लै जावो । वन में जाय हरिहि पहरावो ॥
 पुनि लावो संकेत सुवात । हम अब रवि मन्दिर को जात ॥
 तुम संकेत कहोगी जहां । हम राधा लै जैहैं तहां ॥
 ताहि पठाय राधिका पाछें । रवि पूजा मिस चली सु आछें ॥
 मंद मंद गति मंथर गमनी । हरि अनुराग कहत हरि रमनी ॥
 जात सखिन संग अति छवि छाई, मग मधि तुलसी है तहां आई ॥
 मदन कुंज संकेत सुलाई । कृष्ण ते गुंजमाल जो पाई ॥
 सो ललिता दै वात जनाई । पुनि सब्या की कथा सुनाई ॥
 सुनि सब सखी हँसी रस वलिता । राधा माल दई पुन ललिता ॥
 माला परसत अति सुख भयो । हरि अनुराग सत गुनो छयो ॥
 पुनि सूरज मंदिर में आई । करि प्रणाम वर लै सुख छई ॥
 दासीगण सों कही कि अहो । तुम इहां सब वस्तु लै रहो ॥
 हम पूजा हित फूलन जात । कुंड तीर गई कहि यह बात ॥
 भाव भेट दै कृष्णहि मिली । संग अली सोहत रंग रली ॥
 श्रीब्रजराज रूप के आगर । आय मिले जुवतिन संग नागर ॥

रूप मंजरी पद कमल चित्त में करि कें ध्यान ।

करि संक्षेपहि वरनियो तृतीय काल ग्रहयान ॥

— — — —

[१०]

अब मध्याह्नकाल १८ घड़ी दिन चढ़े ताई है ताकी लोला
वरनन करत हैं ।

नध्याह्नेऽन्योन्य सङ्गोदित विविध विकारादि भूषा प्रमुग्धौ
वाम्यात्कण्ठातिलोलौ स्मर मुख ललिताद्यालि नर्म्माप्तिशातौ ।
दोलारण्याम्बु वंशी हृति रति मधुपानाकं पूजादि लोलौ
राधाकृष्णौ सत्पूष्णौ परिजन घटया सेव्यमानौ स्मरामि ॥

दुहुँन दरस दुहुँ आनन्द छाये । मनी रंक जन बहु धन पाये ॥
पुष्प दान मिस छविहि विलोकन । किलकिंचित भावन में मगन ॥
कुंदलता कही कृष्ण सिखाय । पंचदेव पूजो मन लाय ॥
तव हरि पूजा करि सुख पाय । रतन हिंडोरन भूले आय ॥
कुंड अष्ट दिस कुंज सुहाई । सखिन नाम करि ख्यात सदाई ॥
रक्त पीत सित श्यामा हरी । नील चित्र नाना रंग भरो ॥
जाही कुंज प्रवेश करें जब । ताही वरन होहि धन ही सब ॥
अलिनन द्रुम वेली फल पात । कुंज वरन सब ही ह्वै जात ॥
सब कुंजन मधि करि बहु केखि । नानाविध रस रंगनि भेलि ॥
वंसी हरन केलि पुन करिकें । आये रतन चौक सुख भरिकें ॥
तहां मधुपानादिक सुख पायो । सखिन संग बहु रंग मचायो ॥
शिव - ब्रह्मा अरु विष्णु गणेश । सूरज सक्ति कियो उपदेश ॥
पुनि दुहुँ रति क्रीडा रस छाये । होय निमग्न बहुत सुख पाये ॥
पुन श्रीराधा आग्या पाई । सखियन मंग रमे सुखदाई ॥
पुनि जलक्रीडा करि सुख पायो । सखियन मिलि सिंगार बनायो ॥
तव बहुविधि रस बहुत मिठाई । अरु, बहु मेवा धृंदा लाई ॥
भोजन कर दुहुंवन सुख कीनो । पुनि अवसेस सखीगण लीनो ॥
सुक सारी पुनि बहु रस गायो । पुनि चौसर की खेल रचायो ॥
तव पंछी गण टेर सुनाई । जटिला रवि मंदिर ढिग आई ॥
तव राधा रवि मंदिर गई । जटिला कह्यो बेर क्यों भई ॥

[११]

बन भूली यों बोली राई । तुमरे पुन्यन अब इहां आई ॥
 विप्र बुलाय वेग अब लीजै । दिनकर पूजि गमन घर कीजै ॥
 कुंदलता बोली मृदुबानी । एक ब्रह्मचारी सुखदानी ॥
 नाम विश्वकर्मा पंडित वर । गगं शिष्य मथुरा ताको घर ॥
 तुमर पुन्य सु इहां बन आयो । हौं लावत ही मधु बहकायो ॥
 तब जटिला बोली सुख पाय । मधु सह लावो वेगि मनाय ॥
 कुंदलता तब हरि ढिग आई । हंसि विनोद की बात सुनाई ॥
 तब मधुमंगल सह छवि छाये । कृष्ण ब्रह्मचारी वनि आये ॥
 विप्र देखि वृद्धा सिर नायो । विप्रवर तब यौ वचन सुनायो ॥
 तुम निज वधू नाम मोहि कहो । तिन कही भानसुता यह अहो ॥
 वृज में जो पतिव्रता विख्यात । द्विज कहै आज लखी साक्षात ॥
 यह पतिव्रता हम ब्रह्मचारी । मित्र पूजै हों मंत्रन भारी ॥
 द्विज हि देखि जटिला सुखपायो । रूप लुनाई मन हरषायो ॥
 रवि पुजाय बाहर आयो । सब कौं आसीर्वाद सुनायो ॥
 पुन जटिला कही अहो महाशय । वधू हाथ देखी करुणामय ॥
 यह सुन विष्णु विष्णु कह द्विजवर । कही कुशासौ न छूवोतयाकर
 पर यह है पतिव्रता जातें । हस्त चिन्ह लखि कहिहौं तातें ॥
 हस्त निरखि कही मंगलबात । सुनि जटिला भई हरषित गात ॥
 दिन प्रति रवि पूजा करवावह । राधा दासी जान सु आवहु ॥
 यह कहि द्विजवर विदा सु कीनो । भेट द्रव्य मधुमंगल लीनो ॥
 कृष्ण गये तब गोघन खोरी । निज गृह गमनी राधा गोरी ॥
 रूप मंजरी पद कमल तिन को करि के ध्यान ।
 कर संछेप हि वरनियो तृतीय काल आख्यान ॥

अब अपराह्न काल जो छह घड़ी दिन रहे ताई है ताकी
 लीला लिखत हैं ।

श्रीराधां प्राप्तगेहां निजरमणकृते क्लृप्तनानोपहारां
 सुस्नातां रम्यवेशां प्रियमुख कमलालोकपूर्ण प्रमोदा ।
 श्रीकृष्णश्चापराह्णे ब्रज मनु चलितं धेनुवृन्दै र्वयस्यैः
 श्रीराधालोकवृत्त पिण्डमुखमिलितं मातृमिष्टं स्मरामि ॥७॥

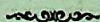
तव श्रीकृष्ण सखन में जाय । वेनु वजाय बुलाई गाय ॥
 वृन मुख धरें गाय सब आईं । निपट सिंगारी अति छवि छाई ॥
 बल कही मधुमंगल सों आय । गांठ में कहा सु हमे दिखाय ॥
 मधु कहै कहा द्रव्य हम पाही । सखन लूटि खायो छिन माही ॥
 तव मधु गारी देत सुभागे । कृष्ण सबन कौं वरजन लागे ॥
 मधु कहै तुहें शाप देहों अरु । नतर पेट भरि पय प्यावो सब ॥
 बल कहै यह द्विज कुटिल महान । उदर परायन धर्म न जान ॥
 ऐसे कौतुक करत सखन संग । बज्रवत वेणु चले नाना रंग ॥
 राधा सखियन संग गृह आई । कृष्ण हेत गुही माल बनाइ ॥
 सखियन कीने बहु उपहार । अतर अरगजा पान सुधार ॥
 पुनि राधा सुगंध जल न्हाई । सखिन सिंगारी अति छवि छाई ॥
 चढो अटा हरि दरसन चाव । कहत विसाखा सों हरि भाव ॥
 तव हीं आय दियो हरि दरसन । मनमथ मथन संग सखांगन ॥
 शृंग वेनु को शब्द महान । अस भयो श्रीर न सुनिये कान ॥
 नाना रंग संग चतुराई । त्रै त्रिभङ्गि गति वेनु वजाइ ॥
 सखन संग हरि रस के सागर । भामिनि भाव भरे गुन आगर ।
 मोहन मुख शोभा लखि भामिनि । जानत नहीं दिवस अरु जामिनि
 राधा लखि हरि भाव न छाये । दुहुंन नाय मुख भाव छिपाये ॥
 नैन सैन बहु रस चतुराई । निरखि सखी गन आनंद छाई ॥
 बृहदि कृष्ण नंदीश्वर आये । लखि ब्रजवासी आनंद छाये ॥
 तिन पर आस्र मोर रस भरे । गृह गृह कनक कलस भरि धरे ॥
 कंचन थारन क्षीप वराये । वाजे सुनि जसुमति सुख पाये ॥

[१७] परतनिधि, करौं तो

पारावृत्ति-५

करी अचमन वीरी खाई जब । सेस प्रसाद सखिन पाये तब ॥
 कुंज कुटी में सेज जु करी । तहाँ आप बैठे श्रीहरि ॥
 राई संग सखी सब आई । राई वाम भाग बंठाई ॥
 पान खान मिस सहचरीजिती । बाहर कौं उठि आई तिनी ॥
 लगी झरोखन आनंद छाई । दुहुन की लीला निरखत भई ॥
 करि बिहार दुहुँ सोय रहे जब । रसमंजरी पद सेवत तब ॥
 गुणमंजरी निहारत सोभा । उठत है मन आनन्द की गोभा ॥
 उत्सव मंजरी मधुर सुर गावै । प्यारी पिय नीद जब आवै ॥
 रसमंजरी लेत बलैया । छकी दुहन के आनंद भैया ॥
 इंदुमती सुगती बड़ भाग । करत विपार भरी अनुराग ॥
 आनंद मंजरी परम सुजान । लाख लाभ सोभा वारत प्रान ॥
 दुहुँ परसपर रस बस भये । नाम रूप करि मन मन छाये ॥
 भया भोर दुहुँ मिले सु ऐमें । कंचन जटित नीलमणि जैसें ॥
 वृन्दावन जन कुंज कुटीर । बिलसत दोऊ रतिरण धीर ॥
 नितनित इहिविधि करत विलास । सहचरि बिन नहीं जानत दास ॥
 अमृत सिंधु यह जुगल बिहार । अस को लहै जु याको पार ॥
 अमृत जु ब्रजबिहार रस गायो । ताको दिग दरसन करवायो ॥
 रूपमंजरी पद कमल तिनको करि कै ध्यान ।
 करि संछेप हि वरनियो काल अष्टमाख्यान ॥
 अष्टकाल साधन करै प्रेम भक्ति यह पाई ॥
 पढ़े गुने मन भ्रम मिटै जुगल रूप दरसाय ॥
 साधन सिद्ध को यह मतो जानें तत्त्व बिचारि ।
 गुणमंजरी गूढ़ हि लही पावै सब गुन सार ॥

इति श्री स्मरण मंगलभाषा संपूर्णम् ॥



व्रजभाषा में प्रकाशित प्राचीन पुस्तकें—

१. गदाधरभट्ट जी की वाणी (राधेश्याम गुप्ताजी से प्रकाशित) ॥१॥
२. सूरदासमदनमोहनजी की वाणी „ ॥३॥
३. माधुरोवाणी (माधुरीजी कृता) ॥२॥
४. वल्लभरसिकजी की वाणी ॥२॥
५. गीतगोविन्दपद (श्रीरामरायजी कृत) ॥१॥
६. गीतगोविन्द (रसजानिवैष्णवदासजी कृत) ॥१॥
७. हरिलोला (ब्रह्मगोपालजी कृता) ॥२॥
८. श्री चैतन्यचरितामृत (श्रीसुवल्लभ्यामजी कृत) ४॥१॥
९. वैष्णववन्दना (भक्तनामावली) (वृन्दावनदासजी कृता) ॥२॥
१०. विलापकुसुमाञ्जलि (वृन्दावनदासजी कृत) ॥१॥
११. प्रेमभक्तिचन्द्रिका (वृन्दावनदास जी कृता) ॥१॥
१२. प्रियादासजी की ग्रन्थावली ॥२॥
१३. गौराङ्गभूषणमञ्जावली (गौरगनदास कृता) ॥१॥
१४. राधारमणरससागर (मनोहरजी कृता) ॥१॥
१५. श्रीरामहरिग्रन्थावली (श्रीरामहरिजी कृता) ॥१॥
१६. भाषाभागवत (दशम, एकादश, द्वादश) (श्रीरसजानि-
वैष्णवदासजी कृत) १)
१७. श्रीनरोत्तमठाकुर महाशय को प्रार्थना ॥१॥
१८. अप्रदायबोधिनी (कविवरमनोहरजी कृता) ॥२॥
१९. व्रजमण्डलदर्शन (परिक्रमा) १)
२०. भाषाभागवत (महात्म्य, प्रथम, द्वितीय स्कंध) ॥१॥
२१. कहानीरहसि तथा कुंवरिकेलि (श्रीललितसखीकृत) ॥१॥
२२. ब्रह्मसंहितादिगर्दिशनीटीका की भाषा (श्रीरामकृपाजी कृता) ॥२॥
२३. किशोरीदासजी की वाणी ॥२॥
२४. गौरनामरसचम्पू (कृष्णदासजी कृता) ॥२॥
२५. क्षणदागीतिचिन्तामणि (मनोहरदासजी) ॥१॥
२६. अष्टयाम (श्रीवृन्दावनचन्द्रदासविरचित) १)
२७. श्रीचैतन्यभागवत (आदि, अन्त्यखंड) ५)
२८. स्मरणमंगलभाषा (गुणमंजरीकृता) ॥१॥

ग्रन्थरत्नषट्कम्

(१) मन्त्रार्थदीपिका (२) कामगायत्रीव्याख्या (३) अग्नि-
पुराणान्तर्गतगायत्रीव्याख्याविवृतिः (४) सूत्र-
उपासनावैष्णवपूजाविधिः (५) श्रीयुग-
लाष्टकं (६) श्रीकृष्णप्रेमामृतम् ॥

श्रीपादविश्वनाथचक्रवर्त्तिविरचिता मन्त्रार्थदीपिका,
श्रीप्रबोधानन्दसरस्वतीपादरचिता कामगायत्री-
व्याख्या, श्रीपादजीवगोस्वामिरचिता अग्नि-
पुराणान्तर्गतगायत्रीव्याख्याविवृतिः,
श्रीमद्रूपगोस्वामिविरचितः सूत्र-
उपासनावैष्णवपूजाविधिः
श्रीपादजीवगोस्वामि-
विरचितं युगलाष्टकं,
श्रीपादगोपालभट्ट
गोस्वामिविरचितं
श्रीकृष्णप्रेमामृतम् ॥

प्रथमावृत्ति १०००
भूलन तीज संवत् २०१२
नौद्वार(॥)

} {

प्रकाशक—
कृष्णदास बाबाजी
(कुसुमसरोवरवाले) मथुरा

सुभाष स्कूल प्रेस, बलढीला, मथुरा ।

समर्पणपत्रम्

भज निताइ गौर राधे श्याम ।
जप हरेकृष्ण हरे राम ॥

सम्प्रदाय हितैच्छुक, श्री श्रीराधारमणचरणदासदेव
(बडवाबाजी) महाराज के कृपापात्र साथी,
कुसुमसरोवर गवालियर मन्दिर के महन्त,
नित्यधामप्राप्त, मेरे काका गुरु
श्रीश्रीउद्धारणदासबाबाजी
महाराज के प्रीत्यर्थमें
यह "ग्रन्थरत्नपट्टकं"
समर्पित है ।

—०—

विनीत—कृष्णदास ।

पुस्तक मिलने का पता—

कृष्णदासबाबाजी (कुसुमसरोवर वाले)
श्रीमदनमोहनजी का मन्दिर, वृन्दावन-
दरवाजा, मथुरा ।

—:दो शब्दः—

ब्रजविहारी नन्दनन्दन श्रीगोविन्द की मधुर भाव से उपासना सर्वोपरि मानी जाती है तथा वे श्रीगोविन्द अखिल रसों के विषय स्वरूप होने पर भी मुख्यतः रसरज अप्राकृत दिव्य-शृङ्गार स्वरूप में भक्तों के द्वारा उपासित होते हैं। ब्रह्म रुद्र तथा सनक सम्प्रदाय के वैष्णवगण गोपालमन्त्र से दीक्षित होते हैं तथा गुरुपरम्परा प्राप्त उस गोपालमन्त्र को ही सर्वाधार मानते हैं। जब तक कोई गोपालमन्त्र से दीक्षित नहीं होता है तब तक वह वैष्णव करके नहीं माना जाता है तथा उसकी गोविन्द-उपासना कुञ्जर शौच की भाँति हो जाती है और भी सेवा-पूजादि किसी विषय में उस भक्त का अधिकार नहीं होता है। गोपालतापनी श्रुति, गौतमीयतन्त्र, क्रमदीपिका, परिभक्तिविलासादि शास्त्र में गोपालमन्त्र का विवरण विस्तार रूप से मौजूद है। उन सब वैष्णवशास्त्रों में उपासना का अधिकार रख कर गोपालमन्त्र के साथ कामवीज-कामगायत्री की संयोजना की गई तथा गोपालमन्त्र की भाँति उन को भी मूलाधार रूप में रखा गया। गौतमों मन्त्र के प्रारम्भ में कामवीज को भी उनके बीज रूप में संयोजित किया गया। प्रेमावतार श्रीमन्महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव ने भी गोपालमन्त्र में दीक्षित होकर जीव जगत् को मधुर उपासना का पाठ पढ़ाया तथा कामवीज-कामगायत्री को सहान महत्ता दी। प्रभु ने ऐसा उपदेश था कि कामवीज-कामगायत्री के बिना किसी भी प्रकार उपासना नहीं बन सकती। राधाभाव में विभावित आपने इस प्रकार कामवीज-कामगायत्री की सरस व्याख्या का गान किया। इसी प्रकार उस गान को श्रीचरितामृतकार श्रीकृष्णदानकविराज गोस्वामी जी ने उक्त ग्रन्थ में मधुर रूप से वर्णन किया है। जो कि कविवर्त्ता महोदय की व्याख्या में मौजूद है। स्थानाभाव के कारण इसका पुनः उल्लेख नहीं किया गया है। गौड़ीयवैष्णव गुरुमुख

(२)

से गोपालमन्त्र के साथ कामगायत्री को ग्रहण करते हैं तथा उपासना क्षेत्र में उसका सर्वोपरि महत्ता देते हैं। कामगायत्री के बिना श्रीराधागोविन्द की महान् उपासना फलगुरुपा होजाती है। कामवीज-कामगायत्री के साथ गोपालमन्त्र की मधुर उपासना ही सर्वोपरि है ऐसा गौड़ीयसिद्धान्त है। चरितामृत में कहा है—

वृन्दावने अप्राकृत मदनमोहन ।

कामगायत्री कामवाजे जाँर उपासन ॥

अर्थ ज्ञान के बिना मन्त्र सब निष्फल होते हैं इसलिये उनको सजीव करने के लिये शास्त्र ग्रन्थों में आचार्य्यगण बहुस्थल में व्याख्या कर गये हैं। उक्त कामवीज-कामगायत्री मन्त्र को फलक्षेत्र में लाने के लिये गाँड़ीय गोस्वामियों ने भी अनेक स्थल में अनेक रूप से उनकी व्याख्या की। हरिभक्तिविलास के तृतीयविलास में तान्त्रिकी-सन्ध्याविधि विषय पर कहा गया है—

ध्यानोद्दिष्टस्वरूपाय सूर्य्यमण्डलवर्त्तिने ।

कृष्णाय कामगायत्र्या दद्याद्ध्यमनन्तरम् ॥

अथार्कमण्डले कृष्णं ध्यात्वैतां दशधा जपेत् ।

क्षमस्वेति तमुवाच दद्याद्ध्यं विवस्वते ॥

वहाँ सनत्कुमारसंहिता के वचन उठा कर कामगायत्री की उद्धृति की गई है ॥

रासपञ्चाध्यायी के तृतीयश्लोक 'जगौ कलं वामदशां मनोहरम्' की श्रीपादजीवगोस्वामी कृत "वैष्णवतोषिणी" व्याख्या में—“अत्र श्लेषेण कामवीजं जगाविति रहस्यम्”। अर्थान्तर में कामवीज का गान किया यह रहस्य है ॥

श्रीचक्रवर्त्ती महोदय ने “सारार्थदर्शिनी” टीका में भी ऐसा कहा है—“श्लेषेण कलं ककारलकारं वामदशामिति लुप्तविभक्तिकं पदं वामदृक् चतुर्थ स्वरः तथा सह पञ्चदशस्वरं कामवीजं जगाविति

(३)

रहस्यं मनसः आकर्षकत्वात् स्वस्वरूपभूत महामन्मथमन्त्रमित्यर्थः” । अर्थान्तर में कलं ककार लकार हैं, वामदृक् यह लुप्त विभक्तिक पद है । अर्थात् चौथास्वर दीर्घ ईकार से युक्त करने पर, बिन्दु अनुस्वार की जोड़ने पर कामबीज क्लीं निकलता है यह श्रीजीवपाद के रहस्य पद का अभिप्राय है । मन्त्र का आकर्षण करने के कारण अपने स्वरूपभूत महामन्मथमन्मथ अर्थात् कमगायत्री समझनी चाहिये ॥

वहु अनुसन्धान के पश्चात् श्रीचक्रवर्ती महोदय के द्वारा विरचित एक व्याख्या तथा श्रीपादप्रबोधानन्दसरस्वती जी के द्वारा विरचित एक व्याख्या मुझे प्राप्त हुई । जो कि सानुवाद प्रकाशित होकर उपासकों के समक्ष मौजूद हैं । चक्रवर्ती जी की व्याख्या गौडीयवैष्णव समाज में प्रसिद्ध है तथा वह वङ्गाक्षर में मुद्रित भी हो गयी है । सगस्वती जी की व्याख्या-श्रीनीलमणिग्रन्थागार वृन्दावन से, साधुमाता के आश्रम वृन्दावन से परम हितेपी कृष्णानन्द-दाम जी के द्वारा दूसरी कापी, श्रीयुक्त पूज्य अतुलकृष्णगोस्वामी जी के द्वारा (वृन्दावन) उनके ग्रन्थागार से तीसरी प्रति मुझको प्राप्त हुई । मैंने तो उन तीनों प्रतियों को मिला कर यथा साध्य एक प्रेस कापी बनाई । श्रीपादजीवगोस्वामी विरचित “आग्नेयस्थ गायत्री-व्याख्याविवृतिः” पहले श्रीयुक्त हरिदासदास नवद्वीप निवासी के द्वारा प्रकाशित होगई है । श्रीमद्रूपगोस्वामी विरचित “सूत्रउपासनावैष्णवपूजाविधिः” की प्राचीन प्रति मेरे पास मौजूद है । रागानुगा भक्ति के उपासकों का यह परम उपादेय ग्रन्थ है तथा सूत्ररूप है ।

श्री श्रीजीव गोस्वामि विरचित “युगलाष्टक” तथा श्रीपाद गोपालभट्ट गोस्वामी महोदय के द्वारा विरचित “श्रीकृष्णप्रेमामृत” ग्रन्थ की प्राचीन कापी-श्रीनीलमणि ग्रन्थागार, वृन्दावन से प्राप्त हुई है । कृष्णप्रेमामृत ग्रन्थ तो श्रीकृष्ण प्रेमामृत स्वरूप है । इसमें चार प्रकारण हैं । वसनचौर्य केलि-वर्णन, भारवहनखण्ड, पार-

(४)

खण्ड, दानखण्ड हैं। श्रीपादग्रन्थकार ने इस ग्रन्थ की रचना के द्वारा श्रीमन्महाप्रभु के हृदयगत मधुर भाव का उटंकन किया है तथा मधुर भाव की मधुमय उपासना की पराकाष्ठा जगत् में दिखलाया है। वसनचौथ्यलीला का वर्णन श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध में मौजूद है। भागवत के टीकाकार श्रीधरस्वामी चरण ने “व्रजविहारस्तोत्र” में नौका के द्वारा जमुनापार लीला का वर्णन करते हुए कहा है—

“जीर्णा तरिः सरिदति गभीरनीरा,
वाला वयं सकलमित्थमन्ध हेतुः।
निस्तारवीजमिदमेव कृशोदरीणां
यन्माधवस्त्वमसि सम्प्रति कर्णधारः॥

दानलीला का वर्णन ग्रन्थों में प्रसिद्ध है।

वृन्दावननिवासी पूज्य गोस्वामी श्रीयुक्त रासविहारी शास्त्री महोदय की गवेषणा से, तथा भक्तवर परम हितेयी श्रीमान् गोपालदास जी बीकानेर निवासी के आग्रह से और गोस्वामी ग्रन्थ के मर्मज्ञ, पूज्य गोस्वामी दामोदरलाल जी वृन्दावन निवासी के प्रोत्साह से इस “ग्रन्थरत्नपट्टकम्” का प्रकाशन मैं मैं समर्थ हुआ। आशा है गोविन्द-उपासक वेष्णव समाज इसका पठन पाठन के द्वारा चिरवाधित करेगा।

विनीत-कृष्णदास।

मन्त्रार्थ दीपिका

श्री गौराङ्ग-प्रसादेन वीजस्य ह्यथदीपिका ।

विश्वनाथचक्रवर्त्ती नाम्नापि क्रियते मया ॥ १

श्री राधाकृष्णयोर्वीजाभिधानम्—रासोत्थासतन्त्रे यथा—

कामबीजात्मकः कृष्णो रतिबीजात्मिका राधा ।

तयोः संकीर्त्तनादं व राधाकृष्णौ प्रसीदतः ॥ २

तत्रादौ कामबीजार्थः—

कामानां स्वाभिलाषाणां च बीजं यद्वा कामोद्दीपनस्य बीजं

अथवा कामैः पूर्णं बीजं कामबीजम् ॥ ३ ॥

कामबीजलक्षणम्—गौतमीयतन्त्रे यथा—

विना बीजेन मन्त्राणां विफलं जायते फलम् ।

पञ्चालङ्कारसंयुक्तं बीजन्तु परमाद्भुतम् ॥

ककारश्च लकारश्च ईकारश्चाद्धचन्द्रकः ।

चन्द्रविन्दुश्च तद्वयुक्तं कामबीजमुदाहृतम् ॥ ४ ॥

श्री गौराङ्ग महाप्रभु की कृपा से विश्वनाथ चक्रवर्ती नाम से प्रसिद्ध मैं बीजार्थ प्रकाशकारी मन्त्रार्थदीपिका की रचना करता हूँ । श्री रासोत्थास नामक तन्त्र में श्री राधा-कृष्ण दोनों का रति, कामबीज स्वरूप से वर्णन है यथा—श्रीकृष्ण कामबीज आत्मक तथा श्री राधा रतिबीजात्मिका हैं । उन दोनों बीज के संकीर्त्तन से श्री राधा कृष्ण प्रसन्न होते हैं ॥ १-२ ॥

पहले कामबीज का अर्थ कहते हैं—कामों को अर्थात् निज अभिलाषाओं का बीज यह कामबीज है । अथवा काम उद्दीपन का बीज कामबीज है । किन्वा कामों से परिपूर्ण बीज कामबीज है ॥ ३ ॥ कामबीज का लक्षण गौतमीयतन्त्र में इस प्रकार है यथा—बीज के बिना मन्त्रों की विफलता है । पाँच अलङ्कार से संयुक्त यह कामबीज परम अद्भुत होता है । ककार, लकार, ईकार,

(२)

क्लीं मिति कामबीजमेकाक्षरम् ॥

गौतमीयतन्त्रे अस्यार्थो यथा—

क्लीङ्कारादसृजद्विश्वमिति प्राह श्रुतेः शिरः ।

लकारात् पृथिवी जाता ककाराज्जलसम्भवः ॥

ईकाराद्वह्निरुत्पन्नो नादाद्वायुरजायत ।

विन्दोराकाशसम्भूतिरिति भूतात्मको मनुः ॥ ५

बृहद्गौतमीयतन्त्रे—

ककारः पुरुषः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः ।

ईकारः प्रकृती राधा नित्यवृन्दावनेश्वरी ॥

लश्चानन्दात्मकं प्रेमसुखं तयोश्च कीर्तितम् ।

चुम्बनानन्दमाधुर्यं नादविन्दुः समीरितः ॥ ६

अथ कामबीजस्य श्रीविग्रहात्मकत्वम्—सनत्कुमारसंहितायाम्—

अथ श्रीकामबीजस्य शरीरं विग्रहात्मकम् ।

श्रीकृष्णशरीराभिन्नान्यक्षराणि क्रमात्शृणु ॥

अर्द्धचन्द्र, चन्द्रविन्दु ये पञ्चालङ्कार हैं। उन से युक्त कामबीज कहा जाता है ॥ ४ ॥

“क्लींम्” यह एकाक्षर कामबीज है। गौतमीयतन्त्र में इसका अर्थ इस प्रकार है—भगवान् ब्रह्मा ने क्लीङ्कार से विश्व की सृष्टि की है, ऐसा उपनिषद् भाग में कहा गया है। लकार से पृथिवी, ककार से जल, ईकार से अग्नि, नाद से वायु, विन्दु से आकाश उत्पन्न हुआ है। यह मन्त्र पञ्च भूतात्मक है ॥ ५ ॥

बृहद्गौतमीयतन्त्र में इस प्रकार कहा गया है। ककार में सच्चिदानन्द विग्रह परम पुरुष श्री कृष्ण हैं। ईकार का स्वरूप परमा प्रकृती, नित्यस्वरूपा, वृन्दावनेश्वरी श्री राधिका हैं। लकार का स्वरूप दोनों का आनन्दात्मक प्रेम सुख पदार्थ है। नाद-विन्दु से चुम्बनानन्दरूप माधुर्य वस्तु कही जाती है ॥ ६ ॥

(३)

ककारेण शिरो भालो भ्रूनांसा नेत्रकर्णकौ ।
 लकारेण भवेद्गण्डस्तदन्तो हनुरूपकः ॥
 चिवुकोऽथ ग्रीवा चैव कण्ठः पृष्ठश्च सुत्रत ।
 ईकारः स्कन्धो बाहुश्च कफोणिरङ्गुलीनखः ।
 अर्द्धचन्द्रो वक्षस्तुन्दः पार्श्वो नाभिः कटिस्तथा ।
 चन्द्रविन्दावुरुजानुर्गङ्गा गुल्फश्च पादकः ।
 पार्ष्णिश्चाप्यङ्गुली चैव नखेन्दुरपि नारदः !
 इति विग्रह-रूपश्च कामबीजात्मको हरिः ॥
 तत्रैव— बीजाक्षरं पञ्च पुष्पवाणतुल्यं क्रमात् शृणु ।
 ककारश्चाभ्रमुकुलो लकारश्चाशोकः स्मृतः ॥
 ईकारो मल्लिकापुष्पं माधवी चार्द्धचन्द्रकः ।
 विन्दुश्च वकुलपुष्पमेते वाणाः स्युरेव च ॥ ८

कामबीज श्री कृष्ण विग्रह रूप ऐसा सनत्कुमारसंहिता का कथन है—अनन्तर कामबीज विग्रहात्मक है इसका वर्णन करते हैं । कामबीज के अक्षर सब श्री कृष्णविग्रह से अभिन्न है । क्रम से सुनो—ककार से मस्तक, भाल, भ्रू, नासिका, नेत्र तथा कर्ण हैं । लकार में दोनों गण्ड, हनु (ठाढ़ी), चिवुक, ग्रीवा, कण्ठ, पृष्ठ-देश हैं । इकार स्कन्ध, बाहु, बाँण, अङ्गुलियाँ, नखराजि हैं । वक्ष, उदर, दोनों पार्श्व, नाभि, कटि ये अर्द्धचन्द्र स्वरूप हैं । उरु, जानु, जङ्घा, गुल्फ (टकुना), पाद, पार्ष्णि (तलुवा), अङ्गुलियाँ, नखचन्द्र ये चन्द्रविन्दु स्वरूप हैं । हे महमना नारद ! इस प्रकार श्री हरि-विग्रह कामबीजात्मक है । वहाँ और भी कहा गया है, यह बीजाक्षर काम के पाँच पुष्पवाण तुल्य है । क्रम से सुनो । ककार से आभ्र मुकुल, लकार से अशोक, ईकार से मल्ली (चमेली); अर्द्धचन्द्र से माधवी, विन्दु से वकुल पुष्प है । इस प्रकार यह अक्षर पुष्प वाण स्वरूप है ॥ ८ ॥

कामगायत्र्यर्थः-

गायत्री सा महामन्त्रः कामपूर्वार्थ कथ्यते ।

साधका यां गृहीत्वैव जायन्ते ब्रजमण्डले ॥ ६

कामबीजेन सह संयुक्ता या गायत्री सा कामगायत्री ।
यद्वा कामबीजस्य या गायत्री सा काम-गायत्री । अस्याः उपास्यः
(साध्यः) देवः शृङ्गाररसराजस्वरूपाभिन्नो मदनः श्रीकृष्णो
नन्दात्मजः । अस्य धाम वृन्दावनमेव ॥ १० ॥

कामगायत्री लक्षणम्-सनत्कुमारसंहितायाम्-

आदौ मन्मथमुद्धृत्य कामदेवपदं वदेत् ।

आयान्ते विद्महे पुष्पवाणायैति पदं ततः ।

धीमहीति तथोक्त्वाथ तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात् ॥ ११

अब कामगायत्री का अर्थ कहते हैं-वह कामपूर्वा गायत्री
अर्थात् कामगायत्री महामन्त्र करके कही जाती है । साधक सब
जिस का आश्रय कर ब्रजमण्डल में जन्म लेते हैं अर्थात् परिकर
रूप सेवायोग्य शरीर प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

कामबीज के साथ संयुक्ता जो गायत्री है वह कामगायत्री
है । अथवा कामबीज की जो गायत्री वह कामगायत्री है । इस का
उपास्य अर्थात् साध्यवस्तु देवाधिदेव शृङ्गार-रसराज स्वरूप से
अभिन्न अर्थात् अप्राकृत रसराज-शृङ्गार स्वरूप, नन्दनन्दन, श्रीकृष्ण
हैं । इन का धाम श्री वृन्दावन है ॥ १० ॥

सनत्कुमारसंहिता में कामगायत्री का लक्षण इस प्रकार कहा
गया है । पहले मन्मथ अर्थात् काम शब्द का उद्धार कर पश्चात्
कामदेव पद का प्रयोग करें । उसे आय शब्द से संयुक्त कर के
उच्चारण करें । अर्थात् "क्लीम् कामदेवाय" इस प्रकार कहें । पुनः
"विद्महे पुष्पवाणाय" इस प्रकार कह कर "धीमहि" का संयोग
करें । उसके अनन्तर "तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात्" का प्रयोग करें ।
इस प्रकार करने पर कामगायत्री निष्पन्न होती है ॥ ११ ॥

(५)

क्लीमिति वेणुमाधुर्येण श्रीराधिकादीनां मनो हरणात् । कामदेवा-
येति लीलामाधुर्येण श्रीराधिकादीनां विवेकहरणात् । पुष्पवाणा-
येति लावण्यगुणमाधुर्यादिभिः श्रीराधिकादीनां सम्भोगरसोद्भा-
पनात् ॥ १२ ॥

कामसंवंधानुगयोः कामानुगायामेवानया गायत्र्या उपास्यते । कामान्
स्वाभिलाषान् दीव्यति प्रकाशयति । यद्वा कामेन स्वाभिलाषेण
दीव्यति क्रोडति यः स कामदेवस्तस्मै कामदेवाय विद्महे जानीमहि ।
किम्भूताय ? पञ्चपुष्पाण्येव पञ्च कामबीजाक्षराणि पञ्चवाणा
अस्त्राणि शार्ङ्गधनुर्गुणपञ्चकेषु यस्य स पुष्पवाणस्तस्मै पुष्पवाणाय
वन्द्यमीमहि ध्यायेम, गौरवार्थे बहुवचनम् । एवं स्वरूपो यस्मात्तन्मा-
दनङ्गः ब्रजस्थितो नवोऽप्राकृतः कन्दर्पो नवीनमदनः, कामबीजका-

वेणुमाधुर्य से श्री राधिकादि ब्रजबालाओं के मन का
हरण करने के कारण “क्लीम्” यह सिद्ध होता है । “कामदेवाय”
यह पद लीला माधुर्य से श्री राधिकादि ब्रजबालाओं का विवेक
हरण के कारण सिद्ध हुआ है । लावण्य-गुण-माधुर्यादियों से
उन मंत्र का सम्भोग-रसानन्द उद्दीपन के कारण “पुष्पवाणाय”
पद का प्रयोग है ॥ १२ ॥

सम्बन्ध तथा अनुगा में काम शब्द का तात्पर्य है । कामा-
नुगा अर्थात् रागानुगा में ही इस गायत्री के द्वारा उपासना होती
है । कामों को अर्थात् निज अभिलाषों को “दीव्यति” अर्थात्
प्रकाश करता है । अथवा निज अभिलाष के द्वारा जो क्रोड़ा
करता है, वह कामदेव है । उस कामदेव के लिये “विद्महे”
अर्थात् जानते हैं । वह कामदेव किस प्रकार का है ? कहते हैं—
पञ्चपुष्प की भाँति पञ्च कामबीजाक्षर ही पञ्च अस्त्र जिस के
वह पुष्पवाण है, उस पुष्पवाण के लिये हम सब धीमहि अर्थात्
ध्यान करते हैं । यहाँ गौरवार्थ में बहु वचन का प्रयोग है । पञ्च

मगायत्रीभ्यां यस्योपासना तयोर्य एवोपास्यः स एवात्मपर्यन्त
सर्वचित्ताकर्षकोऽसमोर्द्धरूपः श्यामो रसमयमूर्तिः, शृङ्गाररस-
राजविग्रहो नो अस्मान् प्रचोदयात् प्रकर्षेण चोदयात् प्रसीदतु-
निजदास्ये नियोजयतु इति ॥१३॥

एतानि सार्द्धचतुर्विंशतिरक्षराणि सार्द्धचतुर्विंशतिश्चन्द्रा
भवन्ति । ते च श्रीकृष्णस्याङ्गे उदिताः सन्तः त्रीणि जगन्ति
काममयानि कुर्वन्ति । ककारादि तकारान्तानि तान्यक्षराणि
मुखगण्डजलाटादि—करचरणान्तान्यङ्गानि दक्षिणादिक्रमरूपेण
ज्ञेयानि ॥ १४ ॥

अस्त्र का प्रयोग शार्ङ्गधनु के गुण पञ्चक में होता है । इस का
तात्पर्य यह है कि कामबीज के अक्षर पाँच पुष्पों में प्रयोजित होते
हैं । ये पाँच पुष्प शार्ङ्गधनु के गुणपञ्चक में अस्त्ररूप माने जाते
हैं । इस प्रकार स्वरूप जिसका है वह अनङ्ग है । अर्थात् ब्रज में
विराजमान नवीन मदन है । तात्पर्य—ब्रजविहारी, अप्राकृत कन्दर्प
स्वरूप नन्दनन्दन हैं । जिनकी उपासना कामबीज कामगायत्री दोनों
से होती है । कामबीज-कामगायत्री के उपास्य स्वरूप वे आत्म
पर्यन्त सब के चित्ताकर्षक असमोर्द्धरूप अर्थात् जिन के रूप की
न समानता है न ऊर्द्धता है, श्यामसुन्दर, रसमय मूर्ति स्वरूप,
शृङ्गार रसराज विग्रह नन्दनन्दन हैं । इस प्रकार वे हम सब के
लिये प्रकर्ष से प्रसन्न हों अर्थात् हम सब को निज दास्य में नियो-
जित करें ॥ १३ ॥

कामगायत्री में साढ़े चौबीस अक्षर होते हैं । ये साढ़े
चौबीस अक्षर साढ़े चौबीस चन्द्रस्वरूप हैं । वे साढ़े चौबीस चन्द्र
श्री कृष्ण विग्रह में उदित हो कर तीन जगत् को काममय करते
हैं । चन्द्रोदय होने पर जगत् में काम का उद्दीपन स्वभाव सिद्ध
है । ककार से आदि कर तकारान्त पर्यन्त वे साढ़े चौबीस अक्षर

(७)

गायत्र्यक्षराणां चन्द्रत्वनिरूपणं शृणु-

एषामप्यक्षराणां तु चन्द्रत्वे निर्णयं शृणु ।

मुखेऽप्येकं विजानीयाद्गण्डयोर्द्वौ तथैव च ॥

ललाटे चार्द्धचन्द्रं वै तिलकं पूर्णचन्द्रकम् ।

पाण्योर्नखा दश प्रोक्तास्तत्रक्षराणि मनोभुवः ॥

पादाब्जयोस्तथा ज्ञेया नखचन्द्रा दश क्रमात् ।

अर्थो विज्ञेय इत्थं वै गायत्र्याश्च मनीषिभिः ॥

क्रमाच्चन्द्रान् विजानीयात् कादितन्ताक्षराणि तु ।

दक्षिणादिक्रमेणैव क्रमस्तेषां सुसम्मतः ॥१५॥

अत्रापि भो वैष्णवाः ! मम लेखन वृत्तान्तं यूयं शृणुत । यथा

श्री चैतन्यचरितामृते श्रीकृष्णदासकविराज गोस्वामिना प्राकृत-

श्री कृष्ण के मुख-गण्ड-ललाटादि से लेकर कर-चरणान्त पर्यन्त

साढ़े चौबीस अङ्ग स्वरूप हैं । दक्षिणाङ्ग क्रम से उनकी गणना

है ॥ १४ ॥

कामगायत्रि के अक्षरों का चन्द्र स्वरूप में निरूपण इस

प्रकार है- सुनो । इन अक्षरों का चन्द्र स्वरूप में कहाँ कहाँ किस

प्रकार से स्थित है उसे कहते हैं । मुख में एक, दोनों गण्ड में दो,

ललाट में अर्द्धचन्द्र, ललाट में तिलक पूर्ण चन्द्र एक, दोनों हाथों

के दस नख दस चन्द्र इस प्रकार साढ़े चौदह चन्द्रमा हुये । पुनः

चरण कमलों के दस नख दस चन्द्र हैं । सर्व समेत साढ़े चौबीस

चन्द्रमा क्रम से श्रीकृष्ण विग्रह में उदय होते हैं । बुद्धिमानों के

द्वारा कामगायत्री की इस प्रकार व्याख्या की जाती है । अर्थात्

ककारादि से लेकर तकारान्त पर्यन्त साढ़े चौबीस अक्षर श्री कृष्ण

के दक्षिणाङ्ग क्रम से चन्द्रस्वरूप से विराजित हैं । यह सुसम्मत

है ॥ १५ ॥

अब व्याख्याकार श्रीचक्रवर्ती जी से इस विषय में जो बात

बीती है उसे कहते हैं-अहो वैष्णवगण ! इस विषय में मेरा

(८)

वर्णानुक्रमेण कामगायत्र्या वर्णसंख्या सार्द्धचतुर्विंशतिरिति
 यल्लिखितं तन्मतामुसारेण मयापि तल्लिख्यते । तद्यथा-काम-
 गायत्री मन्त्ररूप, ह्य कृष्णोर स्वरूप, सार्द्धचत्विश अक्षर तार
 ह्य । से अक्षर चन्द्रचयं, कृष्णे करि उदय, त्रिजगत कैल काम-
 मय ॥ इत्येतत् प्रमाणमवलम्ब्य पूर्वमतानुसारेणानुक्रम्य संस्था-
 प्यते किन्तु श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी पञ्चविंशति परित्यज्य
 केन प्रमाणेन केन वाभिप्रायेण सार्द्धचतुर्विंशतिमक्षरसंख्यां
 गदति तत्रापि मम धीगोचराभावः । नानापाठ्यश्राव्यशास्त्र विचारे
 चार्द्धाक्षरसम्भावना नास्ति । अतो महासन्देहसागरे निमग्न आस-
 मिति यूयं विचारयत । यदि केचिद् वदन्ति मात्राहीनतकारो
 अर्द्धाक्षरं तदा मात्राहीनान्यक्षराण्येव तदितरान्यपि सन्ति । इत्यपि
 न घटते । यतो व्याकरणपुराणागम-नाट्यालङ्कारादिशास्त्रेषु
 स्वरव्यञ्जनभेदेन पञ्चाशद्वर्णनिर्णय एवास्ति तत्रार्द्धाक्षरं नास्त्येव ।

लिखने का वृत्तान्त इस प्रकार है सुनिये । श्रीकृष्णदास कविराज
 गोस्वामी जी ने श्रीचैतन्यचरितामृत में प्राकृत वर्ण क्रम से काम-
 गायत्री की वर्ण संख्या साढ़े चौबीस कही है । उनके मत के अनु-
 सार मैंने भी साढ़े चौबीस अक्षर का उल्लेख किया है । वे चैतन्य-
 चरितामृत में इस प्रकार कहते हैं—“कामगायत्री मन्त्र रूप है वह
 श्रीकृष्ण का स्वरूप है । उसके अक्षर साढ़े चौबीस होते हैं । वे
 अक्षर रूप चन्द्र समूह श्रीकृष्ण में उदय होकर त्रिजगत् काममय
 कर रहे हैं ।” इस प्रमाण का अवलम्बन करके तथा पूर्व (प्राचीन)
 मत का अनुशरण कर मैंने भी इस प्रकार व्याख्या की । परन्तु
 मुझे बड़ा भारी यह सन्देह उठा है कि श्रीकृष्णदास कविराज ने
 पञ्चीस अक्षर का परित्याग कर किस प्रमाण वल से अथवा किस
 अभिप्राय से साढ़े चौबीस अक्षर कहे हैं ? इस विषय में मेरी
 बुद्धि प्रवेश नहीं रही । अनेक ग्रन्थ-पाठ श्रवण करने पर अर्द्धाक्षर

तद्यथा श्री हरिनामामृत व्याकरणे संज्ञापादे “ नारायणादुद्भूतोऽयं वर्णक्रमः ” इति पञ्चाशदकारककारादयः । एवमन्येष्वपि व्याकरणेषु च । पुनः बृहन्नारदीयपुराणे श्रीराधिकासहस्रनामस्तोत्रे-वृन्दावनेश्वरी राधा पञ्चाशद्वर्णरूपिणीत्यपि । एवमेव शास्त्रान्तरेष्वपि मातृकादि प्रकरणे च कुत्रापि साद्धपञ्चाशद्वर्णक्रमो मया न दृश्यते । एतेषु श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामिनः किं धीगोचराभावः । एतदपि न संभाव्यते । यतः स सर्व्वं जानाति भ्रम-प्रमादादिदोषाहित्यात् ॥ १५

की सम्भावना सिद्ध नहीं हाती है । अतः इस महान् सन्देह सागर में मैं निमग्न रहा । आप सब इस विषय का विचार कीजिये । देखिये-यदि कोई-कोई मात्रा से रहित तकार को अर्द्धाक्षर कहते हैं तो भी यह समीचीन नहीं है । क्यों कि इस मन्त्र में मात्रा रहित अन्य अक्षर भी मौजूद हैं । वे क्यों अर्द्धाक्षर नहीं होंगे? व्याकरण-पुराण-आगम-नाट्य-अलङ्कारादि शास्त्रों में स्वर-व्यञ्जन भेद से पचास वर्णों का निर्णय है । उन में अर्द्धाक्षर का निर्णय नहीं है । श्रीहरिनामामृत व्याकरण में संज्ञा-प्रकरण में कहा गया है—“यह वर्णक्रम नारायण से उत्पन्न हुआ है । अकारादि स्वरवर्ण तथा ककारादि व्यञ्जनवर्ण सर्व्वसमेत पचास वर्ण होते हैं ।” इस प्रकार अन्य व्याकरणों में भी कहा गया है । और भी देखिये-बृहन्नारदीय-पुराण में राधिका-सहस्रनामस्तोत्र में “श्रीराधा वृन्दावनेश्वरी, पचास वर्ण स्वरूपा हैं” ऐसा भी कथन है । इस प्रकार अन्य शास्त्रों में भी कहा गया है । मातृकादिप्रकरण में कहीं भी साढ़े पचास वर्ण क्रम नहीं देखा जाता है । मैं ऐसी भी सम्भावना नहीं कर सकता हूँ कि श्री कविराज गोस्वामी का बुद्धि-प्रवेश नहीं है । क्योंकि वे सब ही जानते थे । उन में भ्रम-प्रमादादि दोष का अभाव था ॥ १५ ॥

पुनश्च यद्यपि तकारोऽर्द्धाक्षरं निश्चीयते तदा किं श्रीकृष्ण-
दास कविराज गोस्वामिना क्रमभङ्गं विलिख्यते? यतो मुखगण्डादि-
चरणान्तवर्णनक्रमेण चरणं परित्यज्य ललाटे अर्द्धचन्द्रः संस्था-
त्यते । तद्यथा-श्री चैतन्यचरितामृतं मध्यलीलायामेकविंशपरिच्छेदे
श्री सनातन-शिष्याऽसङ्गे सम्बन्धतत्त्वविचारे-

“सखि हे कृष्णमुख द्विजराज राज ।

कृष्ण वपु सिंहासने वसि राज्यशासने, कार संगे चन्द्रेर समाज ॥ध्रु.
दुइ गण्ड सुचिक्कण जिनि मणि दर्पण,

सेइ दुइ पूर्ण चन्द्र जानि ।

ललाट अष्टमी इन्दु ताहाते चन्दन विन्दु,

से हो एक पूर्ण चन्द्र मानि ॥

फिर भी यदि तकार अर्द्धाक्षर ऐसा निश्चय किया जाता है
तब उस विषय में क्या कविराज गोस्वामी जी ने क्रम भंग करके
लिखा है ? क्योंकि मुख-गण्डादि से लेकर चरणान्त वर्णन क्रम में
मात्रा रहित तकार अर्द्धचन्द्र चरण में आता है परन्तु वे ललाट
में अर्द्धचन्द्र की स्थापना करते हैं । श्री चैतन्य चरितामृत के मध्य-
लीला इक्कीस परिच्छेद पर श्री सनातन-गोस्वामी जी की शिक्षा
प्रसङ्ग में सम्बन्धतत्त्व का विचार में—

श्रीकृष्ण विरह विधुरा श्रीराधिका किसी सखी के निकट
श्रीकृष्ण का रूप वर्णन कर रही हैं । इधर श्रीराधिका-भांव से
विभावित श्रीगौराङ्गचन्द्र अपने को राधिका मान कर किसी सखी
को लक्ष्य करके उसका अनुवाद कर रहे हैं—यह वर्णन श्रीपाद
सनातन गोस्वामी जी की शिक्षा के लिये है, वे ब्रजलीला में रति-
मञ्जरी हैं ।

“हे सखि ! श्रीकृष्ण का मुख चन्द्र चन्द्रसमूह का राजा
है । वह उनके देहरूप सिंहासन में बैठ कर राज्य-शासन कर रहा

(११)

कर नख चाँदेर हाट वंशी ऊपर करे नाट,
 तार गीत मुरलीर तान।
 पद नख चन्द्र गण तले करे नर्तन,
 नूपुरे ध्वनि जाँर गान ॥
 नाचे मकर कुण्डल नेत्र लीला कमल,
 विलासी राजा सतत नाचाय।
 भ्रू धनु नासा वाण धनुर्गुण दुइ कान,
 नारी गण लक्ष्य बिंधे ताय ॥
 एइ चाँदेर बड नाट पसारि चाँदेर हाट,
 बिनु मूले विलाय निजामृत ॥
 काहों स्मित ज्योत्स्नामृते काहाके अधरामृते,
 सब लोक करे आप्यायित” ॥

है। संग में चन्द्रों का समाज विराजमान है अर्थात् अन्य साढ़े
 तेईस चन्द्र इस मुखचन्द राजा के परिकर हैं। मणिदर्पण पराजय चन्द्रावत
 कारी सुचिक्कण दानों गण्ड दो पूर्णचन्द्र हैं। उनके जलाट में तन्व
 अष्टमी तिथि का चन्द्रमा अर्थात् अर्द्धचन्द्र मौजूद है। उसमें
 चन्दनविन्दु शोभायमान है। वह एक पूर्ण चन्द्र है। इस प्रकार
 साढ़े चारि चन्द्रमा हैं। हाथों के दस नख दस चन्द्र हैं वे सब वंशी
 के ऊपर नृत्य कर रहे हैं। तात्पर्य-वंशीवादन के समय श्रीकृष्ण
 हाथों की अँगुलियों को उठाते हैं नवाते हैं। वह मानो नृत्यस्वरूप
 में अँगुलियों की स्थिति है। उन अँगुलि चन्द्र समाज का नृत्य में
 मुरली तान गान रूप है। भावार्थ—हाथों के अँगुलि-नख रूप
 दश चन्द्र गान करते हुए वंशी के ऊपर विराजमान होकर नाच रहे
 हैं। पुनः पदनख रूप चन्द्रगण अर्थात् दशचन्द्र नीचे मानों रह
 कर नृत्य कर रहे हैं। नूपुर ध्वनि मानो उनका गान है। कानों में
 मकरकुण्डल भी चलायमान हैं मानो वे नृत्य कर रहे हैं। नेत्र

इत्यनुवादद्वयेन बहुवादानन्तरमपि अत्र सिद्धान्तो न घटते । तदा सर्वोपायं त्यक्त्वान्नपानदिकञ्च बिहाय मनोदुःखेन देहत्यागाभिप्रायेण राधाकुण्डतटेऽभिपपातोऽहम् । यदा मन्त्राक्षरगोचरो न भवेत्तदा कथं देवतागोचरो भविष्यतीति देहत्याग एव कर्त्तव्यः ॥ १६ ॥

दोनों लीला कमल हैं । मुख्यरूप विलासी चन्द्रराजा निरन्तर उनको नचाता रहता है । अर्थात् श्रीकृष्ण के दोनों नेत्र निरन्तर घूर्णमान हैं । श्रीकृष्ण के भ्रू धनुरूप है । उसमें बाण मानो नासिका है । दोनों कान धनु के गुण हैं । वह मुखचन्द्ररूप विलासी राजा इन धनुर्वीणों के द्वारा गोपनारियों को विद्व मग्नाहित करता है । गोपियों ने उसके श्रीकृष्णवपुः सिंहासन का एक अमूल्य रत्न अर्थात् श्रीकृष्ण का मन रूप रत्न की चोरी की, अतः उनको उन बाणों के द्वारा विध कर शासित कर रहा है । भावार्थ—श्रीकृष्ण के मुखदर्शन से गोपियाँ निरन्तर मग्नाहित रहती हैं । इस चन्द्रमा के अर्थात् मुख्यरूप विलासी चन्द्रराजा के और एक अद्भुत विलास है । वह ऐसा है कि उसने एक बड़ा भारी हाट को फेलाय रक्खा है । उस बाजार में अन्य चन्द्र सब दूकानदार हैं । वह राजा उन दूकानदारों के द्वारा बिना मूल्य में समागत जनों को निजामृत का वितरण करता रहता है । किसी को स्मितरूप ज्योत्स्नामृत से किसी को मुखअधरामृत से इस प्रकार सब को प्रसन्न करता है ।

इस प्रकार दोनों अनुवाद से बहु विचार परामर्श के अनन्तर भी इस विषय में कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं घटता है । उस समय मैं समस्त उपाय छोड़ कर अन्नभोजन-जलपानादि त्याग कर मन के दुःख में देह त्याग का विचारकर राधाकुण्ड के तट में निश्चिष्ट पड़ा रहा । यदि मन्त्राक्षर गोचर नहीं हो रहा है तब किसप्रकार देवता गोचर हो सकता है अतएव देहत्याग ही कर्त्तव्य है ॥ १६ ॥

(१३)

ततो रात्रे द्वितीयप्रहरे गते सति तन्द्रां प्राप्य मया दृश्यते स्म । श्री वृषभानुनन्दिनी आगता ब्रवीति- भो विश्वनाथ ! हरि-
वल्लभ ! त्वमुत्तिष्ठ । श्रीकृष्णदासकविराजेन यल्लिखितं तदेव सत्यम्
स च मम नर्मसहचरी, ममानुप्रहेण ममान्तरं सर्वं जानात्येव;
तद्वाक्ये सन्देहं मा कुरु, एष ममोपासनामन्त्रः, अहमपि मन्त्राक्षरै-
र्वेद्या । मद्रनुकम्पां विना नान्यः कोऽप्येतद्विज्ञातुमर्हति । अर्द्धा-
क्षरनिरूपणं “वर्णागमभास्वदि” यदस्ति । यद् दृष्ट्वा श्री कृष्णदास
कविराजेन लिखितं तत् शृणु । तदनन्तरं त्वमिमं ग्रन्थं दृष्ट्वा
सर्वोपकारार्थमत्र प्रमाणसंग्रहं कुरु । एतच्छ्रण्यन् चैतन्यावस्थायां
शीघ्रमुत्थाय निःसन्देहेन हाहेतिमुहुर्मुहुर्विलप्य तदाज्ञां हृदि
निधाय तत्पालनार्थं यत्नवानभवम् । अर्द्धाक्षरनिर्णये श्रीराधिका-
वाक्यं यथा—“व्यन्तयकारोऽर्द्धाक्षरं ललाटे ऽर्द्धचन्द्रविम्बः तदितरं
पूर्णाक्षरं पूर्णचन्द्र” इति ॥ १७

इस प्रकार रात्रि का द्वितीय प्रहर अतीत हुआ । मैं कुछ
तन्द्रा प्राप्त हो गया । मैंने देखा कि श्री वृषभानुनन्दिनी आकर
कहने लगी—हे विश्वनाथ ! हे हरिवल्लभ ! तुम उठो । कृष्णदास
कविराज ने जो लिखा है वह सत्य है । कृष्णदास तो मेरी नर्म
सहचरी है । मेरा अनुग्रह से वह मेरा समस्त अन्तरभाव जानता
है । उनके वाक्य में सन्देह मत करो । यह मन्त्र मेरी उपासना
स्वरूप है । मन्त्राक्षरों से मैं भी जानी जाती हूँ । मेरी अनुकम्पा के
विना और कोई इस विषय का रहस्य नहीं जान सकता है ।
“वर्णागमभास्वदि” नामक ग्रन्थ में अर्द्धाक्षर निरूपण है । जिसको
देख कर ही कृष्णदास कविराज ने लिखा है । तुम सुनो । इसके
अनन्तर तुम भी इस ग्रन्थ को देख कर सब के उपकारार्थ इस
विषय का प्रमाण संग्रह करो । राधिका जी का इस प्रकार वचन
सुन कर मेरी कुछ चैतन्य-अवस्था हुई । मैं चेतन होकर शीघ्र

(१४)

श्रीराधिकोपदेशसम्मतमर्द्धाक्षरनिरूपणं यथा-वर्णागम-
भास्वदि-विकारान्तयकारेण चार्द्धाक्षरं प्रकीर्तितम् ॥ १८

गायत्री—“गायन्तं त्रायते तस्मात् गायत्रीत्वं ततः स्मृतम्”

इति श्री मद् विश्वनाथचक्रवर्ती विरचित मन्त्रार्थदीपिकायां

कामगायत्र्यथः सम्पूर्णेः ॥

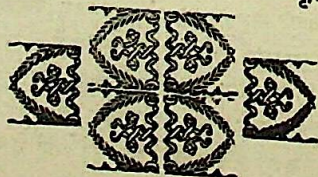
उठा। मेरा सन्देह जाता रहा। मैं “हाय हाय” इस प्रकार बार-बार
विलाप करने लगा। उनकी आज्ञा को हृदय में धारण कर उस के
पालन के लिये यत्नवान हुआ। अर्द्धाक्षरनिर्णय में श्रीराधिका
वचन इस प्रकार यथा—“वि” अन्त में जिसका ऐसा जो “य” का
वह अर्द्धाक्षर माना जाता है। वर्ण क्रम से वह अक्षर ललाट में
पड़ता है। श्रीकृष्ण के ललाट में अर्द्धचन्द्र की स्थिति सुसिद्ध है
अर्थात् ललाट अर्द्धचन्द्र-विम्ब स्वरूप है। मन्त्र के अन्य सब
अक्षर-पूर्णाक्षर हैं तथा पूर्णाचन्द्र स्वरूप हैं ॥ १७ ॥

श्रीराधिका के उपदेश सम्मत अर्द्धाक्षर निरूपण “वर्णागम-
भास्वदि” में इस प्रकार है—विकारान्त यकार अर्द्धाक्षर कहा जाता
है, अर्थात् अन्त में “वि” रहने पर “य” अर्द्धाक्षर माना जाता
है ॥ १८ ॥

यहाँ गायत्री शब्द का अर्थ—गानकारी को त्राण करती
है इसलिये गायत्री कही जाती है ॥ १९ ॥

अनुवादक

कृष्णदास



कामगायत्री व्याख्या

आदौ बीजार्थः—

पञ्चालङ्कारसंयुक्तं बीजं तु परमाद्भुतम् ।

लकारात्पृथिवी जाता ककाराज्जलसंभवः ॥

ईकाराद्वह्निरुत्पन्नो नादाद्वायुः प्रजायते ।

विन्दोराकाशसंभूतिरिति भूतात्मको मनुः ॥ १ ॥

यद्वा—ककारः पुरुषः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः ।

ईकारः प्रकृती राधा नित्या वृन्दावनेश्वरी ॥

लश्चानन्दात्मकं प्रेमसुखत्वे परिकीर्तितम् ।

चुम्बनानन्दमाधुर्यं नादो विन्दुममोरितम् ॥

ककारो नायकः श्रेष्ठः ईकारो नायिका वरा ।

लकारो लहादरूपा च विन्दुश्चुम्बनमुच्यते ॥ २ ॥

केचिदेवं व्याख्यायन्ते—गल-शिर-आस्यं ककारः, चक्षुःकर्ण-
बाहु लकारः, रूपनासिकाहस्तं ईकारः, कक्ष-पृष्ठ-कटि-जंघा नादः,

पहले बीज का अर्थ कहते हैं—गौतमीयतन्त्र में इस प्रकार है—“लकार पृथिवी का बीज है अर्थात् लकार से पृथिवी की उत्पत्ति है । इस प्रकार ककार से जल, ईकार से अग्नि, नाद से वायु, विन्दु से आकाश का उत्पन्न है । यह मंत्र पंच भूतात्मक है ॥ १

सच्चिदानन्दविग्रह-अप्राकृत अर्थात् दिव्यरूप, महापुरुष श्रीकृष्ण स्वरूप ककार, मूल प्रकृती नित्या वृन्दावनेश्वरी श्रीराधिका स्वरूप ईकार है । आनन्दात्मक स्वरूप लकार प्रेम सुख में कहा जाता है । चुम्बनानन्द माधुर्य में नाद-विन्दु का व्यवहार है ।

ककार से नायक शिरोमणि, ईकार से श्रेष्ठा नायिका, लकार से आनन्दरूपा, विन्दु से चुम्बन कहे जाते हैं ॥ २ ॥

कोई कोई इस प्रकार की व्याख्या करते हैं—गला-मस्तक-मुख-स्वरा ककार, नेत्र-कर्ण-बाहु रूप लकार, रूप-नासिका-हस्त

जानुपादौ च विन्दुः इति पञ्चभूतो मूर्तिमान् पुरुषः ॥ ३ ॥

कादापो लात् पृथिवी ईतो वह्निर्नादाद्वायुः विन्दोराकाशसंभूत-
इति जलरसपुरुषकामः ककारः । पृथिवीगन्धप्रकृतिमूर्ति लकारः ।
तेजरूपमहदाधार ईकारः । वायुस्पर्शजीवो नादः । आकाश-
शब्दोऽहंकारो विन्दुः इति गोपालतापनी वेदे ॥ ४ ॥

रत्नप्रिया रतिकला भद्रा सौरभा ककारः । सुमुखी कलहंसी
लकारः । मदोन्मदा चन्द्राकारः लकारः । कलापिनी विन्दुः ॥ ५ ॥

ककारः कथ्यते कामो लकारो मूर्तिरुच्यते ।

ईकारः शक्तिरूपा च नादो विन्दुरुदीरिता ॥ इति मुनयः ॥ ६ ॥

ईकारो नायिका मुख्या लकारो ललिता परा ।

ककारो नायको मुख्यो विन्दुश्चुम्बनमुच्यते ॥

आश्लेषोऽन्यर्द्धचन्द्रश्च बीजार्थं परमाद्भुतम् ॥ इति ॥ ७ ॥

ईकार, काँल-पीठ-कटि-जंघा नाद, जानु-चरण विन्दु हैं । इस
प्रकार पञ्चभूत स्वरूप मूर्तिमान् एक पुरुष सिद्ध हुआ है ॥ ३ ॥

ककार से जल, लकार से पृथिवी, ईकार से अग्नि, नाद से
वायु, विंदु से आकाश की उत्पत्ति है इस लिये ककार जलरस-
पुरुषमय कामस्वरूप है । पृथिवी गंध-प्रकृति मूर्ति रूप लकार है ।
तेज-रूप-महदाधार स्वरूप ईकार है । वायु-स्पर्श-जीव रूप नाद
तथा आकाश-शब्द-अहङ्कारात्मक विन्दु है ऐसा गोपालतापनी
वेद में वर्णन है ॥ ४ ॥

ककार रत्नप्रिया रतिकला भद्रासौरभा स्वरूप है । इस
प्रकार लकार में सुमुखी-कलहंसी, चन्द्रविन्दु में मदोन्मदा, विन्दु
में कलापिनी को जानना चाहिये ॥ ५ ॥

ककार से काम, लकार में मूर्ति, ईकार से शक्ति, विन्दु से
नाद कहे जाते हैं ऐसा मुनियों का वचन है ॥ ६ ॥

ईकार से मुख्या नायिका श्रीराधिका, लकार से परा रूपा

(३)

कामदेवाय विद्महे पुष्पवाणाय धीमहि तन्नोऽनङ्गः प्रचोद-
यात् ॥ अस्यार्थः—कामेन अभिलाषेन स्वविषयप्रीतिदाढ्येन
दीव्यति क्रीडति दिवु क्रीडायां नित्यविषयत्वात् तस्मै कामदेवाय ।
विद्महे विद्मललाभे विदु ज्ञाने वा धीमहि ध्यायेमः कामदेवाय कथं
भूताय पुष्पवाणाय पुष्पमेव वाणो यस्य तस्मै, तन्नोऽनङ्गः सोऽनङ्गः
कन्दर्पः, नोऽस्मान् प्रचोदयात् (प्रकर्षेण) प्रकृष्टरूपेण उदयात् उदयं
(कुर्यात्) इत्यर्थः । चकारः समुच्चयार्थे इति । “क्ली” इति पदेन
मूर्तिमान् पुरुषः, कामपदेन गण्डद्वयम्, देवपदेनात्रास्यभाल उच्यते,
अभिलाषेण स्वविषयप्रीतिदाढ्येन चन्द्रमण्डलेन दीव्यति क्रोडति,
यकारेण अर्द्धचन्द्रः भाले तिलकचन्द्रः सार्द्धचन्द्रचतुष्टयः इत्यपि
श्री ललिता, ककार से नायक मुख्य श्री कृष्ण हैं । विन्दु चुम्बन
स्वरूप है । आश्लेष अर्द्धचन्द्र स्वरूप है । ऐसा परम अद्भुत काम-
बीज का अर्थ है ॥ ७ ॥

अब काम गायत्रि का अर्थ कहते हैं । काम से अर्थात् अभि-
लाष से किम्वा निज विषय प्रीतिदाढ्य के द्वारा “दीव्यति” अर्थात्
क्रीडा करता है वह कामदेव है उस कामदेव के लिये । “दिवु” यह
धातु क्रीडार्थ में है । वह क्रीडा नित्य विषयक है । विद्महे इस का
अर्थ—“विद्मल” लाभार्थ किम्वा ज्ञानार्थ में प्रयोजित होता है । अर्थात्
हम कामदेव के लिये जानते हैं, किम्वा उस को प्राप्त करते हैं ।
“धीमहि” शब्द का अर्थ हम ध्यान करते हैं । कामदेव किस प्रकार
है ? कहते हैं—“पुष्पवाणाय” यहाँ पुष्प है वाण जिसका वह पुष्प-
वाण है । कामदेव का पुष्पवाणत्व जगप्रसिद्ध है । तात्पर्य—पुष्प-
वाणधारी उस कामदेव को जानने के लिये किम्वा लाभ करने के
लिये हम सब ध्यान करते हैं । “तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात्” अर्थात्
वह अनङ्ग कामदेव हम सब के लिये उदय होवे । यहाँ समुच्चयार्थ
में चकार है ॥

शिशिराधिपं क्रमान् क्रमरूपेण विंशत्यक्षरेण विंशतिश्चन्द्रा उच्यन्ते ।
 कामो गण्डद्वये स्नेहे विलासे स्पर्शतृष्णयोः इति भास्वदि । ककारः
 कौशले चन्द्रे विलासे स्रग्मसालयोः इति व्योपानः । मकारो मधुरे हास्ये
 विकाशे छवितृष्णयोः इति ऋपभः । 'दे' इति दा दाने औणादिकत्वा-
 देकारः । दामास्माज्योत्स्नायामिति एकारप्रत्ययः । देश्चन्द्रे विलासे
 अन्नेऽर्हने मण्डलेऽपिच इति देवद्योतिः । देश्चन्द्रमण्डले हास्ये
 हविदानविलासयोः इति व्याघ्रभूतिः । व इति वनभूतो वनधातोः
 औणादिकत्वात् पञ्चम्यन्ताद्वावेऽइति उप्रत्ययः । वकारो लौल्यलाव-
 ण्ये इन्द्रायुधशशोधरे इति भास्वतिः । वकारान्त्यकारेण अर्द्धचन्द्र-

ह्नी इस पद से मूर्तिमान् अप्राकृत, परम पुरुष का बोध होता
 है । काम पद से दोनों गण्ड, देव पद से उन के मुख, भाल सूचित
 होते हैं । वे अभिलाष से अर्थात् निज विषय प्रीति दाढर्य के द्वारा
 चन्द्रमण्डल रूप से क्रीडा करते हैं । यहाँ यकार से अर्द्धचन्द्र की
 प्राप्ति है । वह भाल देश में तिलक रूप से विराजमान है । इस
 प्रकार साढ़े चारचन्द्र हुए पुनः कामगायत्री के क्रम से बीस अक्षर
 से बीस चन्द्र कहे जाते हैं । मन्त्र के सर्वसमेत चौबीस अक्षर
 हैं । जो चन्द्र रूप से परम पुरुष श्री कृष्ण के विग्रह में साढ़े
 चौबीस संख्या में विराजमान हैं । तात्पर्य-साढ़े चौबीस अक्षर
 से साढ़े चौबीसचन्द्र हैं । वे सब श्रीकृष्ण विग्रह में एक ही समय
 उदय होकर त्रिजगत को काममय अर्थात् आनन्द रसमय कर रहे हैं ।

अब एक एक अक्षर के चन्द्रस्वरूप का वर्णन करते हैं—गण्ड
 दोनों में, स्नेह-विलास-स्पर्श-तृष्णा विषय में काम शब्द का प्रयोग
 होता है यह "भास्वद्वि" कार का मत है । ककार शब्द का प्रयोग
 कौशल-चन्द्र-विलास-माला-रसाल में है ऐसा व्योपान कहते हैं ।
 मकार का प्रयोग मधुर-हास्य विकाश-छवि-तृष्णा में है ऐसा ऋपभ
 का वचन है । "दे" यह "दा" धातु दानार्थ में है । औणादिक के

(५)

प्रकीर्तितः, लक्षणातुरोधात् । य चन्द्रार्द्धं वैभवञ्च विलासं दारुणं भयं इति व्याङ्गिः । विशब्दादि पञ्चाक्षरेण दक्षिणावर्त्तक्रमेण पञ्च चन्द्रा उच्यन्ते । तद्यथा विद्महे पुष्प इत्यादि । वाणादिपञ्चाक्षरेण वामवर्त्तादिक्रमेण पञ्च चन्द्रा उच्यन्ते तद्यथा वाणाय धीमहि इत्यादि । तत्र कौस्तुभस्य मणेरधस्तात् वामदक्षिणरूपेण दशाक्षरेण दश चन्द्रा उच्यन्ते । तत्र दक्षिणादिक्रमेण हिशब्दादिपञ्चाक्षरेण पञ्च चन्द्रा उच्यन्ते तद्यथा हि तन्नोऽनङ्गः इति । प्रशब्दादिपञ्चाक्षरकारण आ स्थान में एकार है । “दामास्मा ज्यात्स्नायाम्” यह एकार प्रत्यय है । दे शब्द चन्द्र-विलास-अन्न-सूर्यमण्डल में प्रयोजित होता है ऐसा देवद्योति कहते हैं । दे शब्द चन्द्रमण्डल-हास्य-हवि-दान-विलासार्थ में है ऐसा व्याघ्रभूति जी भी कहते हैं । “व” यह वनभूत वन धातु में औणादिक के कारण पञ्चम्यन्त में भाव में उ प्रत्यय विशिष्ट है । लोलता-लास्य-लावण्य-इन्द्र के आयुध-चन्द्रमा में वकोर का प्रयोग है ऐसा भास्वद् कार का मत है । यकार अन्त में रहने के कारण “य” कार अर्द्धमात्रात्मक अर्द्धचन्द्र स्वरूप है । लक्षणा के अनुरोध से यह सिद्ध है । यकार अर्द्धचन्द्र-वैभव विलास-दारुण-भयार्थ में है ऐसा व्याङ्गिपण्डित का मत है । वि शब्द को आदि करके दक्षिणावर्त्त क्रम से पाँच चन्द्र कहे जाते हैं । वे यथा “विद्महे पुष्प” ऐसा है । वाण आदि करके वामावर्त्त क्रम से पाँच चन्द्र होते हैं । वे यथा—“वाणाय धीमहि” ऐसा है । इस का निष्कर्षार्थ यह है—श्रीकृष्ण विग्रह में कौस्तुभमणि के नीचे दक्षिण भाग वामभाग रूप से दशाक्षर स्वरूप दस चन्द्र कहे जाते हैं । पहले दक्षिणादि भाग क्रम से हि शब्द आदि करके पाँच अक्षर पाँच चन्द्र हैं । वे यथा “हि-तन्नोऽनङ्गः” ऐसा है । प्रशब्द आदि करके पञ्चाक्षर पञ्च चन्द्रमा हैं वे यथा—“प्र-चो-द-या-त्” ऐसा है ।

रेण पञ्च चन्दा उच्यन्ते तद्यथा-प्रचोदयात् इति । विशब्दो विविधे प्राज्ञे हिङ्गुले च शशोधरे इति विश्वः । डुवाञ धारणपोषणयोर्धाधातोः औणादिको मः प्रत्ययः निपातश्चेति द्वः । द्वाकारो विविधे नृत्ये तेजोराशौ शशोधरे इति भास्वदि । हेशब्दो हेतुके विज्ञे इन्द्र पुन रसालयोः इति कामतन्त्रः । पुशब्दो रसनाज्योत्सनानृत्यचन्द्रा कुंशोऽम्बुजे इति देवद्योतिः । ष्पकारो विकले प्राज्ञे विधौ मौक्तिकदा मनि इति रत्नहासः । वाशब्दो विषमाधारे चन्द्रज्योत्सनापवृद्धयो इति वामनपुराणे । एकारो विषमाविष्टे नृत्यचन्द्ररसायने इति स्वभूतिः । यकारश्चन्द्रविम्बे च विशालाक्षे रसाकरे इति व्याघ्र भूतिः । धी शब्दो बुद्धौ प्राज्ञे च विधौ चन्द्राभिवादयोः इति चन्द्र

विशब्द विविध-प्राज्ञ-हिङ्गुल-शशोधर में है ऐसा विश्वकोश में कथन है । “डु वा ञ धारणपोषणयोः” अर्थात् धारणार्थ में डु धातु का प्रयोग होता है । औणादिक म प्रत्यय में निपातन सिद्ध हो कर वा स्थान में “द्व” हुआ है । “द्व”कार विविधार्थ-नृत्य-तेजोराशि-शशोधर में है ऐसा भास्वद्कार कहते हैं । “हे” शब्द हेतु विज्ञ-चन्द्र-रस-आलयार्थ में है यह कामतन्त्र का कथन है । “पु” शब्द रसना-ज्योत्सना-नृत्य-चन्द्र-अङ्कुश-अम्बुजार्थ में है ऐसा देवद्योति कहते हैं । “ष्प” कार विकल-प्राज्ञ-चन्द्र-मुक्तामाला में है ऐसा रत्नहास का मत है । “वा” शब्द विषम-आधार-चन्द्र-ज्योत्सना अपवृद्धि अर्थ में है ऐसा वामन पुराण में कहा गया है ।

“ए” कार विषम-आविष्ट-नृत्य-चन्द्र-रसायनार्थ में है यह स्वभूति कार का वचन है । “य” कार चन्द्रविम्ब-विशालाक्ष-रसायनार्थ में ऐसा व्याघ्रभूति कहते हैं । “धी” शब्द बुद्धि-प्राज्ञ-चन्द्र-चन्द्राभिवादार्थ में ऐसा चन्द्रमौलि कहते हैं । “म” कार मारुत-बुद्धि-प्रभाकर-निशाकरार्थ में ऐसा स्वभूति का कथन है । “हि” शब्द रसावेश-हिङ्गुल-चन्द्रमण्डल में ऐसा रभसकार कहते हैं ।

(७)

नरतर्निच, करौंदो

बारापत्ती-5

मौलिः । मकारो मारुते बुद्धौ प्रभाकर निशाकरे इति स्वभूतिः । हि शब्दो हि रसावेशे हिङ्गुले चन्द्रमण्डले इति रभसः । तत्सादृश्ये विभावे च तकारश्चन्द्रमण्डले इति व्याघ्रभूतिः । नशब्दो नौखियानौ वा नकारश्चन्द्रमण्डले इति देवद्योतिः ।

अनङ्गो मदने विश्वेऽनङ्गश्चन्द्रे विभावने इति चन्द्रमौलिः । प्रशब्दो विविधे नृत्ये प्रहृष्टे चन्द्रमण्डले इति व्याघ्रभूतिः । चकारश्चलने चन्द्रे चञ्चले च विभावने इति स्वभूतिः । दकारो विविधे नृत्ये चन्द्रविम्बेऽधरेऽपि च इति भास्वदिः । य आसने विधाने च यकारश्चन्द्रमण्डले इति चन्द्रमौलिः । स्तवस्तोत्रविकाशेषु तकारश्चन्द्रमण्डले इति देवद्योतिः ॥ इति ॥ ८ ॥

(अथ श्रीप्रवाधानन्दैरुक्तं) यत्तत्कामो मंत्री भवेत् मंत्री तदा कामः । आत्रह्य भुवनं व्याप्तं करोति । कामस्य वाणाः पञ्च । उन्मादनस्ता-

“त” सादृश्यार्थ-विभावार्थ में तथा “त” कार चन्द्रमण्डल में है ऐसा व्याघ्रभूति कहते हैं । “न” कार नौका-खियान में है, चन्द्रमण्डल में भी न कार का प्रयोग होता है ऐसा देवद्योति कहते हैं । अनङ्ग शब्द मदन-विश्व-चन्द्र-विभावनार्थ में है ऐसा चन्द्रमौलि कहते हैं । “प्र” शब्द विविध-नृत्य-प्रहृष्ट-चन्द्रमण्डलार्थ में यह व्याघ्रभूति का कथन है । “च” कार चलनार्थ-चन्द्र-चञ्चल-विभावनार्थ में है ऐसा स्वभूति का वचन है । “द” कार विविध-नृत्य-चन्द्रविम्ब-अधरार्थ में ऐसा भास्वदकार कहते हैं । “य” कार आसन-विधि तथा चन्द्रमण्डल में है ऐसा चन्द्रमौलि का कथन है । “त्” कार स्तव-स्तोत्र-विकाश तथा चन्द्रमार्थ में है ऐसा देवद्योति कहते हैं । इस प्रकार कामगायत्री मन्त्र के साढ़े चौबीस अक्षर प्रत्येक चन्द्रस्वरूप हैं । वे साढ़े चौबीस चन्द्र श्रीकृष्ण विग्रह में विराजमान होकर त्रिजगत् को काममय अर्थात् रसमय करते हैं ॥ ८ ॥

(८)

पनश्च शोषणस्तम्भनस्तथा । सम्मोहनश्च कामस्य पञ्चवाणाः प्रकीर्तिताः ॥ अन्यत्र च-उच्चाटनश्च दाहश्चस्तम्भ आकर्षणस्तथा । सम्मोहनश्च कामस्य पंचवाणाः प्रकीर्तिताः ॥ अथ वाणानां व्याप्तिः-आम्रस्य मुकुलश्चैवाप्यशोकं वकुलं तथा । मल्लिका माधवी पञ्च वाणाश्च प्राप्यन्ते सदा । तापन-दाहन-उच्चाटन-सम्मोहनाकर्षणाः । आम्रमुकुलः ककारः । अशोकमुकुलो लकारः । माधवी ईकारः । मल्लिका अर्द्धचंद्रः । वकुलो विंदुः । स एवं मधुराः पञ्च मधुमूर्तिः । तत्र गण्डशिरास्यश्च ककारः । चक्षुः कर्णं लकारः । रूपनासिकाहस्तं ईकारः । वक्षः-पृष्ठ-कटि-जङ्घा-नाद अर्द्धचंद्रः । जानुवादी च विंदुः । “शृङ्गारः सखि ? मूर्तिमानिव मधौ मुग्धो हरिः क्रीडतिः इति । मधुरं मधुरं वपुरस्य विभोर्मधुरं मधुरं

अथ व्याख्याकार स्वयं कहते हैं—

मन्त्रणा के कारण काम मन्त्री स्वरूप है । वह ब्रह्मा पर्यन्त समस्त जगत् को व्याप्त करता है । काम के वाण पञ्च संख्या में हैं । उन्मादन-तापन-शोधन-स्तम्भन-सम्मोहन ये पांच वाण हैं ।

अन्यत्र भी कहा है-उच्चाटन, दाहन, स्तम्भन, आकर्षण सम्मोहन ये काम के पंच वाण कहे जाते हैं ।

अथ वाणोंकी व्याप्ति आम्रमुकुल-अशोक-वकुल-मल्लिका माधवीपुष्प में हैं । तापन-दाहन-उच्चाटन-सम्मोहन-आकर्षण ये धर्म हैं ।

आम्रमुकुल ककार, अशोकमुकुल लकार, माधवी ईकार, मल्लिका अर्द्धचंद्र, वकुल विन्दु स्वरूप हैं । पाँच पाँच अक्षर प्रत्यङ्ग में वे पाँच विराजमान होकर एक मधुर स्वरूप बनते हैं । दोनों गण्ड-मस्तक-मुख स्वरूप ककार, दोनों नेत्र दोनों कर्ण ये लकार, रूप-नासिका-दोनों हाथ ये ईकार, वक्ष-पृष्ठ-कटि-दोनों जंघा ये अर्द्धचन्द्र नाद स्वरूप, दोनों जानु दोनों चरण विन्दु स्वरूप हैं । श्रीजयदेवचरण ने “गीतगोविन्द” में कहा है-हे स्तम्भ

(६)

वदनं मधुरम् । मधु गन्धि मृदुस्मितमेतदहो मधुरं मधुरं इति । क्लीं
बृदावनस्याप्राकृतमदनः । पञ्चवाणस्य नाम तद्यथा—चित्तविद्यासदा-
कामरमणश्च प्रकाशकः ॥ चित्तानन्दधरः विद्यानन्दधरः, सदानन्दधरः,
कामानन्दधरः, रमणानन्दधरः । पञ्च नाम्ना एक नाम ।

चित्त-विद्या-सदा-काम-रमणानन्दधराय विद्महे । चित्त विद्या-
सदा काम रमणानन्दधराय स्वाहा इति कृष्णपक्षः स एव पञ्च मधुराः
पञ्च मधुरमूर्तिर्वा । आम्नमुकुलश्चित्तकंदर्पः । अशोकः कामानन्दः प्रका-
शकः । वकुलो विद्यानन्दधरः इति नामत्रिभिरेकं नाम । चित्तकंदर्प-
कामानन्दविद्यानन्दधराय स्वाहा इति कृष्णास्य । माधवी कोटिचन्द्र
मोहिनी । मल्लिका कोटिप्रेममोहिनी । नाम दाभ्यामेकनाम ।
कोटिचन्द्र-कोटिप्रेममोहिन्यै स्वाहा । तद्यथा—चित्त कंदर्प रमण
कामानन्द प्रकाशकः । विद्यानन्दधरा नाम कोटि प्रेम विमोहिनी ।

वसन्त ऋतु में मधु होकर श्रीहरि क्रीड़ा करते हैं । मानों शृङ्गार
मूर्तिमान् होकर क्रीड़ा कर रहा है । अन्यत्र भी कहा है—इन विभु
के समस्त शरीर मधुर है मधुर है । इनके वदन मधुर है मधुर है,
मधुर है । मृदुस्मित भी मधु से मधुर है । अहो समस्त मधुर है ।”
“क्लीं” शब्द श्रोत्रेन्द्रावन के अप्राकृत मदन स्वरूप श्रीनन्दनन्दन है ।

पञ्चवाण का नाम इस प्रकार है—चित्तानन्दधर, विद्यानन्दधर,
सदानन्दधर, कामानन्दधर, रमणानन्दधर है । पांच नाम से एक
नाम इस प्रकार है । “चित्त विद्या सदा काम रमणानन्दधराय
विद्महे” तथा “चित्त विद्या सदा काम रमणानन्दधराय स्वाहा”
यह श्रीकृष्णपक्षीय व्याख्या है ।

आम्नमुकुल चित्त कंदर्प, अशोक कामानन्दप्रकाशक, वकुल
विद्यानन्दधारी है । इन तीन नाम के एक नाम इस प्रकार है ।
“चित्तकंदर्पकामानन्दविद्यानन्दधराय स्वाहा” । यह नाम श्रीकृष्ण
का है ।

(१०)

कोटिचन्द्र मोहिनी च प्रत्येकं पञ्च भेदकः इत्युक्तं । गोपाल-
तापनी ह्यंतरुक्तं तं च प्रचक्षते । स एव स्थान-स्थानी सम्बन्धः ।
प्रीतिस्थानं वृन्दावनं । कमलं श्रीराधिका । अमिज्ञावीते वसति सदा ।
प्रेमसौरभं भ्रमरः श्रीकृष्णश्चक्रलो भूत्वा मधुपाने विभोरः सदा ।
ककारः कृष्ण उच्यते । ईकारो श्रीराधिकेत्यादि । कामस्य पञ्च वाणाः ।
आम्रस्य मुकुलश्चैवाप्यशोकं मुकुलं तथा इत्यादि ॥ ६ ॥

रमस्पर्शौ च रूपं च शब्दगन्धौ प्रभेदतः । भेदादि गुणरूपाद्याः
पञ्चधा परिकीर्तिताः ॥ शान्तं दास्यं च सख्यश्च वात्सल्यं मधुरे
स्थितिः । शान्तिं प्रीतिश्च सख्यन्तु वात्सल्यं प्रियताऽपि च ।
निष्ठा सेवा च निःशङ्कं स्नेहश्चैव मधुरता ॥ १० ॥

माधवी कोटिचन्द्र की भाँति मोहिनी तथा मल्लिका कोटिप्रेम
मोहिनी हैं । दोनों नाम एक होने पर 'कोटिचन्द्रकोटिप्रेममोहिन्यै
स्वाहा' ऐसा सिद्ध होता है । चित्त कन्दर्प-रमण-कामानन्द प्रकाश-
कारी अथात् चित्तानन्द-कन्दपोनन्द-रमणानन्द-कामानन्द के
प्रकाशक है । विद्यानन्दधारी का नाम कोटिप्रेमविमोहिनी तथा कोटि-
चन्द्रविमोहिनी हैं । दोनों का यह पाँच प्रकार भेद है । गोपाल-
तापनी में जो कहा गया उसे कहते हैं । वह ही स्थान-स्थानी
सम्बन्ध विशिष्ट है । प्रीति का स्थान वृन्दावन है । कमल रूपा
श्रीराधिका जी हैं । बुद्धि से परे जिसका स्थान है इस प्रकार प्रेम
सौरभ उस प्रेम सौरभ से श्रीकृष्ण भ्रमर लुब्ध होकर निरन्तर
मधुपान करते हुए विभोर रहते हैं । ककार से श्रीकृष्ण तथा ईकार
से श्रीराधिका कहे जाते हैं । काम के आम्रमुकुल, अशोकमुकुलादि
भेद से पंच वाण कहे गये हैं ॥ ६ ॥

रस-स्पर्श-रूप-शब्द-गन्ध भेद से गुण रूपादि पाँच प्रकार
हैं । शान्त-दास्य-सख्य-वात्सल्य-मधुर ये पाँच रस हैं ।
शान्तरस में शान्ति, दास्यरस में प्रीति, सख्यरस में सख्यता,

(११)

गुणाः स्युः पञ्चवाणास्य पराः पञ्च रसा ह्यपि ।

रूपाश्च वर्णरूपाद्याः पञ्चवर्णा उदीर्यन्ते ॥ ११ ॥

तन्त्रे-पद्मजं तन्मुखापेतं शक्रस्योपरि संस्थितम् ।

सिन्दूर्विन्दुशिखापेतं प्रथमं सर्वकामदम् ॥ १२ ॥

इति श्री कामगायत्री व्याख्या च कथिता मया ॥ १६ ॥

इति श्रीप्रबोधानन्दसरस्वती विरचितं

कामगायत्रीव्याख्यापटलं समाप्तम् ।

वात्सल्य में वत्सलता, मधुर अर्थात् शृङ्गार रस में प्रियता, स्थायि-
भाव अर्थात् आधार रूप मूल भाव हैं । शान्त में निष्ठा, दास्य में
सेवा, सख्य में निःशंकत्व, वात्सल्य में स्नेह, मधुर में मधुरता
प्रधान गुण हैं ॥ १० ॥

अन्य पंच रस भी पञ्चवाण के गुण स्वरूप हैं ऐसा भी
ज्ञातना चाहिये । इस प्रकार पंचवर्ण भी पञ्चवाण के पंच वर्ण माने
जाते हैं । तन्त्र शास्त्र में ऐसा कहा गया है ॥ ११ । १२ ॥

इस प्रकार मैंने काम-गायत्री की व्याख्या कही है ॥ १६ ॥

अनुवादक

कृष्णदास



अष्टाङ्ग ३५८१११ ।
See p. 9

अग्निपुराणान्तर्गता गायत्रीव्याख्या

गायत्र्युक्त्यानि शास्त्राणि भर्गं प्राणां स्तथैव च ।
ततः स्मृतेयं गायत्री सावित्री यत एव च ।
प्रकाशिनी सा सवितु वाग्वरूपात्वात् सरस्वती ॥ १ ॥
तज्ज्योतिः परं ब्रह्म भर्गस्तेजो यतः स्मृतम् ।
भर्गः स्याद् भ्राजत इति बहुलं छन्दसीरितम् ॥ २ ॥
वरेण्यं सर्वतेजोभ्यः श्रेष्ठं वै परमं पदम् ॥ ३ ॥

श्रीजीवगोस्वामिकृता विवृतिः ।

श्रीराधारमणो जयति ।

सनातनसमो यस्य ज्यायान् श्रीमान् सनातनः ।

श्रीवल्लभोऽनुजः सोऽसौ श्रीरूपो जीवसद्गतिः ॥

अथाग्नेयस्या गायत्रीव्याख्या विव्रियते । उक्त्यानि प्रणवात्मक
मन्त्रान् । शास्त्राणि सर्वानपि वेदान् । भर्गं वक्ष्यमाणं विष्णुरूपं
तेजः । प्राणान् सर्वजीवहेतून् तद्विभूर्तीश्वर । यतो यस्मात् गायत्री
प्रकाशयति, ततो गायत्री स्मृता । यस्मादेव च त्रयीमयस्य सवितु
प्रकाशिनी प्रादुर्भावयित्री तस्मात् सृजेत् सवितारमिति सावित्री च
वाग्वरूपात्वात् सरस्वती च सा ॥ १ ॥

अथो गेयेषु मुख्यत्वाद् भर्गमेव विवृणोति-तज्ज्योतिरिति
योऽयं भर्गः स एव तत् प्रसिद्धं परंब्रह्मः यतो भर्ग एव तेजः स्मृतः
स्वप्रकाशकज्योतीरूपतया निर्दिष्टः । कथा निरुक्त्या तस्य भर्गस्तेजः
तेजस्त्वं तत्राह-भर्गः स्याद् भ्राजत इति । कथं सिध्यति ? तत्राह-
बहुलं छन्दसीति । भगवता पाणिनिना ईरितं सूत्रितमित्यर्थः ॥ २ ॥

अथ तस्य मन्त्रोक्तं वरेण्यत्वं साधयति-वरेण्यमित्यर्थेन । स
भर्गो वरेण्यं यत् परमं पदं सर्वस्याथाश्रयरूपं वस्तु, वरेण्यं नाम
वस्तु तत्राह-सर्वतेजोभ्यः श्रेष्ठं यत्तदेवेत्यर्थः । सर्वेषां तेजसां प्रका
शानां प्रकाशकत्वेन स्वप्रकाशकरूपमिति भावः ॥ ३ ॥

(२)

स्वर्गापवर्गकामै र्वा वरणीयं सदैव हि ॥ ४ ॥

वृणोतेर्वरणार्थत्वाज् जाग्रत्स्वप्नविवर्जितम् ॥ ५ । ६ ॥

नित्यं शुद्धं बुद्धमेकं नित्यं भर्गमधीश्वरम् ।

अहं ब्रह्म परं ज्योति ध्यायेमहि विमुक्तये ॥ ७ ॥

एवं भर्गस्य वरेण्यपदेन रूढया श्रेष्ठत्वं दर्शयित्वा योगवृत्त्या सर्वप्रार्थनीयत्वं दर्शयति स्वर्ग इत्यद्वैत-स्पष्टम् ॥ ४ ॥

तत्र तदर्थ-सम्पादक-धात्वर्थमपि हेतुत्वेन निर्दिशति वृणोतेर्वरणार्थत्वादिति स्पष्टम् ॥ ५ ॥

अथ परमत्वज्ञापनाय पुनः वरमेव विशिनष्टि जाग्रत्स्वप्नविवर्जितमिति । तुरीयावस्थादपि जीवात् परमित्यर्थः ॥ ६ ॥

तदेव भर्गवरेण्ययोः पदयोरर्थं दर्शयित्वा प्रयोजनमाह-नित्यमिति । अहं भर्गं ध्यायेमहि, तत्र भर्गस्य विशेषणानि नित्यशुद्धमित्यादीनि, अहमित्यस्य विशेषणं ब्रह्मेति । तत्र नित्यं सदैव शुद्धं न तु जीववत् संसारित्वावस्थामित्यर्थः । एवं बुद्धं सदैव बोधयुक्तमित्यर्थः । एकं न तु जीववदनेकं । अधीश्वरं सर्वशक्तियुक्तं । अहं ब्रह्म परं ज्योतिरिति “ना देवो देवमर्चयेदिति” न्यायेन स्वस्य तादात्म्यभावना दर्शिता । ध्यायेमहि न केवलः अहमेव ध्यायेय किन्तु सर्वेऽपि वयं जीवा ध्यायेमेत्यर्थः । किमर्थं ध्यायसि ? तत्राह-विमुक्तये । संसारमुक्ति पूर्वक-तत्प्राप्तये । तदेतन्मते भर्गशब्दस्य अदन्तत्वे पुंस्त्वे च सिद्धे मन्त्रोऽप्येवमेव व्याख्येयम् । सुपां सुलुगित्यादिना छान्दस-सूत्रेण द्वितीयया एकवचनस्यामः सुत्वादेशात् एवं तत्र “य” इत्येव वक्ष्यते, न तु य इत्यनेन सवितुराकर्षः क्रियते, “ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्तीति” विधानात् । “अतस्तद् भर्गोपदेशादिति” न्यायाच्च ॥ ७ ॥

तज्ज्योतिर्भगवान् विष्णुर्जगज्जन्मादिकारणम् ॥ ८ ॥
 शिवं केचित् पठन्ति स्म शक्तिरूपं वदन्ति च ।
 केचित् सूर्यं केचिदग्निं दैवतान्यग्निहोत्रिणः ।
 अग्न्यादिरूपी विष्णुर्हि वेदादौ ब्रह्म गीयते ॥ ९ ॥
 तत्पदं परमं विष्णोर्देवस्य सवितुः स्मृतम् ॥ १० ॥
 दधातेर्वा धीमहीति मनसा धारयेमहि ॥ ११ ॥
 नोऽस्माकं यच्च भर्गस्तत् सर्वेषां प्राणिनां धियः ।
 चोदयात् प्रेरयेत् बुद्धी भोक्तृणां सर्वकर्मसु ॥
 दृष्टादृष्ट-विपाकेषु विष्णुः सूर्याग्निरूपभाक् ॥ १२ ॥

तथैव तदित्यस्य मन्त्रगतपदस्य व्याख्यां विशिष्य दर्शयति ।
 तज्ज्योतिरित्यद्वेन भर्गपदवाच्यं तज्ज्योतिरेव तत्पदेन पूर्वमुक्तमित्यर्थः । तच्च भगवान् विष्णुरेव तदेव च वेदान्तेन दर्शितं जगज्जन्मादिकारणमित्यर्थः । मन्त्रे च प्रणवादि-तदित्यन्तस्य धीमहीत्यन्तेनान्वय एव कार्यः । स्वयं प्रणवार्थरूपं कारणात् कार्यस्यानन्यत्वादिति भूरादिरूपं च तत्तत्त्वं सवितुर्देवस्य वरेण्यं भर्गो धीमहीति ॥ ८ ॥

अथात्र विप्रतिपद्यमानान् स्वमतसात्करोति- शिवं केचिदिति साद्धेन स्फुटम् ॥ ९ ॥

तदेवमेव विष्णुसवित्रोः कारणकार्ययोस्तयोस्तादात्म्येनाभेदमपि दर्शयति-तत्पदमित्यद्वेन । अत्र विष्णोरिति विश्वात्मकमित्यर्थः-तदिति स भर्ग इत्यर्थः ॥ १० ॥

धीमहीत्यस्य धात्वन्तरप्रक्रान्तत्वेन तत्त्वेन तमेवार्थं योजयति दधातेरित्यद्वेन स्पष्टम् ॥ ११ ॥

अत्र मन्त्रशब्दं योजयति-नोऽस्माकमिति साद्धेन । अयच्चेति तदिति च पूर्वसूत्रेण सोर्लुका साधितं भर्ग इत्यनेनेति तदित्यस्य सम्बन्धश्च दर्शितः । चोदयात् । प्रेरयात् इत्यनयोः पूर्वसिद्धान्तेन द्रढयति-विष्णुः सूर्याग्निरूपभागिति ॥ १२ ॥

ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा ॥ १३ ॥

ईशावास्यमिदं सर्वं महदादि-जगद्धरिः ।

स्वर्गाद्यैः क्रीडते देवो यो हंसः पुरुषः प्रभुः ॥ १४ ॥

ध्यानेन पुनपोऽयञ्च द्रष्टव्यः सूर्यमण्डले ।

सत्यं सदाशिवं ब्रह्म विष्णोर्यत् परमं पदम् ॥ १५ ॥

देवस्य सवितुर्देवो वरेण्यं हि तुरीयकम् ॥ १६ ॥

योऽसावादित्य-पुरुषः सोऽसावहमनुत्तमम् ।

जनानां शुभकर्मादीन् प्रवर्त्तयति यः सदा ॥ १७ ॥

(अग्निपुराणे २१६ अध्याये)

अत्र हेतुमाह ईश्वर इत्यर्द्धेन-ईश्वरः पूर्वोक्त विष्णुरूपः ॥ १३ ॥

तदेव श्रुत्यन्तरेण प्रमाणयति-ईशावास्यमिति । तस्येशस्य हरि-
रिति नामान्तरेण विष्णुत्वमेव स्थापयति हरिरित्यर्द्धकेन स्वर्गाद्यै-
रित्यर्द्धेन हंसः परमात्मा तद्रूपः पुरुषः ॥ १४ ॥

तस्य वरेण्यत्व-पराकाष्ठां दर्शयितुमाह-ध्यानेनेति । ध्यानेन
“ध्येयः सदा सवितृमण्डलनध्यवर्त्ता”त्याद्युद्दिष्टेन । नन्वेवं चेत्तर्हि
ईशितव्यस्य सूर्यमण्डलस्य नाशे तस्यैश्वर्यनाशः स्यात्तत्राह-सत्य-
मिति । विष्णोर्यत् महावैकुण्ठलक्षणं परमं पदं तत् सत्यं कालत्रया-
व्यभिचारि, सदाशिवं तापत्रयरहितञ्च, ब्रह्म बृहत्त्वात् बृंहणत्वाच्च
यद् ब्रह्मोच्यते तद्रूपमेवेत्यर्थः ॥ १५ ॥

ननु तस्मिन् महावैकुण्ठे सवित्रन्तर्यामिणोऽस्माद् विलक्षण
एव नारायणः स च नित्य एव । सवित्रन्तर्यामिणोऽस्य तु की ह-
कत्वं तत्राह-देवस्येत्यर्द्धेन । देवस्य द्योतमानस्य सवितुर्यो देवः “ध्येयः
सदे”त्यादिषु निर्दिष्टः सोऽपि वरेण्यं तुरीयं समष्टिगतं जाग्रत्स्वप्नाद्य-
तीतं समाध्यवस्थायामेव गम्यं यत्पदं भर्गसंज्ञकं ‘स एकधा भवती-
त्यादि श्रुतेः, सर्वाश्रयरूपं यद्वस्तु तद्रूपमेव । महाप्रलये महावैकुण्ठ
एव महानारायणेनैकीभूय स्थायित्वादिति भावः ॥ १६ ॥

अथ तत्साम्यादित्यर्थमहंप्रहोपासनारूपं त्रिपदाया अस्याश्चतु-
र्थस्या अजपा नाम ध्वेयस्यार्थमाह-योऽसाविर्त पदेन स्पष्टम् ॥ १७ ॥

इत्यग्निपुराणस्थगायत्रीव्याख्याया विवृतिः

श्रीजीवकृता समाप्ता

विवृति का अनुवाद ।

आसनातन के समान श्रीमान् सनातन जिनके बड़े भ्राता हैं
तथा श्रीवल्लभ जिनके लघु भ्राता हैं वे श्रीरूपगोस्वामी, जीव
नाम से प्रसिद्ध मेरी उत्तम गतिरूप हैं। श्लेष में जीवों की सद्-
गति हैं ॥

अब अग्निपुराण में स्थित गायत्री-व्याख्या का विवरण
विस्तार रूप से वर्णन करते हैं। उक्त्यानि प्रणवात्मक मन्त्रसमूह
हैं। शास्त्रों का अर्थ समस्त वेद हैं। वक्ष्यमाण विष्णुरूप तेज को
भर्ग कहते हैं। प्राणों का अर्थ समस्त जीवों के कारण-भूत वस्तुएँ
हैं, किम्बा विभूतियाँ हैं। इन वस्तुओं को जिससे प्रकाश करती
है, अतः गायत्री करके कही जाती है। वेदमय सविता का प्रादु-
भाव करने वाली है इसलिये सावित्री भी है। "उससे सूर्य की
सृष्टि है" ऐसा अति में कथन है। वाणी रूपा होने के कारण वह
सरस्वती भी है ॥ १ ॥

अब गेय वस्तुओं में प्रधान भर्ग है उसका विवरण कहते हैं।
जो यह भर्ग है वही स्व प्रसिद्ध परब्रह्म है। अर्थात् प्रसिद्ध परब्रह्म
ही भर्ग शब्द से कहा जाता है। क्योंकि भर्ग ही तेजः करके माना
गया है। स्वयं प्रकाश, ज्योतिरूप से निर्दिष्ट वस्तु तेजः है। अच्छा?
किस निरुक्ति के बल से उस भर्ग को तेजः रूप से निर्देशित करते
हो ? उसके उत्तर में कहते हैं-भ्राजमान वस्तु ही भर्ग है। वह

नित्य-शुद्ध-वस्तु
 " ३३ " बोधयुक्त।
 " (५६) " एक (५६)

किस प्रकार सिद्ध हो सकता है ? कहते हैं—भगवान् पाणिनि ऋषि ने "बहुलं ह्यन्दसि" इस प्रकार सूत्र का निर्देश किया है ॥ २ ॥

अब भर्ग को वरेण्यत्व की साधना बतलाते हैं—वह भर्ग-वरेण्य है। वह सब का आश्रय वस्तुस्वरूप होने का कारण परम पद वाच्य है। अच्छा ? वरेण्य क्या वस्तु है ? कहते हैं—समस्त तेजों में श्रेष्ठ वस्तु वरेण्य है। भावार्थ यह है—समस्त प्रकाशों के प्रकाशक रूप अर्थात् मूल प्रकाशक स्वप्रकाश स्वरूप वस्तु वरेण्य करके कहा जाता है ॥ ३ ॥

इस प्रकार भर्ग का वरेण्य पद के द्वारा रुद्धिवृत्ति से श्रेष्ठत्व दिखाकर अब योगवृत्ति के द्वारा उसका सर्व्व प्रार्थनीयत्व दिखाते हैं। स्वर्ग-अपवर्ग कामनाकारी सब के लिये सर्व्व । प्रार्थनीय है ॥ ४ ॥

उसी अर्थ के सम्पादक धात्वर्थ का कारणरूप से निर्देश करते हैं। वृणु धातु का वरणार्थत्व स्पष्ट है ॥ ५ ॥

अनन्तर "परमत्व" जनाने के लिये पुनः श्रेष्ठत्व का निर्देश करते हैं—जो जाग्रत-स्वप्न से विवर्जित है अर्थात् तुरीयावस्था जीव से भी पर है ॥ ६ ॥

इस प्रकार भर्ग वरेण्य पदों का अर्थ दिखाकर अब वाक्य का प्रयोजन बतलाते हैं। हम भर्ग का ध्यान करते हैं। भर्ग पद का विशेषण नित्य-शुद्ध-बुद्ध-एक-नित्य-अधीश्वर है। अहं अर्थात् हम इति पद का विशेषण ब्रह्म है। वहाँ नित्य शब्द का अर्थ सर्व्वदा शुद्ध वस्तु है। जीव की भाँति संसारी अवस्था विशिष्ट नहीं है। बुद्ध शब्द का अर्थ सदा ही बोध युक्त है। एक शब्द का अर्थ सर्व्वदा एक वस्तु है, जीव की भाँति अनेक नहीं है। अधीश्वर का अर्थ समस्त शक्ति से युक्त है। "हम ब्रह्म परम ज्योतिरूप हैं" यहाँ देवता बन कर देवता की पूजा करें, नहीं तो नहीं—इस व्याय से अपने को ब्रह्म के साथ अभिन्नता, तादात्म्य-भावना रूप से

(७)

ज्ञानना चाहिये। नहीं तो अभिन्न हो जाने पर ध्यान नहीं घटता है। “ध्यायेमहि” क्रिया का अर्थ केवल हम ध्यान नहीं करते हैं परन्तु समस्त हम सब जीव ध्यान करते हैं। अच्छा ? किस लिये ध्यान करते हैं ? उत्तर में कहते हैं— विमुक्ति के लिये अर्थात् संसार मोचन के साथ उसकी प्राप्ति के निमित्त। इस प्रकार इनके मत में भर्ग शब्द का अदन्त-पुंलिंगत्व सिद्ध होने पर मन्त्र का भी इस प्रकार व्याख्या होनी चाहिये। “सुपां सुलुग” इत्यादि छान्दस सूत्र के द्वारा द्वितीयाविभक्ति से एक वचन का अम् प्रत्यय को सुत्व का आदेश है। इस प्रकार वहाँ “य” ऐसा कहेंगे। य इस शब्द के द्वारा सविता का आवर्पण नहीं किया जाता है। “सविता मण्डल के मध्यवर्ती ब्रह्म सत्त्वदा ध्येय स्वरूप है” ऐसा विधान है। इसलिये “उस भर्ग के उपदेश द्वारा” इस प्रकार न्याय भी है। ७॥

अब उसी प्रकार मन्त्रगत “तद्” इस पद की व्याख्या विशेष रूप से दिखलाते हैं—भर्ग पदवाच्य वह ज्यांति ही तत् पद से पहले कहा गया है। वह भगवान् विष्णु ही माने गये हैं। वेदान्त शास्त्र जगत् का जन्मादि कारण स्वरूप भगवान् विष्णु को ही कहा गया है। इस मन्त्र में प्रणव से आदि तत् से अन्त के साथ धीर्माहि का अन्वय कर्त्तव्य है। स्वयं प्रणव के अर्थ रूप कारण से कार्य का अनन्यत्व है। अतः भूमि आदि कार्य समूह कारणरूप प्रणव स्वरूप हैं। सविता-देव के वरेण्य भग को हम ध्यान करते हैं ॥ ८ ॥

कोई शिव, कोई शक्तिरूप, कोई सूर्य, अग्निहोत्री कोई अग्नि देवत्व रूप से पाठ करते हैं। वेदादि में अग्नि आदिक रूपी विष्णु ही ब्रह्म करके गाये जाते हैं ॥ ९ ॥

उस प्रकार कारण-कार्य रूप विष्णु सविता के तादात्म्य रूप से अभेदत्व दिखता है। देवदेव विष्णु तथा सविता का वह परम पद है ॥ १० ॥

(८) परतर्निधि, करीबों

नारायण-५

यहाँ विष्णु का विश्वात्मकत्व सुसिद्ध है। धीमहि यहाँ धात्वन्तर प्रक्रान्त के द्वारा उसी अर्थ की योजना करते हैं। “दधातेः” अर्थात् धारणार्थ में ऐसा अर्थ होता है। अर्थ-उस वरेण्य भर्ग को मन के द्वारा हम सब धारण करते हैं ॥ ११ ॥

अब मन्त्र को घटाते हैं-जो भर्ग है वह हम सब प्राणियों की बुद्धि की प्रेरणा करें। विष्णु ही सूर्य-आग्न रूप से भोक्ताओं के दृष्ट-अदृष्ट-विपाकरूप सर्वकर्मों में बुद्धि का प्रेरक होता है ॥ १२ ॥

जीव ईश्वर के द्वारा प्रेरित होकर स्वर्ग-नरकादि का प्राप्त करता है ॥ १३ ॥

उसी अर्थ को श्रुति के द्वारा प्रमाणित करते हैं। समस्त महत् आदि जगत्-इंश करके व्याप्त हैं। वे इंश हरि तथा विष्णु नाम से स्वर्गादि में क्रीड़ा करते हैं तथा जो देव-भ्रमात्मा परम पुरुष, प्रभु करके गाये जाते हैं ॥ १४ ॥

उस भर्ग की वरेण्य पराकाष्ठा को दिखाते हुए कहते हैं-यह परम पुरुष सूर्यमण्डल में ध्यान के द्वारा दर्शनीय हैं। “सूर्यमण्डल के मध्य में विष्णुदेवता का ध्यान करें” इस प्रकार शास्त्र में कहा है। अच्छा? यदि ऐसा ही है तब इंश के आधार स्थान सूर्यमण्डल का नाश होने पर देवता का ऐश्वर्य भी नाश हो सकता है? उसका उत्तर देते हैं-विष्णु का महावैकुण्ठ रूप जो परम पद है अर्थात् कालत्रय में व्यभिचार प्राप्त नहीं है। सदाशिव का अर्थ तापत्रय से रहित शुद्ध वस्तु है। जो बृहन् वस्तु है तथा जो वृंहण कारक है वह ब्रह्म है अर्थात् वह ब्रह्म रूप है ॥ १५ ॥

अच्छा? उस महावैकुण्ठ में नित्य विराजमान श्रीनारायण के साथ सूर्यमण्डलवर्ती पुरुष की विलक्षणता है। नारायण तो नित्य वस्तु है। सूर्यमण्डल अन्तर्यामी पुरुष किस प्रकार है। कहते हैं-

द्योतमान सूर्य का जो देव है जो सदा सूर्यमण्डल मध्यवर्ती ध्येय स्वरूप से निदिष्ट है वह भी वरेण्य स्वरूप है, समप्रिगत वस्तु है, जाग्रत् स्वप्नादि से अतीत, केवल समाधि-अवस्था में गम्य है। भर्गसंज्ञक जो पद है "वह एक होता है वह भी होता है" इस प्रकार श्रुति में कहा है। सब के आश्रय-रूप जो वस्तु है वह उस का रूप है। महाप्रलय के समय महावैकुण्ठ में महानारायण के साथ एक होकर विराजमान होता है यह भावार्थ है ॥ १६ ॥

आदित्यमण्डल मध्यवर्ती जो पुरुष है वह सर्वोत्तम ह्रम है जो सर्वदा मनुष्यों के शुभादि कर्मों को प्रवर्तित करता है। यहाँ साम्यार्थ में अभेदभावना है। यह अहंप्रहोपासनामयी है ॥ १७ ॥

अनुवादक-

कृष्णदास

गौरः सच्चरितामृतामृतनिधि गौरं सदैव भजे
गौरेण प्रथितं रहस्यभजनं गौराय सर्वं ददे।
गौरादस्ति कृपालुरत्र न परः गौरस्य भृत्योऽभवं
गौरे गौरवमाचरामि भगवन् गौरप्रभो ! रक्ष माम् ॥

(गौरांगविरुदावल्याम् ॥)



[सूत्र उपामना वैष्णवपूजाविधिः]

प्रथमतः श्रीराधाकृष्णस्मरणम् ।

आसनोपरि उर्पाविश्य सिद्धदेहं भावयेत् ।

श्रीगुरुभ्यो नमः, श्रीपरमगुरुभ्योनमः, श्रीपरात्परगुरुभ्यो
नमः ॥ १ ॥

शङ्ख प्रक्षालनं-शंखे जलं पूरयित्वा शंखे तीर्थावाहनं-

गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।

नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन्संनिधिं कुरु ॥

इति मन्त्रेण शङ्खसंस्कारं कुर्यात् । नीराजनमुद्रां शङ्खोपरि
दर्शयित्वा शङ्ख मुद्रां दर्शयेत् । धेनुमुद्रां दर्शयेत् । शङ्खोपरि मूल-
मन्त्रेण त्रिधा जपेत् । शङ्खजलेन घण्टाप्रक्षालनं-जगद्घूर्णात्मने नमः,
अनेन मन्त्रेण वामहस्तेन घण्टावादनं, मूलमन्त्रेण श्रीकृष्णाय
पुष्पाञ्जलिं दद्यात् ॥ २ ॥

पहले श्रीराधा-कृष्ण का स्मरण करें—

आसन के ऊपर बैठ कर निज सिद्धदेह की भावना करें ।
“श्रीगुरुभ्यो नमः” श्रीपरमगुरुभ्यो नमः” इत्यादि प्रकार से गुरु-
परम्परा का नमस्कार करें ॥ १ ॥

अब शंखप्रक्षालन की विधि कहते हैं-शंख में जल भर कर
“गंगे च यमुने चैव” इस मन्त्र से उस में तीर्थों का आवाहन
कर शंख का संस्कार करें । शंख के ऊपर नीराजन मुद्रा दिखा कर
पुनः शंख मुद्रा को दिखावे । पुनः धेनुमुद्रा दिखाकर शंख के ऊपर-
भाग में तीन बार मूलमन्त्र का जप करें ।

अब घंटा वादन की विधि कहते हैं-शंखजल से घण्टा का
प्रक्षालन कर “जगद्घूर्णात्मने नमः” इस मन्त्र का पाठ कर वाम
हाथ से घण्टावादन तथा मूलमन्त्र से श्रीकृष्ण को पुष्पाञ्जलि
देवें ॥ २ ॥

(२)

अथ श्रीवृन्दावनध्यानम्—

भद्र श्री-लोह भाण्डर महाताल-खदिरकाः ।

बहुलं कुमुदं काम्यं मधु-वृन्दावनं तथा ॥

द्वादशैतान्यरण्यानि कालिन्द्याः सप्त पञ्चमे ।

पूर्वे पञ्चवनं प्रोक्तं तत्रातिगुह्यमुत्तमम् ॥

तत्र यमुनावेष्टितनिकुञ्जम् । ततो दिव्योद्यानम् । तन्मध्ये कल्प-
तरुम् । तत्राधो हेमस्थली । तत्र मणिकुट्टिमम् । तदुपरि महायोग-
पीठम् । तत्र रत्नपङ्कजम् । तत्र कर्णिकायां राधाकृष्णौ ध्यायेत् ।

वृन्दावनं दिव्यलतापरीतं लताश्च पुष्पास्फुरिताग्रभाजः ।

पुष्पाण्यपि स्फीतमधुत्रतानि मधुत्रताश्च श्रुतिहारिगीताः ॥

दिव्यद्वन्द्वारण्य कल्पद्रुमाधः श्रीमद्रत्नागारसिंहासनस्थौ ।

श्रीमद्राधाश्रीलगोविन्दद्वौ प्रेष्टुः लिभिः सेव्यमानौ स्मरानि ॥३॥

अब वृन्दावन का ध्यान कहते हैं—भद्रवन, श्रीवन, लोहवन, भाण्डारवन, महावन, तालवन, खदिरवन, बहुलावन, कुमुदवन, कामवन, मधुवन, श्रीवृन्दावन ये बारह वन हैं । यमुना की पश्चिम दिशा में सात तथा पूर्व दिशा में अति गुह्य पांच वन मौजूद हैं वहाँ यमुना जी से वेष्टित निकुञ्ज है, उसमें दिव्य उद्यान है, उस उद्यान के बीच कल्पतरु है, उस कल्पतरु के नीचे सुवर्णस्थली है उस में मणिमय गृह है, उसके ऊपर महायोगपीठ है, उस योगपीठ में रत्नकमल है, उस कमल की कर्णिका में राधाकृष्ण का ध्यान करें

श्रीविदग्धमाधव नाटक में—वृन्दावन दिव्यलताओं से परि-
वेष्टित है । अग्रभाग में पुष्पों से शोभायमान लतावली हैं । लताओं में पुष्प सब भ्रमरों से परिशोभित हैं तथा भ्रमर सब कर्ण रसायन मनोहर गान करने वाले हैं ॥

शोभायमान दिव्यातिदिव्य श्रीवृन्दारण्य के कल्पद्रुम के नीचे श्रीरत्नमय गृह है । उसमें परम मनोहर सिंहासन में प्रिय सखि

(३)

अथ मूलमन्त्रेण पुष्पाञ्जलित्रयं दद्यात् । ततः श्रीकृष्णध्यानं
कुर्यात् ॥

फुल्लेन्दीवरकान्तिमिन्दुवदनं वर्हावतंसं प्रियं
श्रीवत्साङ्गमुदारकौस्तुभधरं पीताम्बरं सुन्दरम् ।
गोपीनां नयनोत्पलार्चिचततनुं गोगोपसंघावृतं
गोविन्दं कलवेणुवादनपरं दिव्याङ्गभूषं भजे ॥४॥

मूलमन्त्रेण त्रिवारं जपेत् । पुनः पुष्पाञ्जलित्रयं दद्यात् । ततः
श्रीराधाध्यानं कुर्यात् । श्रीकृष्णस्य वामपार्श्वे—

तप्रहेमप्रभां नीलकुन्तला-वद्धमल्लिकाम् ।
शरच्चन्द्रमुखीं नृत्यच्चकोरीचञ्चलेक्षणां ॥
विम्बाधरस्मितज्योत्स्ना-जगज्जीवनदायिकाम् ।

से सेव्यमान तथा विराजमान श्रीराधा श्रीगोविन्द का स्मरण
करता हूँ ॥ ३ ॥

मूलमन्त्र से तीन बार पुष्पाञ्जलि देकर श्रीकृष्ण का ध्यान
करें । ध्यान इस प्रकार है—फुल्लायमान नीलकमल की भाँति कान्ति
वाले, चन्द्रवदन, मयूरपुच्छधारण से प्रिय, श्रीवत्सचिन्ह से शोभा-
यमान, कौस्तुभधारी, उदार, पीताम्बर, परममनोहर, गोपियों के
नयन कमलों के द्वारा अर्चयमान, दिव्यातिदिव्य शरीरवाले, गौ-
गोप ससूह से वेष्टित, कलवेणुवादनकारी, दिव्यातिदिव्य अङ्ग-
भूषणों से भूषित श्री गोविन्द का भजन करते हैं ॥ ४ ॥

फिर मूलमन्त्र का तीन बार जप कर तीन बार पुष्पाञ्जलि
प्रदान करें । उसके अनन्तर श्रीराधिका जी का श्रीकृष्ण के वाम
भाग में ध्यान करें । ध्यान इस प्रकार है—तपायमान सुवर्ण की
भाँति कान्तिवाली, नीलकुञ्चित-केशों में मल्लिकामाला धारण-
कारिणी, शरच्चन्द्रमा की भाँति मुखवाली, नृत्यकारी चकोरी की
भाँति चञ्चल नेत्रशाली, विम्बाधर के स्मित किरणों से जगज्जीवों

चारु रत्नस्तनालम्बिमुक्तादामविभूषिताम् ॥
 नितम्बनीलवसनां किङ्किणिजालमण्डिताम् ।
 नानारत्नादिनिर्माण रत्ननूपुरधारिणीम् ॥
 सर्वलावण्यमुग्धाङ्गी सर्वावयवसुन्दरीम् ।
 कृष्णपार्श्वस्थितां नित्यां कृष्णप्रेमैकविह्वलाम् ॥
 आनन्दरससंमग्नां किशोरीमाश्रयेद्वने ॥ ५ ॥

अथ श्रीराधिका मन्त्रं त्रिवारं जपेत् । पुनः पुष्पाञ्जलित्रयं
 दद्यात् । ततः श्रीकृष्णाय आवाहनादिमुद्रां दर्शयेत् । आवाहनसंस्था-
 पन-सन्निधापन-सकलीकरण-अवगुण्ठनामृतीकरण-परमीकरणानि
 कुर्यात् । देवाङ्गेषु मूलमन्त्रसहितसकलीकरणं न्यासं कुर्यात् मूल-
 मन्त्रमुच्चार्य—“श्रीकृष्ण अत्रागच्छ, श्रीकृष्ण इह तिष्ठ, श्रीकृष्ण
 इह सन्निहितो भव, श्रीकृष्ण इह सर्वाङ्गं दर्शय, श्रीकृष्ण त्वां गोप-
 की प्राणदायिनी, मनोहर रत्न तथा स्तनालम्बि मुक्तामालाओं से
 विभूषिता, नितम्बदेश में नीलवस्त्रधारिणी, किङ्किणि समूह से
 परिमण्डिता, नाना रत्नों से निर्मित रत्ननूपुरधारिणी, समस्त
 लावण्यता से मोहितांगी, सर्वावयव से सुन्दरी, श्रीकृष्ण के
 पार्श्वभाग में नित्य विराजमाना, श्रीकृष्णप्रेम में विह्वला, आनन्द-
 रस में संमग्ना, किशोरी श्रीराधिका जी का हम इस वृन्दावन में
 आश्रय करते हैं ॥ ५ ॥

अब तीन बार श्रीराधिका मन्त्र का जप कर तीन बार पुष्पा-
 ञ्जलि का प्रदान करें । अनन्तर श्रीकृष्ण के लिये आवाहनादि मुद्रा
 दिखावें । आवाहन-संस्थापन-सन्निधान-सकलीकरण-अवगुण्ठन-
 अमृतीकरण-परमीकरण इन मुद्राओं को क्रम से दिखा कर देवता
 के अङ्गों में मूलमन्त्र पाठ के साथ सकलीकरण न्यास करें । मूल-
 मन्त्र का उच्चारण कर हे श्रीकृष्ण यहाँ आइये, श्रीकृष्ण ! यहाँ
 ठहरिये, श्रीकृष्ण ! यहाँ स्थिर रूप से विराजमान कीजिये, श्रीकृष्ण

(५)

यामि, श्रीकृष्ण अमृतमयोऽसि, श्रीकृष्ण परमोऽसि" इत्यादिकं
पाठत्वा तान न्यासान् कुर्यात् ॥ ६ ॥

अथ पुष्पाञ्जलित्रयं दद्यात् । आचमनं नमः । कनककेयूरादि
नूपुरादि अलङ्कारं समर्पणं । श्रीराधाकृष्णौ स्वस्थाने उपविश्य अथ
आवरणपूजां कुर्यात् । ललितादिअष्टसखीभ्यो नमः । ललितादि
अष्टसखीभ्यो आचमनीयं नमः । ललितादि अष्टसखीभ्यो स्नाना-
दिकं वेषभूषणं परिकल्पयेत् ।

उत्तरे ललितादेवी ईशाने च विशाखिका ।

पूर्वे चित्रा तथा चाग्निकोणे चम्पकवल्लिका ॥

दक्षिणे तुङ्गविद्या च नैऋते इन्दुलेखिका ।

पश्चिमे रङ्गदेवी च वायव्ये च सुदेविका ॥

स्वनाम-चतुर्थ्यन्ते नमः मन्त्रेण श्रीराधाकृष्णयोः चतुः पार्श्वे
स्थित अष्टसखीं पूजयेत् । श्रीललिताय नमः । श्रीविशाखायै नमः ।

सर्वाङ्ग का अवलोकन कराइये, श्रीकृष्ण ! तुम्हारा गोपन करता
हूँ, श्रीकृष्ण ! आप अमृतमय हैं, श्रीकृष्ण ! आप परात्पर हैं इस

प्रकार पाठ कर उन न्यासों को दिखावें ॥ ६ ॥

- अनन्तर तीन बार पुष्पाञ्जलि अर्पण कर आचमन देवें ।
पश्चात् सुवर्णकेयूर-नूपुरादि अलङ्कारों का समर्पण करें तथा
श्रीराधाकृष्ण को अपने स्थान में बैठा कर आवरण पूजा करें ।
“ललितादिअष्टसखीभ्योनमः” ललितादि अष्टसखीभ्यो आचम-
नीयं नमः” यह सब मन्त्र हैं । अथ ललितादि-अष्टसखियों को
स्नानादि करा कर वेष भूषणादि की कल्पना करें ।

उत्तर में ललितादेवी, ईशानकोण में विशाखा, पूर्व में चित्रा,
अग्निकोण में चम्पकलता, दक्षिण में तुङ्गविद्या, नैऋत में इन्दुलेखा,
पश्चिम में रङ्गदेवी, वायुकोण में सुदेवीजी मौजूद रहती हैं । निज
नाम में चतुर्थ्यन्त देकर नमः शब्द का संयोग करने पर उनका

श्रीचम्पकलतायै नमः । श्रीचित्रायै नमः । श्रीतुङ्गविद्यायै नमः ।
श्रीइन्दुलेखायै नमः । श्रीसुदेव्यै नमः । श्रीरङ्गदेव्यै नमः । ॥ ७ ॥

ताम्बूलभक्तौ ललिता विशाखा गन्धचन्दने ।
चामरे चम्पकलता चित्रा वसनकर्मणि ॥
नानावाद्ये तुङ्गविद्या इन्दुलेखा च नर्त्तने ।
सुदेवी जलसेवायां रागे च रङ्गदेविका ॥ ८ ॥

ततः अष्टकोणेषु अष्टमञ्जरी परिकल्पयेत् । अष्टमञ्जरीभ्यो नमः ।
स्तानं नमः । वेशभूषणादिकं कल्पयेत् पूर्वादिक्रमेण । श्रीलवङ्गमञ्ज्यै
नमः । श्रीरूपमञ्ज्यै नमः । श्रीरतिमञ्ज्यै नमः । श्रीगुणमञ्ज्यै
नमः । श्रीरसमञ्ज्यै नमः । श्रीमञ्जुलालिमञ्ज्यै नमः । श्रीविलास-
मञ्ज्यै नमः । श्रीकस्तूरीमञ्ज्यै नमः । पूर्वे गोपालकन्यायै नमः ।

मन्त्र वनता है । यथा—“श्रीललितायै नमः” “श्रीविशाखायै नमः”
इत्यादि प्रकार है । इन अष्टसत्त्वियों की श्रीराधाकृष्ण के चतु-
पार्श्व में पूजा करें ॥ ७ ॥

ताम्बूलसेवा में ललिता, गन्धचन्दन सेवा में विशाखा, चामर-
सेवा में चम्पकलता, वस्त्रसेवा में चित्रा, नानावाद्य में तुङ्गविद्या,
नर्तन में इन्दुलेखा, जलसेवा में सुदेवी, गन्धरागादि सेवा में रङ्ग-
देवी जी हैं ॥ ८ ॥

अनन्तर अष्टकोणों में अष्टमञ्जरी की परिकल्पना करें । “अष्ट-
मञ्जरीभ्यो नमः आचमनं नमः, स्तानं नमः” इस प्रकार कह कर
उन की पूजा करें तथा वेष-भूषादियों से भूषित करावें । अनन्तर
पूर्वदिशा में “श्रीलवङ्गमञ्ज्यै नमः” अग्निकोण में “श्रीरूपमञ्ज्यै
नमः, दक्षिणदिशा में “श्रीरतिमञ्ज्यै नमः” नैऋत में “श्री-
गुणमञ्ज्यै नमः” पश्चिम में “श्रीरसमञ्ज्यै नमः” वायुकोण में
“श्रीमञ्जुलालिमञ्ज्यै नमः” उत्तर में “श्रीविलासमञ्ज्यै नमः”
ईशान में “श्रीकस्तूरीमञ्ज्यै नमः” इस प्रकार कह कर उन दिशाओं

(७)

दक्षिणे श्रुतिकन्यायै नमः । पश्चिमे मुनिकन्यायै नमः । उत्तरे देवकन्यायै नमः ॥ ६ ॥

गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्यं श्रीकृष्णस्य पुरतः स्थापनं कृत्वा मुद्रान् दर्शयेत् ।

श्रीवत्स-कौस्तुभ-वेणुं अभीतिवरदं तथा ।

घन-मालां तथा मन्त्री दर्शये कृष्णपूजने ॥

तदनन्तरं मूलमन्त्रेण धूप-दीपं घटावाद्यसहितं दद्यात् नाना-विध मिष्टान्नं संस्कारं कुर्यात् । नैवेद्योपरि शङ्खजलं प्रोत्तिप्य तुलसी-मञ्जरीं प्रोत्तिप्य अवगुंठनामृतिकरणादिकं कृत्वा धेनुमुद्रां दर्शयित्वा मूलमन्त्रेण नैवेद्यस्पर्शनं कुर्यात् । श्रीकृष्णाय पुष्पाञ्जलित्रयं दद्यात् । मूलमन्त्रेण श्रीकृष्णाय नैवेद्यं दद्यात् । प्राणाय स्वाहा । पानाय स्वाहा । व्यानाय स्वाहा । उदानाय स्वाहा । समानाय स्वाहा । भुक्तान्नं इति कल्पयेत् । मूलमन्त्रेण श्रीराधां पुष्पाञ्जलित्रयं दद्यात् । मूलमन्त्रेण श्रीराधां नैवेद्यं दद्यात् । ततः स्थानान्तरं गच्छेत् । किञ्चित्कालं अपेक्ष्य । ततः श्रीकृष्णाय आचमनं नमः । श्रीराधायै

में उन मञ्जरियों की पूजा करें । पुनः पूर्व दिशा में “गोपालकन्यायै नमः” दक्षिण में “श्रुतिकन्यायै नमः” पश्चिम में “मुनिकन्यायै नमः” उत्तर में “देवकन्यायै नमः” से कन्यकाओं की पूजा करें ॥ ६ ॥

अनन्तर गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्यादि वस्तुओं को श्रीकृष्णाग्र में स्थापित कर मुद्राओं को दिखावें । श्रीवत्समुद्रा, कौस्तुभमुद्रा, वेणुमुद्रा, चरदमुद्रा, घनमुद्रा, मालामुद्राओं का श्रीकृष्ण-पूजन में मन्त्री दर्शन करावें । अनन्तर मूलमन्त्र पाठ से घटावाद्य के साथ धूप-दीप का प्रदान करें ।

अथ नाना प्रकार मिष्टान्न संस्कार करें । नैवेद्य के ऊपर शङ्ख-जल का सींचन कर तुलसी मञ्जरी धरें । फिर अवगुंठन-अमृती-करणादि करा कर धेनुमुद्रा दिखा कर मूलमन्त्र के पाठ से नैवेद्य

(८)

आचमनं नमः । ललितादि अष्टसखीभ्यो नैवेद्यं नमः । श्रीराधिका-
परिवारेभ्यो नैवेद्यं नमः ।

इति कल्पयेत् । आचमनं नमः । श्रीराधाकृष्णाभ्यां अष्टपुष्पा-
ञ्जलिं दद्यात् । श्रीराधादामोदराभ्यां नमः । श्रीराधामाधवाभ्यां
नमः । श्रीवृषभानुकिशोरीगोपेन्द्रनन्दनाभ्यां नमः । श्रीगोविन्द-
प्रियसखीगान्धर्वाभ्यां नमः । श्रीकुञ्जनागरीनागराभ्यां नमः ।
श्रीगाष्टकिशोरीकिशोराभ्यां नमः । श्रीवृन्दावनाधिपाभ्यां नमः । श्री-
कृष्णवल्लभाभ्यां नमः ॥ १० ॥

तदनन्तरं श्रीराधाकृष्णाभ्यां गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-ताम्बूलादि-
समर्पणम् । अथ आरात्रिकं कुर्यात् । ब्रह्माण्डपुराणे-

आदौ चतुःपादतलैकदेशे द्वौ नाभमध्ये मुखमण्डले चैकम् ।

सर्वाङ्गदेशे शुचि सप्रवारं आरात्रिकं कृष्णमिमं प्रकुर्यात् ॥

का स्पर्श करें । श्रीकृष्ण के लिये तीन बार पुष्पाञ्जलि प्रदान का
मूलमन्त्र पाठ से उनका नैवेद्य का समर्पण करें । अन्न-भोजन
कराने के समय "प्राणाय स्वाहा" "पानाय स्वाहा" "व्यानाय
स्वाहा" "उदानाय स्वाहा" "समानाय स्वाहा" इन मन्त्रों की परि-
कल्पना करें । मूलमन्त्र से श्रीराधिका जी के लिये तीन बार पुष्पा-
ञ्जलि देकर पुनः उसी मन्त्र से श्रीराधिका के लिये नैवेद्यादि अर्पण
कर स्थानान्तर में जाकर किञ्चित्काल अपेक्षा करें । अनन्तर
"श्रीकृष्णाय आचमनं नमः" "श्रीराधायै आचमनं नमः" "श्रीललि-
तादि अष्टसखीभ्यो नैवेद्यं नमः", श्रीराधिकापरिवारेभ्यो नैवेद्यं
नमः" इस प्रकार मन्त्र पाठ कर आचमनादि करें । अनन्तर
श्रीराधादामोदराभ्यां नमः" "श्रीराधामाधवाभ्यां नमः" इत्यादि
प्रकार कह कर राधाकृष्ण के लिये आठ बार पुष्पाञ्जलि का प्रदान
करें ॥ १० ॥

(६)

कोटयो ब्रह्महत्यानामगम्यागम्यकोटयः ।

दहत्यालोकमात्रेण विष्णोः सारत्रिकं मुखम् ॥ ११ ॥

आरात्रिकोपरि शङ्खजलं प्रक्षिप्य तुलसीमञ्जरीं दत्वा अवगुण्ठ-
नामृत्तिकरणानि कुर्यात् । ततः श्रीराधाकृष्णभ्यां पुष्पाञ्जलित्रयं
दद्यात् । ततः देवस्य नेत्रादि द्वादशाङ्गपर्यन्तं पारावत-भ्रमाकारं
वन्दापयेत् । तदनन्तरं श्रीराधाकृष्णौपरि शङ्ख आरात्रिकं कुर्यात् ।
शङ्खतोयं स्वशिरसि प्रक्षिप्य बाह्यं किञ्चित्प्रक्षपयेत् ॥ १२ ॥

इति श्रीरूपगोस्वामिना विरचितं सूत्रउपासनावैष्णवपूजाविधिपटलं
समाप्तम्

अथ गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-ताम्बूलादि समर्पण कर आरती करें ।
ब्रह्माण्ड पुराण में कहा है-

पहले पादों के तल भाग में चार बार, नाभिदेश में दो बार, मुख-
मण्डल में एक बार, सन्वाङ्ग में सात बार पवित्र श्रीकृष्ण के लिये
आरती करें । आरात्रि संयुक्त श्रीकृष्ण के मुखारविन्द का दर्शन
मात्र से कोटि २ ब्रह्महत्या, अगम्यागम्य पाप नाश हो जाते हैं ॥ ११ ॥

आरात्रिक के ऊपर शंखजल सींचन कर तुलसीमञ्जरी प्रदान
कर अवगुण्ठन-अमृत्तीकरणदि करें । अनन्तर श्रीराधाकृष्ण के
लिये तीन बार पुष्पाञ्जलि देकर उनके नेत्र से लेकर द्वादश अङ्गों में
पारावत भ्रमण की भाँति आरती का घुमावें । अथ श्रीराधाकृष्ण
के लिये शङ्ख से आरती करें । शङ्खजल को नित्र मस्तक में फेंक कर
किञ्चित् बाहिर में फेंके ॥ १२ ॥

गौगाङ्गाऽगणितं गतो गुणगणं गीर्वाणगोत्रो गवां
ग्लानिं गाढतमां गिलन् गृहरुचि गान्धारगीतेर्गुरुः ।
गञ्जन्गोत्रसमं गजं गतिरुचा गाम्भीर्यतो गोनिधि
गाङ्गेयं गुरुगौरवेण गदतो गीः पद्धतिं गाढताम् ॥

(श्री श्रीगौराङ्गविरुदावल्याम्)

॥ युगलाष्टकम् ॥

कृष्णप्रेममयी राधा राधा प्रेममयो हरिः ।
 जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम ॥ १ ॥
 कृष्णस्य द्रविणं राधा राधाया द्रविणं हरिः ।
 जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम ॥ २ ॥
 कृष्णप्राणमयी राधा राधाप्राणमयो हरिः ।
 जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम ॥ ३ ॥
 कृष्णद्रवमयी राधा राधाद्रवमयो हरिः ।
 जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम ॥ ४ ॥
 कृष्णगेहे स्थिता राधा राधागेहे स्थितो हरिः ।
 जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम ॥ ५ ॥
 कृष्णचित्तस्थिता राधा राधाचित्तस्थितो हरिः ।
 जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम ॥ ६ ॥
 नीलाम्बरधरा राधा पीताम्बरधरो हरिः ।
 जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम ॥ ७ ॥
 वृन्दावनेश्वरी राधा कृष्णो वृन्दावनेश्वरः ।
 जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम ॥ ८ ॥
 इति श्रीजीवगोस्वामिना विरचितं
 श्री श्रीयुगलाष्टकं सम्पूर्णम् ॥



❀ श्रीकृष्णप्रेमामृतम् ❀

श्री श्रीगौरचन्द्राय नमः ।

जयति जननिवासो देवकी-जन्मवादो

यदुवरपरिषत् स्वेदोर्भिरस्यन्नधर्मम् ।

स्थिरचरवृजिनन्दनः सुस्मित-श्रीमुखेन

ब्रजपुरवनितानां वर्द्धयन् कामदेवम् ॥१॥

तत्र तावदेकदा राधा यमुनां गन्तुकामा रामाः समाहूतवती ।

कपूर्मञ्जरि कलावात चन्द्रलेखे

सुगधानने सुमुखि सुन्दरि कम्बुर्काण्ठ ।

आगच्छताम्बुहरणाय गृहीतकुम्भाः

संभूय मन्दपवनां यमुनां ब्रजामः ॥२॥

श्रीश्रीगौर जन्महाप्रभुर्जयति

जगनियन्ता, देवकीगर्भसंभूत, स्थावर-जङ्गम प्राणियों के पाप-नाशन श्रीहरि निज यादव परिकरों के साथ अपने भुजाओं के द्वारा अधर्म का नाश करते हुए तथा मन्दहास्य से शोभित श्रीमुख-चन्द्रमा के द्वारा ब्रजपुरवासि वनिताओं का कामदेव अर्थात् प्रेम-ममुद्र को बढ़ाते हुए जय प्राप्त हो रहे हैं ॥ १ ॥

पहले जलाहरण लीला का वर्णन करते हैं । एक समय वृषभानु-नन्दिनी श्रीराधा यमुना जाने की इच्छा करती हुईं ब्रजवालाओं को बुलाने लगीं । हे कपूर्मञ्जरि ! हे कलावति ! हे चन्द्रलेखा ! हे मोहितमुखवाली ! हे सुन्दरमुखी ! हे सुन्दरि ! हे कम्बुर्काण्ठ ! तुम सब कलश लेकर आओ, जल भरने के लिये यमुना चलेगीं । सखियों ! स्मरण तो करो । वहाँ किस प्रकार मन्द सुहावनि पवन बहती है ॥ २ ॥

माधुरकृत

(२)

एतन्निशम्य वचनं मृगलोचनायाः

दूरे विहाय गृहकर्म गृहीतकुम्भाः ।

दामोदरानन-विलोकन-लोलचित्ता

गोप्यो जलाय चलिता ललितांग्रिपाताः ॥३॥

सर्वा घटीः कटितटे सरसं दधाना

वामेतरां भुजलतामतिलोलयन्त्यः ।

शश्वन्मिथप्रियकथा स्मितसुन्दरास्या

गोपालबालललनाः यमुनां प्रयाताः ॥४॥

अन्योन्यमारब्धभुजाभुजेन स्नातुं प्रयान्त्यस्तपनात्मजायाम् ।

मन्दस्वलच्चारु कुचाभिरामा गायन्ति शश्वच्चरितं मुरारेः ॥५॥

ततो यमुनां गत्वा—

माधुर
का शक्ति

मृगनयनी श्रीराधिका के इस प्रकार वचनों को सुन कर गोपी सब दूर में गृहकार्य छोड़ काँख में कलश लेकर यमुना के लिये चलने लगीं । वे सब श्री दामोदर के अवलोकन के लिये चञ्चल चित्तवाली थीं तथा उनका चरणक्षेपण बहुत मनोहर था ॥ ३ ॥

वे सब ब्रज वालायेँ काँख में कलश को धर कर दाहिने हाथ को हिलाती हुईं यमुना के लिये चलने लगीं । निरन्तर पारस्परिक प्रिय श्यामसुन्दर के लीला-चरित्रों का कीर्त्तन करने के कारण उनके मुखकमल प्रफुल्ल रहे थे । अत्यन्त हर्ष से एक दूसरे के भुजाओं से भुजा मिलाकर मन्द गिरती हुईं यमुना स्नान के लिये चलने लगीं । स्तनभार से वे सब पीड़िता थीं तथा निरन्तर मुरारि के चरित्रों का गान करती थीं ॥ ४ । ५ ॥

अनन्तर गोपाङ्गनाएँ किनारे को छोड़ कर जंघा तक जल में हाथों से जल को हिला कर बड़ों में पानी भरने लगीं तथा कुछ ने किनारे की ओर बढ़ कर अल्पजल में उन बड़ों को एकत्र रख लिया ॥ ६ ॥

(३)

स्तुतिप्यवेलमधि जानुपयः प्रवाहे

शश्वद्विधूय तरसां पयसा प्रपूर्य्य ।

तस्माच्च किञ्चिदवकाशजले कराभ्यां

गोपाङ्गना भुजघटीं घटयाम्बभूवुः॥६॥

ततः कृष्णो दूरे ता निरीक्ष्य सस्मितः—

इहैव कन्दपेकलानुकूले कदम्बमूले निभृतो भवामि ।

कूले दुकूलं विनिधाय नीरे गोपाङ्गना मज्जनमाचरन्तु ॥७॥

ततः कूले दुकूलं निधाय निमज्जन्ती काचिदुच्छैरुवाच—

मा मज्ज मा मज्ज जले मृगान्ति गृहाण चेलं सहसा विबुध्य ।

आयाति सोऽयं व्रजसुन्दरीणां निचोलचौरः पुरतः किशोरः ॥८॥

ततोऽसम्भ्रमं निरूप्य तां कृष्णस्तत्रैव माययाऽन्तर्दधौ—ततस्तु—

सर्वांगलैस्तत्र निरूप्य यत्नान् पुंसां विहीना विदिशो दिशोऽपि ।

आदाय कूले वनिता दुकूलं पयः प्रवाहे सरसं ममज्जुः ॥ ९ ॥

उधर श्रीव्रजराजन्यन दूर से गोपबालाओं को देख कर हँसते हुए सोचने लगे । मैं अब यहाँ ही कन्दर्पक्रीड़ा के अनुकूल कदम्ब के नीचे छिप कर रहूँगा । गोपाङ्गनाएँ घाट पर वस्त्र रख कर यमुना में स्नान करेंगीं । उससे मेरी अभिलाषा सिद्ध होगी ॥ ७ ॥

अनन्तर गोपाङ्गनाएँ किनारे में वस्त्र रख कर स्नान करने लगीं । उन में से कोई रमणी ऊँचे स्वर से कहने लगी कि हे मृगान्ति ! अधिक जल में डूब कर मत स्नान करो मत स्नान करो । शीघ्र ही उठ कर अपने वस्त्र को सम्भालो । क्योंकि व्रजसुन्दरियों के वस्त्रचोर वह गोपकिशोर आगे आ रहे हैं ॥८॥

अथ श्रीकृष्ण गोपाङ्गनाओं को सावधान देख कर वहाँ लीला-मात्र से अन्तर्धान हो गये । वनिताओं ने सखियों के द्वारा इधर उधर अनुसन्धान कर देखा कि वह प्रदेश अत्यन्त निर्जन तथा

नीपशाखिविटपोपरि वाम बाहुमूलमुपधाय शयालुः ।

गोपिका निभृतवीक्षणकामः स्वापमाप कपटेन मुरारिः ॥ १० ॥

बहुल जल विहार व्याकुलानां निपीत

स्फुटकमलमधूनां मुग्धगोपाङ्गनानाम् ।

पुलिन मपि विलोक्य स्मेरवक्त्रारविन्दो

वसनमय मुकुन्दो हत्तुं कामो बभूव ॥ ११ ॥

लघु लघुनवनीपान्नीपपुष्पावतंसः

सुरत समरसिंहः स्मेरवक्त्रारविन्दः ।

चकित चकितमासां शश्वदुद्वीक्ष्यमानो

व्रजयुवतिनिचोलं चोरयामास कृष्णः ॥ १२ ॥

ततो दुकूलानि कूलेऽनालोक्य राधा जगाद—

कूले कलिन्द दुहितुर्निहितं निचोलं

नालोकितं सपदि केन जनेन नीतम् ।

पुरुषों से रहित है । अतः वे सब निश्चिन्त हो कर तट पर वस्त्रों को रख यमुना प्रवाह में सरस स्नान करने लगीं ॥ ६ ॥

उधर श्रीमुरारी कदम्बवृक्ष में बांमभुज को स्थापित कर कपट शयन करते हुए निभृत में गोपाङ्गनाओं को देखने लगे ॥ १० ॥

अनन्तर श्रीमुकुन्द मन्दहास्य करते हुए—अधिक जलविहार में आसक्ता, कमलों का मकरन्द पानकारिणी मोहित गोपाङ्गनाओं के वस्त्रों का हरण करने लगे । नीपपुष्पों से भूषित, सुरत समर के सिंह, मन्द मन्द हास्यकारी श्रीकृष्ण ने धीरे धीरे भय भीत से नीप वृक्ष से उतर कर तथा गोपाङ्गनाओं को देखते हुए उनके वस्त्रों का हरण किया ॥ ११ । १२ ॥

अनन्तर वस्त्रों को तट पर न देख कर श्रीराधा कहने लगी । कलिन्दनन्दिनी के तट पर हम सब ने वस्त्रों को रखा था, अब वस्त्र सब कहाँ गये, न जाने किसी ने ले लिये ? स्वभाव से गुरुजन रोपा

(५)

श्वभ्रमुखं सहजरोषवशारुणात्

द्रक्ष्यामि हन्त सहसाथ कृतापराधा ॥ १३ ॥

अपिच—आगन्तुमत्र गुरुणा बहुधा निषिद्धा

हा हा तथापि यमुनां यदुपागताऽस्मि ।

शप्तं मया तदनुरूपफलं न जाने

किम्वा फलान्तरमुपैमि गृहे गुरुभ्यः ॥ १४ ॥

तत उतीर्य पुरोऽवलोक्य कृष्णं प्रति—

माधव माधव विदूरमिदं दुकूलं

आदाय कूलनिहितं मिहिरात्मजायाः ।

ज्ञातोऽसि चञ्चल निवृत्तिमुपैहि सद्यो

भद्रं भविष्यति न ते विदिते नृपेण ॥ १५ ॥

धिय के कारण अरुणनेत्र से देखते हैं। नहीं जानती हूँ आज भाग्य में क्या बीतेगा ? इस अपराध की निष्कृति कैसी होगी ॥ १३ ॥

और भी सुनिये—यहाँ आने के लिये गुरुजन ने अनेक कुछ निषेध किया था, हाय तौ भी मैं यमुना में आई हूँ। गुरुजन के वचनों को नहीं मानने का फल मिल रहा है। नहीं जानती हूँ आगे घर में गुरुजनों से क्या फल मिलेगा ? इससे गुरुजन बहुत कुछ सुनावेंगे ॥ १४ ॥

अनन्तर आपने जल से किनारे में जा कर श्रीकृष्ण को देखा तथा उन को कहने लगीं। हे माधव ! तुम दूर में मत छिपो, हम सब यमुना के तट पर वस्त्रों को रख कर स्नान कर रही थीं। तुम ने वस्त्रों को छिपाया। अब शीघ्र ही उन वस्त्रों को लाओ। हे चञ्चल ! अब हम सब इस प्रकार मन्द कर्म करने वाले तुमको नहीं छोड़ेंगीं। यदि यहाँ का राजा इस बात को सुन लेगा तब तुम्हारा कल्याण नहीं होगा ॥ १५ ॥

(६)

कृष्णः स्मित्वा-नीपे निधाय वपूरु स्वतः दक्षिणांशं

सख्यांशलम्बि मणिकुन्तलमानतभ्रुः ।

आलोलमङ्गुलिदलैर्मुरली मुरारी

रापूरयन् व्रजवधू हृदयं जहार ॥ १६ ॥

मञ्जुहास परिहासपेशलः कौतुकान्नवकदम्बशाखिनम् ।

आरुरोह सरसीरुद्धाननो मन्द मन्दगतिः नन्दनन्दनः ॥ १७ ॥

आहूय गोपीरवधूय पाणिं स्मेराननो नन्दसुतो जगाद ।

उत्थाय कूले नवनीपमूले मत्तो दुकूलं नयतानुकूलम् ॥ १८ ॥

आकर्ण्य वाणीं वनितास्तदानीं ब्रीडाविनम्रा यदुनन्दनस्य ।

परस्परं स्मेरमुखारविन्दं विलोकयन्ति स्म तदा तरुण्यः ॥ १९ ॥

ततः क्षणं विभाव्य तमूचुः—

आगत्य कूले वसनं विदेहि सर्वासु दासीषु दयां विधाय ।

श्रीकृष्ण मन्दहास्य करते हुए कदम्बतरु में शरीर का भार दे कर चञ्चल अँगुलिदलों से मुरलीछिट्ठों को दाब कर उसको बजाने लगे । सखा के कंधे में आपका कन्धा संलग्न था । मणि कुन्तलों से आप शोभायमान थे । लम्बायमान भ्रु से आपकी शोभा अधिक रही ॥ १६ ॥

मनोहर हास्य परिहास में पटु, कमलनयन नन्दनन्दन कौतुक से मन्द मन्द गमन करते हुए कदम्बवृक्ष में चढ़ गये । आप हँसते हँसते हाथों को हिलाते हुए गोपियों को बुला कर कहने लगे— व्रजवालाओं तुम सब जल से उठ कर कूल के लिते आओ । इस कदम्बवृक्ष के नीचे आकर हम से अपने अनुकूल वस्त्रों को ले जाओ ॥ १७ । १८ ॥

उस समय व्रजवालाएँ यदुनन्दन श्रीहरि का इस प्रकार बचन सुन कर लज्जा से अपने अपने मुख नीचे करने लगीं तथा परस्पर मुखावलोक करती हुई खड़ी हो गयीं ॥ १९ ॥

तीव्रप्रतापाय नृपाय यावद्भवच्चरित्रं न निवेदयामः ॥२०॥

कृष्णः सरोषः ततः किं—

दास्यो भवत्यो यदि मे युवत्यस्तदेत्य गृहीत निजांशुकानि ।

नोचेन्न दास्ये वसुधाधिनाथः किम्वा विधातुं क्षमते तदर्थम् ॥२२

ततः क्षणं विचिन्त्य कृतलज्जा एतदनुबन्धिन्यः तरुण्यो नान्यथा
इति विचिन्त्य—

अधः समागत्य कराम्बुजाभ्यां कुचौ कठोरौ पिहितौ निधाय ।

व्रीडानुतास्तावद मन्द मन्द मुत्तेरुरुच्यै यमुनाप्रवाहात् ॥२२

कृष्णः स्कन्दोपरि वासांसि निधाय तरोरवरुद्ध तासामन्तिकं
जगाम । ततस्ताः प्रति—

उन्मील्य पश्यत दृशः सरसास्तरुण्यः

गृहीत वस्त्रमिह पाणियुगं प्रसार्य ।

अनन्तर क्षण काल सोचती हुई श्रीकृष्ण के लिये कहने
लगीं । हे श्रीकृष्ण ! तुम हम सब दासियों के ऊपर कृपा रखते हुए
स्वयं ही तट पर आकर वस्त्रों को दे जाओ । नहीं तो तीव्रप्रतापी
राजा के लिये आपके इस चरित्र को सुनावेंगी ॥ २० ॥

श्रीकृष्ण कुछ क्रोध करते हुए कहने लगे । उससे हमारा क्या
हो सकता है ? हे युवतियों ! यदि तुम सब हमारी दासी करके
स्वीकृता हो रही हो तो स्वयं आकर निज निज वस्त्रों को लेओ ।
यदि नहीं आती हो तब हम एक भी वस्त्र नहीं देंगे । इस विषय में
राजा महाशय हमारा क्या कर सकता है ॥ २१ ॥

अनन्तर क्षण काल विचार करती हुई लज्जा परायणा तरु-
णियाँ यमुनाजल से कदम्ब के नीचे आकर निज हस्त कमलों से
कुचों को ढक कर खड़ी हो गयीं ॥ २२ ॥

श्रीकृष्ण कन्ध पर उन के वस्त्रों को धर कर वृक्ष से नीचे आ
गये तथा उनके निकट में जाकर कहने लगे । हे युवतियों अपने

नाचेत्तरोरुपदवामि कदाचनाहं

मा यामि गच्छत पुन र्यमुनाजलेषु ॥२३॥

ततस्तत्प्राप्त्वा वनिताः क्षणमेव नतमुखी भूय कृष्णं मैवं कृष्णस्त-
देव पद्यं पठति । गोप्यस्तद्वाक्यं पौरुषं प्रतिभाव्य—

उन्मील्य नेत्रयुगलं स्मित सुन्दरास्याः

सुव्रीडितं मुररिपोमुखमीदयमाणाः ।

तत्रैव पाणिकमलैः कतमं प्रसार्य

संप्रार्थयन्ति वसनं सरसास्तरुण्यः ॥२४॥

कृष्णः सरहस्यं मैवं पाणी प्रसार्य प्रार्थयताम् गोप्यस्तदाकर्ण्य—

वामोक्षणातिगुरुणा नतवक्त्रमन्य

मूरुं विधाय पुलकाङ्कितमुद्रहन्त्यः ।

पाणी प्रसार्य पुरतो यदुनाथ देहि

वासांसि सस्मितमिदं प्रमदाः समूचुः ॥२५॥

अपने नेत्रों को खोल कर देखिये तथा हाथों को पसार कर वस्त्रों को लीजिये । नहीं तौ मैं वस्त्रों को लेकर फिर वृक्ष में चढ़ जाऊँगा तथा तुम सब जमुनाजल में चली जाना ॥ २३ ॥

अनन्तर उनके इस प्रकार वचन सुन कर ब्रजबालाएँ क्षण काल नतमुखी हो श्रीकृष्ण से कहने लगीं कि ऐसा नहीं होगा । श्रीकृष्ण पुनः उसी बात को दौराने लगे । गोपियाँ श्रीकृष्ण के इस हठ को जान कर अपने नेत्रों को खोल कर उन के मुख को देखने लगीं । वे सब मन्द हास्य से सुन्दर मुखवाली तथा लज्जापराधना थीं । उन में से कुछ तो हाथों को किञ्चित् पसार कर श्रीकृष्ण से वस्त्रों की प्रार्थना करने लगीं ॥ २४ ॥

श्रीकृष्ण ने कहा—इस प्रकार नहीं, हाथों को लम्बा पसार कर प्रार्थना कीजिये । गोपियाँ श्रीकृष्ण के इस प्रकार वचन को सुन कर निज निज स्थूल वाम उरु से अन्य उरु को ढक कर आगे हाथ

(६)

कृष्णः पुनः पुनर्विहस्य मैवं-

कृष्णो ऽ ब्रवीत्तत्र विहस्य मैवं दण्डायमानौ चरणौ निधाय
प्रसार्य पाणी रमणीसमूहाः यूयं पुनः प्रार्थयतांशुकानि ॥२६॥

ततस्ताः क्षणं विमृश्य का गतिरिदानीं । ततस्तासां-
गोपीनां निभृततनोर्विशेषशोभा
मालोक्य स्मितवदनस्तथापि ताभ्यः ।
खेदान्तः पुलकयुजो काम्बुजेन
प्रत्येकं वसननिदं ददौ सुनन्दः ॥ २७ ॥
आलिङ्गनानि निर्वहानि च चुम्बनानि
तस्मादत्राप्य यदुनन्दनतोऽंशुकानि
साङ्केतिकं कमपि कुञ्जगृहं विधाय
सानन्दमिन्दुवदना स्वगृहाणि जग्मुः ॥२८॥

प्रसारित करके "हे यदुनाथ अब तो वस्त्रों को दीजिये" इस प्रकार कहने लगीं । वे सब नतमुखी तथा पुलकावली से शोभायमाना थीं ॥ २५ ॥

श्रीकृष्ण बार बार हँसते हुए फिर कहने लगे । ऐसा नहीं होगा । दोनों चरणों को सीधा करके हाथों को प्रसारित कर वस्त्रों को माँगिये ॥ २६ ॥

अनन्तर "अब क्या दशा होगी ?" इस प्रकार गोपियाँ विचार करने लगीं । श्रीकृष्ण उस समय गोपियों की उस मनोहर शोभा का मन्द हास्य के साथ अवलोकन करते हुए पुलकावली से विभूषित हो गये तथा निज करकमलों से वस्त्रों को लाकर प्रत्येक को देने लगे ॥ २७ ॥

श्रीकृष्ण ने सब का आलिङ्गन-चुम्बन दिया । वे सब चन्द्रवदनी बजवालाओं ने उन से आलिङ्गन-चुम्बन का लाभ कर वस्त्रों को प्राप्त किया तथा संकेत के द्वारा मिलन स्थान की सूचना दे कर

इति श्रीगोपालभट्टविरचिते प्रेनामृते वसनचौख्ये-
केलिवर्णनं नाम प्रथमखण्डं समाप्तम् ।

ततो दिनान्तरे दधिविक्रयणार्थं मथुरां व्रजन्तीनां भारं गृहीतुमग्रतः
तत्र कृष्ण उपससार-

राधानुरोधवसतो निजलीलया च
स्कन्धे विधाय दधिभारमपारमायः ।
कौतूहलेन कपटेन च मन्दमन्दं
कृष्णः कलिन्दतनयातटमाजगाम ॥ १ ॥

राधा निखिलभारिणं पश्चादुत्तीर्णं कृष्णमालोक्य जगाद-
आदाय भारमखिलं किल राजधानी
मेणीदृशः सरभसं सरसाः प्रयातुः ।
गत्वा च ताः प्रथमतो यदुनाथ तत्र
तक्रादिविक्रयणमङ्गलमारभन्ति ॥ २ ॥

प्रसन्नता के साथ अपने अपने गृह के लिये गईं ॥ -८॥

उसके पश्चात् एक दिवस व्रजवालाएँ दधि बेचने के लिये
मथुरा जा रही थी। श्रीकृष्ण उन के भार ग्रहण के लिये आगे
उपस्थित हुए। आप श्रीराधिका के अनुरोध वश तथा अपनी लीला
से कन्धे में दधि भार रख कर कौतुक के वश कपट करते हुए मन्द
मन्द गमन के द्वारा जमुना तट पर पहुँचे। क्योंकि वे अपारमाया
वाले थे अर्थात् उनकी लीला का कोई पार नहीं था ॥ १ ॥

श्रीराधिका समस्त भार धारणकारी श्रीकृष्ण को पीछे से आते
हुए देख कर कहने लगी-देखिये, व्रजयुवतियाँ भार सब लेनी हुईं
राजधानी में वेग से पहुँच गयी हैं। हे यदुनाथ ! वे सब मथुरा में
पहुँच कर दही-दूध-तक्रादि बेचने का प्रारम्भ कर चुकीं ॥ २ ॥

(११)

ततः किं विलम्बसेऽपरञ्च-

क्रीते जनेन सुलभे नवनीत-तक्रे

क्रेता पुनः सुलभदुर्लभ एव भावि ।

तद्गच्छ वत्सलतया मथुरानगर्या

तक्रादिविक्रयणमाशु यथाभ्युपैमि ॥३॥

कृष्णः क्षणं विश्राम्य-

पादद्वन्द्वं न चलाति चलापाङ्गि मे स्कन्धयुग्मं

भूयो भूयः स्वदति महती वेदनामभ्युपैति ।

शुष्यत्युच्चैस्तराणिकिरणश्रेणिभिस्तन्वि कण्ठं

तद्विश्राम्यं रचय चपले मञ्जुकुञ्जोदरेऽस्मिन् ॥ ४ ॥

राधा कृष्णं प्रति कियद्दूरं गच्छ कृष्णः कानिचित् पदानि गत्वा-

सीदामि सुन्दरि पयो दधिभारखिन्न

स्त्वञ्चापि पीवरपयोधरभारखिन्ना ।

तुम क्यों विलम्ब कर रहे हो । नवनीत-तक्रादि बिक्रि जाने पर अर्थात् दही-दूध बाजार से उठ जाने पर फिर लेने वाला कोई नहीं रहेगा । अतः हमारी वस्तु का ग्राहक नहीं मिलेगा । किम्बा अल्प दाम में वे सब वस्तु बिक्रि सकती हैं । इसलिये तुम कृपया मथुरा के लिये शीघ्र चलो जिस से कि हम पहले ही बेच सकेंगी ॥३॥

श्रीकृष्ण कुछ समय विश्राम कर कहने लगे । हे चञ्चल अपाङ्गवाली ! क्या करूँ मेरे दोनों चरण नहीं चल रहे हैं । दोनों कंधे महान वेदना को प्राप्त कर रहे हैं । हे सुकुमारि ! रविकिरणों से कण्ठ अत्यन्त सूखता जा रहा है । अतः हे चञ्चले ! इस मनोहर व्रजनिकुञ्ज में क्षण काल विश्राम कीजिये ॥ ४ ॥

श्रीराधा श्रीकृष्ण के लिये "कुछ दूर चलो" ऐसा कहने लगीं । श्रीकृष्ण कुछ दूर चल कर अर्थात् दस-बीस कदम बढ़ कर कहने लगे । हे सुन्दरि ! मैं कष्ट पा रहा हूँ । दूध-दही के भार से श्रान्त

(१२)

तन्मन्दमारुतसुखे क्षणमत्र कुञ्जे
विश्राममात्रजतु वार्जदलायताक्षि ! ॥ ५ ॥

राधा सरोषमिव-

यत्नात् कथञ्चन कियन्ति पदान् गत्वा
स्कन्दे जनार्दन परिश्रममातनोष ।
जाने पुनः पुनरहं बहुधा तथापि
त्वां भारिणं कपटचारिणमादधामि ॥ ६ ॥

कृष्णो नाहं कपटी किन्तु-

भारं नितम्बकुचयोरनिशं वहन्ती
न श्राम्यसि त्वमवसे कमलायताक्षि !
तेनात्र कर्मणि मया विहितः प्रयासः
को वेद दुग्धदधिभारभरो गरीयान् ॥ ७ ॥

राधा यद्येवं तदा-

हो रहा हूँ । तुम भी स्थूल पयोधर के भार से परिश्रान्ता हो रही हो । अतः हे कमलदल की भाँति विस्तार नेत्र वाली ! मन्द मन्द पवन से सुखमय इस कुञ्ज में क्षणकाल मात्र विश्राम कीजिये ॥ ५ ॥

श्रीराधिका कुंछ रिसाती हुई किसी प्रकार कुछ कदम बढ़ कर कहने लगी । हे जनार्दन ! तुम्हारे कन्धे श्रान्त हो गये हैं । तुम भी परिश्रान्त हो रहे हो । मैं तुमको बार बार पहिचानती हूँ । तौ भी जान समुक्त कर कपटी तुम को इस कार्य में नियुक्त किया हूँ ॥ ६ ॥

श्रीकृष्ण कहने लगे । हे कमल की भाँति चौड़े नेत्रवालि ! मैं कपटी नहीं हूँ परन्तु तुम नितम्ब-कुचों के निरन्तर वहन करने पर भी नहीं श्रान्ता हो रही हो । जिस से इस महान् कार्य में नियुक्त कर रही हो । मैं नहीं जानता था कि दूध-दही का इस प्रकार भार होता है ॥ ७ ॥

(१३)

भारं जहीहि यदुनन्दन मन्दमन्द
 मागच्छ गच्छ परिरक्षितुमत्र बत्सान् ।
 अन्यं धुरीणमिह धुर्वहनप्रवीणं
 गृह्णामि येन सहसा मथुरां व्रजामि ॥ ८ ॥

कृष्णो विहस्य युक्तमेव—

अन्यो धुरीणो त्रियतां प्रवीणो त्वया न विश्राम्यति यः पदव्याम् ।
 मृगाक्षि विश्राम्य तले तरूणां शक्नोमि गन्तुं मथुरानगर्याम् ॥ ९ ॥
 ततो राधा सरोपसाक्षेपमात्मानं प्रीत—

दोषो ममैव नितरां यदितो धुरीण
 मन्यं विहाय यदुनाथ भवान् गृहीतः ।
 विश्राम्यतामिह तु नाथ तले तरूणां
 वेला गता हि दार्धविक्रयणक्रियायाः ॥ १० ॥

श्रीराधा कहने लगी, हे यदुनन्दन ! यदि ऐसा ही है तो भार छोड़ दीजिये । क्योंकि इस प्रकार मन्द गमन से मेरा अनिष्ट होगा । तुम तो जाओ, अपने बछड़ाओं को चराओ । मैं तो भार-बहन में प्रवीण अन्य किसी भारवाही को इस कार्य में लगाती हूँ । जिस से शीघ्र मथुरा जा सकती हूँ ॥ ८ ॥

श्रीकृष्ण हँसते हुए कहने लगे । तुम उचित कहती हो । अन्य किसी प्रवीण भारवाही को निश्चुक्त कीजिये जो कि मार्ग में विश्राम नहीं कर सकता है । हे मृगनयनि ! वृत्तों के नीचे कुछ समय विश्राम करता हूँ । जिस से मैं मथुरानगरी को सुख में गमन कर सकता हूँ ॥ ९ ॥

अजन्तर श्रीराधा रिसाती हुई निज के लिये कहने लगी । इस विषय में मेरा तो दोष है । क्योंकि इस कार्य में किसी प्रवीण को न लगाय कर आप को लगाया है । हे नाथ ! विश्राम कीजिये । इन वृत्तों के नीचे सुख में बैठिये । क्योंकि दही बेचने का समय बीत गया है ॥ १० ॥

भगवान् एवं श्रुत्वा भारं निक्षिप्य क्षणं विराम । तत्र राधा
विभ्रान्तोऽसि भारमादाय ब्रज कृष्णस्तु महान्तं भारं उद्वोदुमन्तमः—

तस्मात् कियन्ति नवनीत पयो दधानि

भुक्तानि चेदिह भवन्ति मया त्वयापि ।

भारो लघुस्तदनुनीतं सुभक्षणेन

पारं कलिन्दुहितुः कमलायताक्षि ॥११॥

राधा विचिन्त्य साक्षेपमात्मानं प्रति—

इह हि बहुल दीना गोकुले धूप्रवीणाः

कति कति च युवानः सन्ति ते ते धुरीणाः ।

तदपि कपटचारी गोपनारी-विहारी

कथमिह वनमाली हन्त भारं गृहीतः ॥१२॥

ततः कृष्णं प्रति यथा रोचते तथा क्रियतां येन भारश्चलति ।
कृष्णस्तं गृहीत्वा दीर्घमूष्णं निश्चस्य पुनर्भूमौ चिक्षेप । तत्र क्षणं

श्रीकृष्ण ऐसा सुन कर भार फेंक कर क्षण काल विभ्राम करने लगे । श्रीराधा कहने लगी—अब तो विभ्राम कर लिया है, भार लेकर चलिये । श्रीकृष्ण ने कहा—यह भार महान है । मेरी इस के वहन में शक्ति नहीं है । अतः कुछ नवनीत-दूध-दही का भोजन करने पर भार लघु हो जाएगा । आइये कुछ तो इन वस्तुओं का भोजन कीजिये । पश्चात् सुख से यमुना पार हो कर मथुरा नगरी के लिये चलेंगे ॥ ११ ॥

श्रीराधा चिन्ता करती हुई अपने के लिये कहने लगीं । इस गोकुल में भारवहन में प्रवीण, गरीब, कितने युवक मौजूद हैं । तौ भी कपट आचरणकारी, गोप नारियों के विहारी, श्रीवनमाली ने भार का ग्रहण किया है ॥ १२ ॥

अनन्तर श्रीकृष्ण के लिये कहने लगीं । जैसी आपकी रुची है ऐसा कीजिये । जिस से भार जा सकता है । श्रीकृष्ण पुनः भार

(१५)

विश्राम्य स्वयमेव गृह्यतां नाहं उद्धोदुं क्षमः । राधा विचिन्त्य
 केयमनर्थप्रवृत्तिः । राधा-पणमधिकं प्रयच्छामि यत्नात् गृह्यतां
 कृष्णस्तु स्मिन्वा नैवं । पुनर्विचिन्त्य हे सुन्दरि यद्येवमनुवर्त्तते
 तदाकर्ण्यतां ।

भारो महानेव पुन यदि स्यात् पणो मनोभूरिह तेऽभिलाषः ।
 तदा धुरीणोऽस्मि न वा प्रवीण मन्यं धुरीणं च पणो गृहाण ॥१३॥
 राधा सलज्जास्मितं—कोऽयं व्यवहारो वेतन प्राहिणामियान-
 भिलाषः । कृष्णः सुन्दरि ! महा गरीयान् भारस्तदन्यं गृहाण इति
 भारं तत्र निक्षिप्य सरोषमिव चलितः । राधा आगच्छ—

क्षिप्रं भविष्यति मनस्तव पूर्णकामं

को कंधे पर लेकर ऊँचे गरम निश्वास छोड़ कर पृथ्वी में फेंक देने
 लगे । कुछ समय आप विश्राम करके श्रीराधिका को कहने लगे—
 आप स्वयं लीजिये । मेरी भारवहन में शक्ति नहीं है । श्रीराधा
 चिन्ता करने लगीं । हाय ! क्या अनर्थ हुआ है । पुनः आप ने
 श्रीकृष्ण से कहा—हे कृष्ण ! मैं तुमको अधिक से अधिक पण
 देऊँगी । तुम यत्न से भार उठाओ । श्रीकृष्ण हँसते हुए कहने
 लगे ऐसा नहीं होगा । फिर विचार करते हुए कहने लगे—हे सुन्दरि !
 यदि ऐसा ही चाहती हो तो सुनिये । यह महान् से महान्
 भार है । मेरी इस का वहन में शक्ति नहीं है । परन्तु तुम अधिक
 पण देने की इच्छा करती हो । वह पण तो कन्दर्प क्रीड़ा हो सकती
 है । इस विषय में मैं बहुत प्रवीण हूँ । आप भी इस कार्प्य में
 अन्य किसी को नियुक्त मत कीजिये ॥ १३ ॥

श्रीराधा लज्जा करती हुई गेप के साथ कहने लगीं—यह
 व्यवहार तुम्हारा बहुत अनुचित है । अहो ! वेतनधारियों का इस
 प्रकार अभिलाष होता है । श्रीकृष्ण कहने लगे—“हे सुन्दरि ! यह
 भार महान है । यदि इसको जानने में तुम असमर्था हो, तो अन्य

(१६)

भारं भ्रमादपि न वा सुतरां चरामि ।

भारं गृहाण यदुनन्दन मन्दमन्दं

त्वं गच्छ बत्सलतया मथुरानगर्याम् ॥ १४ ॥

कृष्णो विहस्य तर्हि गृहीत पण एव गच्छामि । राधा क्षणं
ब्रीडान्नमुखीभूय निरुत्तरानुमतिदत्तवती ततः स्वां समीपमासाद्य-
क्षणं सुरतरभसमानसो मुरारि र्जनरहिताः पारतो दंशो निरूप्य ।

समुदितपुलकावलिः प्रचण्डे चटुभृशं सहसा चुचुम्ब चण्डे ॥ १५ ॥

ततो विविधमन्मथक्रीडां तत्र निकुञ्जे समनुभूय तत्क्रादि-
विक्रयार्थं राधया सह मथुरां गतौ । ततः स्तत्र राधास्थाने भारं निक्षि-
प्य शीघ्रं जरातुरां तरणिमादाय पारार्थं स्थितः ॥ १६ ॥

इति गोपालभट्टविरचिते भारखण्ड नाम द्वितीयखण्डं समाप्तम् ॥

किसी को लाइये" । ऐसा कहते हुए आप वहाँ भार फेंक कर रोष
के साथ चलने लगे ।

श्रीराधिका कहने लगी । आओ आओ, शीघ्र ही तुम्हारी मनः-
कामना पूर्ण होगी । मैं भ्रम से भी तुम्हें फिर इस कार्य में नहीं
लगाऊँगी । हे यदुनन्दन ! अब तो भार लीजिये । मुझ पर कृपा
कीजिये । शीघ्र मथुरा के लिये चलिये ॥ १४ ॥

श्रीकृष्ण हँसते हुए कहने लगे यदि तुम मेरे पण को स्वीकार
करती हो तो पहले पण का दान दीजिये । मैं तो पण लेकर
जाऊँगा । श्रीराधा क्षण काल लज्जा से नतमुखी हो कर निरुत्तर
अनुमति होने लगी । श्रीमुरारी राधिका के निकट आकर चार और
जन शून्य देख हठात् उन के गण्डों में चुम्बन देने लगे । उनका
मनः सुरत वेग से परिप्लुत हो गया था तथा वे पुलकावली से
परिवेष्टित हो गये थे ॥ १५ ॥

अमन्तर उस निकुञ्ज में विविध काम क्रीडा का आस्वादन
करते हुए तत्क्रादि विक्रयार्थ राधिका के साथ मथुरा के लिये चल

(१७)

विक्रीय तत्कमचिरेण निवर्त्तमानां
 राधां सुधाकरमुखीमभिवीक्ष्य दूरे ।
 कूले निधाय तरणी सहसा मुरारि
 धूलीप्रह तरणिजापुलिने तनोति ॥ १ ॥

राधा सुदूरमागत्य कृष्णं प्रति—

क्षणं धूलिक्रीडां परिहर समारूढ तरणी
 मुरारे चण्डांशुश्चरमगिरिचूडामणिरभूत् ।
 पुरः प्राचीद्वारे बहुल जनसञ्चारोभविता
 स्फुरद्विशुन्मानं किमु खल कुलं नाकलयसि ॥ २ ॥

कृष्णः स्मित्वा राधां प्रति—

दिये । अनन्तर वहाँ श्रीराधिका के निकट भार उतार कर यमुना के
 तट में आये तथा वहाँ एक जीर्ण नौका लेकर पार करने के लिये
 नाविक रूप से विराजमान हुए ॥ १६ ॥

—०—

श्रीराधिका अति शीघ्र तत्कादि विक्रय कर गोकुल के लिये
 चलने लगी । श्रीमुरारि चन्द्रमुखी उन को दूर से देख कर तट पर
 उस जीर्ण नौका को रख जमुना पुलिन में धूली क्रीडा करने
 लगे ॥ १ ॥

श्रीराधिका बहुत दूर आकर कृष्ण के लिये कहने लगी । हे
 मुरारि ! अब तो कुछ समय धूला खेल छोड़ दीजिये अपनी नौका
 का सम्भालन कीजिये । देखिये । मध्याह्ने वाली है । सूर्य-
 नारायण अस्ताचल पर्वत के शिखर में आ गये हैं । गोकुलनगर
 की पूर्वदिशा के द्वार में अनेक लोगों का आगमन हो रहा है ।
 इधर बिजली चमक रही है । खल गण इधर उधर घूम रहे हैं । आप
 एक बार ध्यान तो दीजिये ॥ २ ॥

(१८)

सरिदतिदुस्तरपारा गर्जति धाराधरः सिरसि ।

अस्तं गत इह तरणिवहति प्रचण्डवातावलिः ॥ ३ ॥

राधा कृष्णं प्रति-अतएव पारकर्मणि प्रयत्नः क्रियतां आर-
तस्तु दैव एव गृहिणो गृहोदरे प्रातरेव भवनं प्रयास्यसि । राधा मैत
पथ पारोदबस्यं विधाय पश्य-

चुम्बति रवि र्व्वरुणाशां श्लिष्यति च खलं तडिदेषा ।

आतरं नय पयोधर हारं कर्णधार सहसा कुरु पारम् ॥४॥

कृष्णः-प्रसरति मञ्ज्मापवनश्चुम्बति चरमाचलं तपनः ।

पश्य विधीदति तिमिरे रजनीर्वह्नीजरातुरा तरणिः ॥ ५ ॥

अथ तावदेव गृही गृहे तिष्ठ प्रात र्यास्यसि ।

राधा-किम्वातरं न विचरामि कदा मुरारे

श्रीकृष्ण हँसते हुए राधिका के प्रति कहने लगे । नदी अत्यन्त
गम्भीर है । इस समय पार करना असम्भव है । देखिये मेघ
मस्तक के ऊपर गर्जन कर रहा है । सूर्य अस्त प्राय हो रहा है ।
प्रचण्ड वेग से वायु बहता है ॥ ३ ॥

श्रीराधा कृष्ण के लिये कहने लगी । इस लिये ही तौ मैं तुमको
बुलाती हूँ । पार कराने में यत्न कीजिये । श्रीकृष्ण ने कहा-आज
किसी गृहस्थ के वहाँ रहिये । प्रातः काल में अपने घर चली जाना ।
श्रीराधा कहने लगी-ऐसा नहीं होगा । देखिये सूर्यनारायण पश्चिम
दिशा का चुम्बन कर रहे हैं । विजली मन्द चमक रही है । हे
नाविक ! गले के बहुमूल्य हार को परिमूल्य रूप से लेकर शीघ्र पार
कर दीजिये ॥ ४ ॥

श्रीकृष्ण कहने लगे-मञ्ज्मावायु वेग से बह रहा है । सूर्य
अस्तावल को जा रहा है । देखिये रात्रि आ गई है । मेरी नौका
जीर्ण शीर्ण हो गई है । आज किसी गृहस्थ के वहाँ ठहर जाइये ।
प्रातः काल होने पर चली जाना ॥ ५ ॥

(१६)

रे कर्णधार यदिदं परुषं ब्रवीषि ।

एकां निशामपि परां कुलस्वामिनीना

मन्याभ्रमस्थितिरियं परिवाद एव ॥ ६ ॥

कृष्णः स्मित्वा भूषणं वर्त्तते अद्यैवं अवश्यं पारो विधेयस्तदेव-
मेवं विधीयताम्—राधे किन्वेतत्पश्य—

कालिन्दीयं बहुललहरी लङ्कित व्योमदेशा

वेशाटोपं चकित हरिणीलोचने मुञ्च मुञ्च ।

एतैरेव स्तनगिरि गुरु श्रोणिभारैर्न जाने

जीर्णात्यन्तं मम तरिरियं कामवस्थामुपैति ॥ ७ ॥

राधा कृष्णं प्रति—

गव्यभार कुचभारकञ्चुकै नौर्यदि भवेद्भारकुलं तत्क्षणम् ।

तदनु वारिणि स्वयं क्षेपणीयमिदमेव नान्यथा ॥ ८ ॥

श्रीराधा कहने लगी—हे मुरारि ! क्या हम पार कराने का मूल्य
नहीं देंगी । क्या हमारा विश्वास नहीं करते हो । हे नाविक ! इस
प्रकार कठोर वचन उचित नहीं है । कुल स्वामी परायण रमणियों
की एक रात्रि ही अन्य गृह में स्थिति निन्दनीया है ॥ ६ ॥

श्रीकृष्ण हँसते हुए कहने लगे । गले का भूषण यदि मौजूद है
तब मैं अवश्य पार कर देऊँगा । तुम ऐसा करो । देखिये राधे !
यह कालिन्दी अत्यधिक तरङ्ग मालाओं से मानो आकाश का स्पर्श
कर रही है । हे चकित हरिणीनयने ! वेशाढम्बर को छोड़ दीजिये ।
तुम्हारे इन स्तन पर्वत तथा स्थूल श्रोणि भार से मेरी अत्यधिक
यह तराखी न जाने किस अवस्था प्राप्त होगी ॥ ७ ॥

श्रीराधा कृष्ण के लिये कहने लगी । हे श्रीकृष्ण ! यदि गव्य-
भार, कुचों के भार तथा काँचुलियों से नौका भारी हो जाती है
तब मैं स्वयं गव्य-काँचोलीयों को जल में फेंक देऊँगी । इस
विषय में अन्यथा नहीं कहूँगी ॥ ८ ॥

कृष्णो भवतु तावत् इति नौकामधिरुह्य क्रियदूरं गत्वा तरणि
तरलवृद्धे । राधा समयं कृष्णं प्रति—

तर तरणिसुतायामाप्यमेतद्गभीरं

तरलतरतरङ्गालिङ्गितव्योममार्गम् ।

तरलतरणिमारुह्याशुगैर्मज्जितैषा

तव पुनरति नष्टं जीवनं यौवनञ्च ॥६॥

कृष्णः स्मित्वा नापराधो मम भवत्येव—

मुग्धे पश्य गत्या स्तन घटनात् संघटणात् पवनः ।

तरणि तरणिजागर्त्ते शशिमुखि शश्वन्नयति ॥१०॥

राधा सलज्जा कृष्णं प्रति—

श्रीकृष्ण कहने लगे—ऐसा ही होगा । नौका में आइये । मैं नौका चलाता हूँ । ऐसा कह कर आप श्रीराधिका को चढ़ा कर कुछ दूर नौका को चलाने लगे । पश्चात् नौका को इस प्रकार हिलाने लगे कि मानो वह डूबती जा रही है । श्रीराधिका भयभीत होकर श्रीकृष्ण के लिये कहने लगीं । शीघ्र जमुना जी का पार करो । जमुना जी अत्यन्त गम्भीर हो रही है । अति चञ्चल तरङ्गों से आकाश मानो आलिङ्गित हो रहा है । नाव तो अत्यधिक चलायमान हो रही है । यदि यह डूब जायेगी तौ महान् दुर्दशा होगी । उस से तुम्हारा प्राण और मेरा भी प्राण जाता रहेगा । हाय यदि ऐसा होगा तो हम यौवन धनको खो जावेंगी ॥ ६ ॥

श्रीकृष्ण हँस कर कहने लगे—इस में मेरा कोई अपराध नहीं है । यह दोष आप का है । मुग्धे देखिये—हे शशिमुख ! आप के स्तन—कञ्चुलिक का स्पर्श पाकर पवन बलवान हो गया है । वह मेरी जीर्ण नाव को यमुनागर्भ में करने के लिये अर्थात् डुबाने के लिये निरन्तर चेष्टा कर रहा है ॥ १० ॥

(२१)

केलिपातमपहाय सहासं किं तनोपि परिहासविलासम् ।
घूर्णते तरिरियं जलपूर्णा कर्णधार किमयं व्यवहारः ॥ ११ ॥

अपि च—

पानीयसेचनविधौ मम नैव पाणी
विश्राम्यतस्तदपि ते परिहासवाणी ।
जीवामि चेत् पुनरहं न तदा कदापि
कृष्ण त्वदीय तरणौ चरणौ ददामि ॥ १२ ॥

कृष्णः स्मित्वा—

पूर्व मयोक्तमखिलं भवती तरि म्मे
तन्वी कथञ्चन जलद्वितयं दधाति ।
तत्रापि मातिविषमानिलमण्डनीयं
किन्त्वत्र सुन्दरि करिष्यति कर्णधारः ॥ १३ ॥

श्रीराधा लज्जिता हो कर कहने लगीं । हे श्रीकृष्ण इस समय हास्य-परिहास करना उचित नहीं है । परिहास क्रीड़ा को छोड़ दीजिये । यह तरणि जल से भर कर घूमने लगी है । हे नाविक ! इस समय ऐसा व्यवहार अनुचित है ॥ ११ ॥

और भी देखिये—मेरे हाथ पानी फेंकने में विश्राम नहीं कर रहे हैं । अर्थात् पानी फेंकते फेंकते श्रान्त हो गये हैं । तौ भी तुम उस प्रकार परिहास वचन नहीं छोड़ते हो । यदि मैं इस विपत्ति से जी जाऊँगी तब फिर कभी तुम्हारे नाव में पाँव नहीं धरूँगी ॥ १२ ॥

श्रीकृष्ण हँसते हुए कहने लगे । हे रमणि ! मैंने पहले से ही आप से कहा था । यह मेरी नाव जीर्ण शीर्ण है । नहीं जाने किस समय क्या हो जायेगा ? और भी इस समय महान वेग से पवन बह रहा है । हे सुन्दरि ! इस विषय में नाविक क्या कर सकता है ॥ १३ ॥

राधा— एतावती तव तरिं जरतीं मुरारे
 जानामि वित्ततनुकं पदमर्पयामि ।
 एतत्तवाभिलषितं परिपूरयामि
 रे कर्णधार कुरु पारमपारकीर्त्ते ॥ १४ ॥

कृष्णः स्मित्वा सोऽहं यत्नादेव बाहयामि सुन्दरि छिद्राण्याच्छादय
 हृदयाञ्चलेन । राधा तथा कृत्वा कृष्णं प्रति—

गुरुच्छिद्रच्छेदे कुचयुगनिचोलक्षितिरभूत्
 तथाप्यन्यच्छिद्रान्निविडतरमातिष्ठति पयः ।

इदानीं प्राणान् वा जघनवसनं वा मम हरे
 विहत्तुं गच्छा ते वत इति बाहुभ्यां तरः ॥ १५ ॥

कृष्णः स्मित्वा जीर्णं तरिरिति पूर्वमुक्तं इदानीं कः प्रतिकारो
 दैवमत्र शरणं । राधा स्वगतं—

इह तरणिसुतायाः कूलमत्यन्तदूरं
 विधत्तितरुमूलो मारुतो नानुकूलः ।

श्रीराधा कहने लगीं । हे मुरारि ! तुम्हारी नाव इस प्रकार है
 मैं जानती हूँ । परन्तु क्या करूँगी । मैं धन-देह देने को प्रस्तुत हूँ ।
 हे नाविक ! हे अपारकीर्त्ति वाले ! पार कीजिये । आप की अभि-
 लाषा को पूरण करूँगी ॥ १४ ॥

श्रीकृष्ण हँस कर कहने लगे—हे सुन्दरि ! अब मैं यत्न के
 साथ चलाता हूँ । आप हृदयाञ्चल से छिद्रों को ढाकिये । श्रीराधा
 ऐसा ही कर कहने लगीं—इसमें बड़े बड़े छेद हैं । उनको रोकने में
 मेरे स्तन वसन की क्षति हो गई । एक छिद्र को रोकती हूँ परन्तु
 अन्य छिद्रों से जल भर जाता है । हे हरे ! अब क्या इच्छा है ?
 स्तन वसन तो बिगाड़ गये हैं । केवल प्राण तथा जंघा के वसन
 रह गये हैं । उनको बिगाड़ना बाकी रहा है ॥ १५ ॥

श्रीकृष्ण हँसते हुए कहने लगे—यह मेरी नाव जीर्ण है मैं तो

(२३)

तरिरियमतिजीर्णा चञ्चलः कर्णधारः
 शिवशिव मम कोऽयं कर्मणो दुर्विपाकः ॥१६॥
 अपिच-कीर्णा दिशो जलधरैस्तरणीः सुजीर्णा
 दामोदरोऽति तरलो नवकर्णधारः ।
 एषा कलिन्ददुहितालहरी गभीरा
 हा हा तथापि तरणौ पदमर्पयामि ॥ १७ ॥
 तथापि-तरिरियमति जीर्णा कर्णधारोऽपि गोपः
 सरिदति सुगभीरा भानुमानस्तमेति ।
 वयमपि च कुलीना बन्धुहीनाः नवीनाः
 शिव शिव कथमस्याः पारमासादयामः ॥ १८ ॥

पुनः प्रकाशं-वाचा तवैव यदुनन्दन गव्यभारो
 हारोऽपि वारिणि मया सहसा विकीर्णः ।

पहले से कहि आया हूँ । अब क्या प्रतीकार होना चाहिये । इस विषय में दैव ही शरण है । श्रीराधा अपने मन में कहने लगी- यमुना का किनारा अब तो बहुत दूर है । वृक्ष सब जड़ से गिरते जा रहे हैं । प्रतिकूल पवन भी वेग से बह रहा है । नाव भी अत्यन्त जीर्ण शीर्ण है । यह नाविक अति चञ्चल है । हाय हाय यह मेरे कर्म की क्या मन्द दशा आगई ॥ १६ ॥

और भी जलधर मेघों से चारों ओर व्याप्त हो रहा है । तरणि अति जीर्ण है । दामोदर अत्यन्त चञ्चल हैं । वे आज नवीन कर्णधार अर्थात् नाविक बने हुए हैं । यह कलिन्दनन्दिनी लहरियों से गहरी हो रही है । हाय इतने पर भी मैं नौका में बैठ गई हूँ ॥ १७ ॥

यह तरि (नाव) अत्यधिक जीर्ण है । इस का नाविक गोपाल है । नदी भी अत्यन्त गहीड़ा है । सूर्यनारायण अस्त हो गये हैं । हम सब भी कुलीन, सहायशून्य, नवीन कुलरमणियाँ हैं । हाय ! हम किस प्रकार यमुना के पार होंगी ॥ १८ ॥

(२४)

दूरीकृतञ्च कुचयो रपितन दुकूलं
कूलं कलिन्द दुहितु न तथाप्यदूरम् ॥१६॥

पुनः स्वगतं-पयः पूर्णा पूर्वं तदनुवनधूर्णा च पवनै
गम्भीरे कालिन्दीपयमि तरिरेषा प्रविशति ।
परं हित्वा वित्रं परमतरलो नन्दतनयो
नटन् भूयो भूयस्तदपि करतालं घटयति ॥ २० ॥

परञ्च—प्रयत्नादावर्त्ते नयति तरिमत्यन्तजरती
मवित्रं तत्रैव त्यजति तरलो नन्दतनयः ।

परं भानो विम्बं चरमगिरिसूढामधिगतं
न जाने राधायाः शिव शिव विधिः किं घटयति ॥२१॥

पुनर्निश्वस्य-पूरे वन्धुजनो मनागपि दयाशीलो न पीताम्बरः
स्निग्धैरस्त्रलम्बिभिर्जलधरैः पीता समस्तादिशः ।

आप फिर प्रकाश-रूप से कहने लगीं हे यदुनन्दन ! आप के
वचनों से मैंने गव्यादि तथा अमूल्य हार को भी हठात् जल में
फेंक दिया । स्तनों का वसन भी दूर कर दिया । इतने पर भी नाव
डूबती जा रही है । अभी भी यमुनातट दूर में है ॥ १६ ॥

श्रीराधिका फिर मन में कहने लगीं—यह नाव जल से भर
गई है तथा पवनों से घूम भी रहा है । वह गम्भीर जमुना के जल में
डूब जा रहा है । गव्यादि धन-राशि भी हाथ से निकल गई । इनमें
पर भी नन्दनन्दन चञ्चलता को नहीं छोड़ रहे हैं । वे बार बार
नाचते कूदते हुए करतालि उड़ा रहे हैं ॥ २० ॥

चञ्चल श्रीनन्दनन्दन इस अत्यन्त जीर्णातरी (नाव) को
यत्न के साथ जल के आवर्त्ता में ले जा रहे हैं तथा वहाँ पतवार को
छोड़ देते हैं । हाथ बड़ी भारी विपत्ति है । सूर्यविम्ब चरमगिरि
शिखर में अर्थात् अस्ताचल के लिये जा रहा है । नहीं जानती हैं
आज अभागिनी राधा के भाग्य में विधाता क्या घटाता है ॥२१॥

(२५)

एषा जीर्णतरा तरिस्तरणिजा पूर्णा तरङ्गोत्करै
नो जानेऽद्य ममागमेऽपि भविता हाहा गतिः कीदृशी ॥ २२

अपिच-भूयो भूयो वहति मरुतां मण्डली चण्डवेगा
जीर्णामेतां तरणिमभिता निर्भरं घूर्णयन्ति ।
हारं पुण्यं अपि विनिहितं नन्दसूनो मयैतत्
क्षिप्रं क्षिप्रं सुभगभविता क्षिप्यतां केलिपातः ॥ २३ ॥

कृष्णः स्मित्वा एषोऽहं वाहयामि इत्यभिवाच्य-

न्यधितमरुणपुत्री पारमैत्री विधेहि
प्रतिमुहुरिति चाटु व्याकुलैस्तद्वचोभिः ।
जलनिविडनिपात क्षणमारादवित्रं
तूर्णं तरणिमित्रं खण्डखण्डीवभूव ॥ २४ ॥

श्रीराधा फिर दीर्घ निश्वास परित्याग कर कहने लगीं । हाय
सामने बन्धुगण मौजूद हैं । पीताम्बर अल्पमात्र में भी दयाशील
नहीं हो रहे हैं । तिविड़ मेघों से समस्त दिशा अन्धकार हो रही
है । यह जीर्णाधिक नौका यमुना की तरङ्गावली के बीच अर्थात्
यमुना गर्भ में पड़ा हुआ है । नहीं जानती हूँ कि आज मेरे आग-
मन में क्या दशा होगी ॥ २२ ॥

और भी वायुमण्डली अत्यन्त वेग से बार बार बह रही है ।
नाविक इस जीर्ण नौका को जल गर्भ में बार बार घुमाता रहता है ।
हे नन्दनन्दन ! मैंने भी पवित्र बहुमूल्य हार को जल में फेंका है ।
अतः आप हास्य-परिहास का त्याग कीजिये ॥ २३ ॥

श्रीकृष्ण हँसते हुए कहने लगे—अच्छा मैं नौका चलाता हूँ ।
“यमुना के पर पार में नौका को शीघ्र ले चलो” इस प्रकार प्रति
मुहूर्त बार बार व्याकुलता से परिपूर्ण राधिका के वचनों से श्रीकृष्ण
व्यग्र हृदय होकर इस प्रकार नाव को चलाने लगे कि—वह नाव
तथा उस की चोपणी (पतवार) टूक टूक हो गये ॥ २४ ॥

राधा क्रुद्धा ससम्भ्रमं कृष्णमाह । अपराधिनीं किन्तु विधि रिति
जगाद—

गभीरे कालिन्दीपयसि तरणौ मग्नवपुषि
स्फुरत्तुङ्गोत्तुङ्गैः स्थमपि कमु जिविष्ठति हरे ।
अतः सूर्यं पूर्णं मन विधुमुखीं नागर कर—
द्वयं कृत्वावित्रं भव तरणिपुत्रीं भगवतीम् ॥ २५ ॥

कृष्णः स्मृत्वा—यदि भवति निमग्ना नौरियं वारिपूर्णा
शृणु सखि तदुपायं निर्गतोपायमुच्चैः ।
भवदुरसिजकुम्भद्वन्द्वमालम्ब्य यत्नात्
तरुणि तरणिपुत्रीं सन्तरिष्यामि सद्यः ॥ २६ ॥

राधा अस्ते गच्छति सूर्यस्तरणिसुतायामियच्च तरणिः जीवनयौवन-
मुभयोस्तदपि तवायं परिहारः ॥

कृष्णः स्मृत्वा सुन्दरि प्रतीकारश्चिन्त्यतां । राधा—प्रतीकारो भवानेव
नाहं । कृष्णः नाहं कपटी किन्तु यौवनं पश्यं ।

राधा स्मृत्वा—कुरु पारं यमुनाया वारं वेपति ममाङ्गमिदम् ।

आस्ते यौवन पश्यं नाथ तवास्ते यौवनं हस्ते ॥ २७ ॥

राधा क्रोधित हो कर कहने लगीं—अपराधिनी मेरे भाग्य में
विधाता ने आज क्या किया है । हे हरे ! देखिये । गम्भीर जमुना
जल में नाव डूबी जा रही है ! चेपणी भी टूक टूक हो गई है । हम
सब जल में मग्न हो गई हैं । हे नागर ! तुम अपने हाथों को
चेपणी बना कर भगवती यमुना का पार कीजिये ॥ २५ ॥

श्रीकृष्ण हँस कर कहने लगे—यदि यह नौका जल से भर
कर डूब गई है तो हे सखि ! इस में से आप निकलने का उपाय
सुनिये । आप के स्तन रूप कुम्भ दोनों का आश्रय कर यत्न से
यमुना में तहर कर पार में आ जाऊँगा ॥ २७ ॥

(२७)

कृष्णः स्मित्वा हृदयाश्रासमासाद्य मायापुलिनं दर्शयन्-
 तरुणि तरुणपुत्र्यामध्यमालम्बजातं
 पुलिनमतिमनोज्ञं पश्य पश्यन्तिकस्थम् ।
 अतिनिविडनिकुञ्जे मञ्जु पुञ्ज द्विरेफे
 तरलपवनचेष्टे भीति लेशो न चास्ति ॥ २८ ॥

राधा विलोक्य हर्षं सूचयन्ती अरे जीवनमागतं तत्तरे शीघ्रं
 बाहय । कृष्णः स्मित्वा-

अङ्गीकरोषि यदि सुन्दरि पञ्चवाण
 क्रीडास्वयम्बरविधिं विधिनोपपन्नम् ।

श्रीराधा ने कहा—सूर्य अस्त जा रहा है । यमुनागम में यह
 नौका पड़ी हुई है । जीवन-यौवन दोनों का महान् संकट है । इतने
 दुःख रहने पर भी तुम्हारा इस प्रकार का व्यवहार नहीं जाता है ।
 श्रीकृष्ण ने कहा—हे ! सुन्दरि इसके प्रतीकार की चिन्ता कीजिये ।
 श्रीराधिका ने कहा—प्रतीकार तो आप ही हैं । मैं नहीं हूँ । श्रीकृष्ण
 ने कहा—मैं कपटी नहीं हूँ । परन्तु यौवन का पण चाहिये । राधा
 हँसती हुई कहने लगी—यमुना को पार कीजिये । बार बार मेरा
 शरीर भय से काँप रहा है । यौवन पण करती हूँ । हे नाथ ! यह
 तो आपके हाथ में है ॥ २७ ॥

श्रीकृष्ण हँस कर हृदय को आश्रासित करते हुए लीला से एक
 पुलिन दिखा कर—हे प्रिये ! तरुणी तो यमुना में रह गई । निकट
 में इस मनोहर पुलिन को देखिये । यहाँ अति निविड निकुञ्ज
 विराजमान है । उसमें भ्रमर पुञ्ज मनोहर गुञ्जार कर रहा है । मन्द
 मन्द पवन वह रहा है । यहाँ किसी प्रकार भय नहीं है । न रात्रि का
 अवकाश है ॥ २८ ॥

श्रीराधा पुलिन को देख कर हँसती हुई अहो जीवन आ गया
 है । अतः शीघ्र ही नाव चलाइये । श्रीकृष्ण हँस कर कहने लगे—

एषोऽहमिन्दुवदने करकेलिपातं
 कृत्वा तदा तरणिजां तरसा तरामि ॥ २६ ॥
 श्रुत्वा तदीयवचनं क्षणान्नवक्त्रा
 राधा विचिन्त्य मनसा निजगाद कृष्णाम् ।
 पारं विधेहि सहसा तपनात्मजायाः
 कार्यं तवामिलपितं भविता तथैव ॥ ३० ॥

ततः-तस्याः निपीय वचनं सरसीरूहास्याः

पीयूषपूरमिव कर्णघटद्वयेन ।

पारं विधाय सहसा कुरु केलिपातं

स्मित्वा जगाम पुलिने ललितायताक्षिः ॥ ३१ ॥

ततः तत्र गत्वा सुन्दरि पश्य मनोज्ञमीयं स्थली ।

मन्वीपरागपटलीपटवासपूरै

रापूरयन्निविडमञ्जुलकाननानि ।

हे सुन्दरि ! यदि पञ्चबाण काम की क्रीड़ा का सभाविधान स्वीकार करती हो अर्थात् मुझ से कन्दर्प क्रीड़ा करना स्वीकार करती हो तो मैं अवहेला से अर्थात् बिना चेष्टा से यमुना के पार कर देऊँगा । हे चन्द्रवदनी ! ऐसा शुभ अवसर नहीं आवेगा । दैवयोग से ऐसा समय उपास्थित हुआ है ॥ २६ ॥

श्रीराधिका श्रीकृष्ण के इस प्रकार वचन को सुन कर क्षण काल नम्र वक्त्रा हो कर मन में कुछ विचार कर कहने लगी-हे श्रीहरि ! ऐसा ही होगा, तुम्हारा अभिलाष पूर्ण होगा । परन्तु शीघ्र यमुना का पार कर दीजिये । कमलमुखी श्रीराधिका के इस प्रकार वचनामृत का कर्ण रूप दोनों पात्र से पान करते हुए श्रीहरि ने उसी समय यमुना का पार कर दिया । श्रीराधिका के साथ मनोहर पुलिन में पहुँचे ॥ ३० । ३१ ॥

वहाँ जाकर राधिका के लिये कहने लगे-हे सुन्दरि ! इस मनो

चञ्चत् कलिन्दतनया जलविन्दुयुक्त-

मायाति चेन्दुमुखि चन्दनगन्धवाहः ॥ ३२ ॥

ततस्तस्याः कुचयोः स्पर्शमालोक्य-

मृदुलं निखिलशरीरं सुन्दरि विधिना निर्मितं यत्नात् ।

एतन्मनसिजशिल्पं यत्ते कठिनं पयोधरं द्वितयम् ॥ ३३ ॥

ततो रोमावलिरालोक्य विहस्य च-

अन्योन्यपीडामवलोक्य गाढां वक्षोजयोः सुन्दरि सीमवादे ।

मध्ये ददौ नूतनरोमराजिव्याजेन सेतुं किल मीनकेतुः ॥ ३४ ॥

पुनस्तननिर्व्वन्धं विलोक्य-

वारिप्रबन्धमिव चित्तमंतङ्गजस्य

गिरीशभीतस्य हतप्रभस्य ।

हर स्थल को देखिये । हे चन्द्रमुखी ! चन्दन गन्ध को बहाता हुआ मन्द मन्द पवन बह रहा है । यमुना के जल कणों से अत्यन्त शीतल भी हो रहा है । मिहीन पुष्पों के परागों से निविड़ मनोहर कुञ्ज कानन को सुवासित करता हुआ चारों ओर में बहता रहता है ॥ ३२ ॥

अनन्तर श्रीराधिका के स्तनों का पवन स्पर्श देख कर आप कहने लगे-हे सुन्दरि ! विवाता ने यत्न से आप के सर्वोङ्ग कोमल बनाए हैं । यह तो काम का शिल्प अर्थात् कारीगरी है । परन्तु आपके स्तन दोनों किस कारण से कठिन हैं नहीं जानता हूँ ॥ ३३ ॥

अनन्तर राधिका की रोमावली का दर्शन कर हँसते हुए कहने लगे-हे सुन्दरि स्तनों का परस्पर पीडन देख कर मानो मीनकेतु कन्दर्प ने सीमा त्रिभाग करते हुए बीच में नूतन रोमराजी छल से सेतु अर्थात् पुल बाँध दिया है ॥ ३४ ॥

फिर स्तन निर्व्वन्ध को देख कर कहने लगे । हे सुन्दरि ! महा-देव से भय भीत, कामदेव से पूर्ण चित्त रूप मत्त हस्ति को वश में

धैर्याय मन्दरगिरि नवरूपरत्न-

कोषस्तनोति मम तोषकरश्चकास्ते ॥ ३५ ॥

पुनस्तथा परिहासं विधाय विविधमन्मथक्रीडां तथानुभूय भूयसावे-
गेन राधां यमुनातटे निधाय तत्र गत्वा राधामालोक्यालिलिङ्ग।
सुन्दरि नाहं विस्मरणीयः। राधा-मम जीवनमहौषधिर्भवान् इति
किमाजीवं विस्मरणीयः इत्युक्त्वा जगाम ॥ ३६ ॥

इति पारखण्डः समाप्तः ॥

—o—

ततो दिनान्तरे पुनरपि ब्रजाङ्गना भारमादाय गव्यं नेतुं मथुरां
व्रजन्तीः कृष्ण आलोक्य जगाद—

तत्र क्षणं विरम सुन्दरि नीपमूले

कूले कलिन्ददुहितुः करमाचकार ॥ १ ॥

लाने के लिये बारि प्रबन्ध अर्थात् (गजबन्धनी) हैं। वह धैर्य
के लिये मानो नवीन रूप स्वरूप रत्नमय कोषागार का मन्दराचल
को दे रहा है। वह मेरा तोष स्वरूप हो रहा है ॥ ३५ ॥

इस प्रकार हास्य परिहास करते हुए, विविध कामक्रीड़ा का
अनुभव करने लगे। फिर अत्यन्त वेग से श्रीराधा को यमुना तट
में ले कर आलिङ्गन करते हुए कहने लगे हे सुन्दरि ? मुझको मत
भूलिये। श्रीराधा ने कहा-आप तो जीवन की महौषधि रूप हैं।
जीवन का आश्रय को कौन भूल सकता है। इस प्रकार कहते हुए
दोनों अपने स्थानों में चल दिये ॥ ३६ ॥

—o—

अथ अन्य एक दिवस में ब्रजाङ्गना भार लेती हुई दही दूध
विक्रयार्थ मथुरा जा रही थीं। उन्हें श्रीकृष्ण देख कर कहने लगे-
हे सुन्दरि ! यमुना के तट पर कदम्ब के नीचे क्षण काल विश्राम
कीजिये। जब तक मैं कर नहीं लेता हूँ ॥ १ ॥

(३१)

राधा-एतेन भवतः किमायातं - कृष्णः तदाकर्ण्यतां-
 कंसेन भूमिपतिना महतः प्रयत्ना-
 त्रीतोऽत्र कर्मणि करग्रहणे नियुक्तः ।
 तेन स्वयं शिरसि मे निहितं विचित्रं
 वस्तु विलोक्य विलोलमृगायताक्षि ॥ २ ॥

राधा क्षणं सुचिन्त्य विमृश्य करयोग्यं वस्तु नास्ति का शंका विचार्यतां । कृष्णः स्मृत्वा—

किं वस्तु वक्षसि निधाय पिधाय यत्नात्
 चेलाञ्चलेन नयसे चपलायताक्षि ।
 एतद्विचारय क्वाहमिदं मदीयं
 किम्वा न वा भवति तत् परिलोकयामि ॥ ३ ॥

राधा सरोषमिव-एतदधु वयसाय भवतो यत्परप्रेयसीं प्रति एतावती मुखरता धृष्टनाच-

श्रीराधा ने कहा—इस में तुम्हारा क्या अधिकार है ? श्रीकृष्ण ने कहा—सुनिये महाराज कंस ने महान् प्रयत्न के साथ इस कर आदान कार्य में नियुक्त किया है । अतः आप सब स्वयं ही उचित विचार कर वस्तुओं का कर मुझे दीजिये । हे चञ्चल मृग की भाँति चौड़े नेत्रवाली ! इस में विलम्ब न कीजिये ॥ २ ॥

श्रीराधा क्षण काल चिन्ता परामर्श करती हुई कहने लगी—हमारी करयोग्य कोई वस्तु नहीं है, इसमें शंका मतकीजिये । श्रीकृष्ण हँसते हुए कहने लगे । हे चपल चौड़े नेत्रवाली ! बलाञ्चल के द्वारा वक्ष में छिपा कर क्या वस्तु ले जा रही हो । एक बार तो मन में विचारकरो । कर लेने की कोई वस्तु है किम्वा नहीं है सो मैं देख छोड़ देऊँगा ॥ ३ ॥

श्रीराधा सरोष कहने लगी—एसा करना तुम्हारा अनुचित है । दूसरी रमणी के लिये इस प्रकार कहना महान् धृष्टता होती है ।

(३२)

यातो भवान् विधिवशात् यदि वाधिकारी
 नो ते सदा निपतति प्रतिदं धरण्याम् ।
 एतत्पुनः प्रतिदिनं प्रमितं न जाने
 तत्रेदृशी स्फुरति कृष्ण कथं कुवाणी ॥ ४ ॥

कृष्णः स्मृत्वा प्रमितमेवैतत् कथं कुवाणी स्फुरति । प्रत्यक्षमेवानु-
 भविष्यसि—

मुग्धाक्षि कञ्चुकमिदं परिहृत्य दूरे
 वक्षः सरस्तु विदितं भवती विधत्ताम् ।
 नो वा महीपतिकरप्रदण्ये नियुक्तो
 देहे तव स्वयमहं करमर्पमामि ॥ ५ ॥

राधा सरोषकटाक्षं कृष्णं प्रति जगाद—

रे नन्दनन्दन कुचेष्टकरीन्द्रसिंहः
 सिंहासने किमु न तिष्ठति कंसराजः ।

हे कृष्ण ! यदि दैववश आप अधिकारी हुए हैं तो भी इस प्रकार
 अनौचित्य करना अनुचित हो रहा है । और भी देखिये—यह अधि-
 कार क्या चिरस्थायी रह सकता है । इस प्रकार अनुचित व्यवहार
 से क्षुब्ध हो महाराजा आपको दण्ड दे सकता है ॥ ४ ॥

श्रीकृष्ण हँस कर कहने लगे—ऐसा करना मेरा उचित हो रहा
 है । मैं क्या करूँ ? प्रत्यक्ष देख रहा हूँ कि तुम कर देने की वस्तुओं
 को छिपा कर चली जा रही हो । हे मुग्धाक्षि ! वक्षः से शक्ति प्राप्त
 करके दिखाइये नहीं तो मैं स्वयं ही हाथ लगा कर देखूँगा ।
 क्योंकि महाराजा ने इस कार्य में मुझे नियुक्त किया है । मेरी इच्छा
 है । शङ्का होने पर देख सकता हूँ ॥ ५ ॥

श्रीराधा रोष के साथ टेढ़ा कटाक्ष करती हुई कहने लगी—
 नन्दनन्दन ! हे मन्द चेष्टाकारी सिंह ! क्या कंस महाराज सिंहास-
 न पर नहीं बैठे हुए । क्या उसने ऐसा करने को कहा है ।

(३३)

स्वस्याधिकारमधिगत्य कुलाङ्गनानां

देहे समर्पयितुमिच्छसि हन्त हस्तम् ॥ ६ ॥

कृष्णः सरोषं प्रायः कथामिच्छया एष दीयते करः नो वा स्वयं
विचारय अङ्गीकुरु च । राधा सरोषं कृष्णं प्रति-कस्य हि स्कन्दे
मस्तकद्वयं यः परीन्द्रदेहे हस्तं क्षिपति ।

पतिर्ममातिसुदुरन्तकारी छिद्रानुसारी नृपतिः करालः ।

इतीवज्ञाय मदीयहेतोः स्वयं करं दास्यसि नन्दसूनो ॥७॥

कृष्णस्ततः किं राज्ञा वयमत्र नियुक्ता स्तत्कार्यमेव क्रियते त्वया
करः कथं न दीयते गव्वोवा क्रियते भवत्या । राधा-करयोग्यं वस्तु
नास्ति कस्मिन् वा ते करग्रहः । कृष्णः श्रूयतां व्यास्तेव भवत्या
रत्नादिषु करग्रहः ।

तथाहि-वह्नीजौ तव सातकुम्भकलसौ केशाश्च याश्चामरा

मालोक्त्य दशनच्छटामरकतश्रेणी च रोमावली ।

अन्या द्वा निभृतं यदस्ति पवनं चेलाञ्चलेनावृता

विज्ञाय न्यावहत्तुमिच्छसि न चेद् दोषं न मे दास्यसि ॥८॥

अधिकार को जताता हुआ कुलाङ्गनाओं का शरीर में हाथ लगाने
की इच्छा करते हो ॥ ६ ॥

श्रीकृष्ण रोस करते हुए कहने लगे-ईच्छा नहीं करता हूँ
परन्तु देखिये हाथ लगाता हूँ । तुम विचार करके मान जाओ ।
राधा क्रोध करती हुई कहने लगीं ।

हे नन्दनन्दन ! मेरा पति अत्यन्त दुरन्त है, सर्व्वदा छिद्र का
अनुसन्धान करता रहता है । राजा भी महान् भयानक है । ऐसा
जान कर मेरे लिये तुम स्वयं ही कर देओ ॥ ७ ॥

अनन्तर श्रीकृष्ण कहने लगे-उस से क्या हो सकता है । राजा
ने हम सब को नियुक्त किया है ।

हम उनका कार्य्य कर रहे हैं । तुम क्यों कर नहीं देती हो ।

(३४)

अपिच-राधे त्वदीय-हृदिकाञ्चन-कुम्भयुग्मं
 लावण्यरत्नपरिपूर्णमिदं विभाति ।
 तस्योपरि स्फुरति मौक्तिकहारयष्टि
 त्रालोकसे किमिति रत्नमयं शरीरम् ॥ ९ ॥

राधा-भवतु तावत्तद्रत्नादीनां कीदृक् करस्तत्कथ्यतां । कृष्णः स्मृत्वा
 श्रूयतां तत्-

आलोडनं स्तनसुवर्णघटद्वयस्य
 सन्दर्शनं दशनमौक्तिक-विभ्रतस्य
 आकर्षणं कुटिलकुन्तलस्यात्यपारं
 दशं कठोरनयनेऽधरपल्लवस्य ॥ १० ॥

देखिये गर्व मत कीजिये । श्रीराधा ने कहा-कर योग्य कोई
 वस्तु नहीं है । तुम्हारा किस वस्तु का कर लेने का आग्रह है कहो ।
 श्रीकृष्ण कहने लगे-आप के पास विविध रत्नादि मौजूद हैं ।
 उन का कर लगेगा । देखिये-तुम्हारे दोनों स्तन दो सुवर्ण कलस
 हैं । केश कलाप चौरा है । दन्तों की डटा मानो मोतीराजि है ।
 रोमावली मरकत मणियों की श्रेणी है । और भी अनेक वस्तुओं को
 वस्त्राञ्चल में गोपन करके रखती हो । अब उचित विचार करके
 उन सब को दिखाओ । पीछे मेरे को दोष मत लगाना । हे राधे !
 और भी देखिये आप के हृदय में जो सुवर्णकुम्भयुगल हैं उन में
 लावण्यरूप रत्न परिपूर्ण मौजूद हैं । उस के उपरि भाग में मुक्ता
 का हार विराजमान है । क्या आप नहीं देखती हो कि आप का
 सर्वोच्च रत्नमय है ॥ श्रीराधा ने कहा-अच्छा ऐसा ही होगा, अब
 कहिये उन रत्नों का क्या कर लगता है ? श्रीकृष्ण हँस कर कहने
 लगे-सुनिये, स्तनरूप सुवर्णकुम्भयुग का आलोडन, दशन पंक्तिरूप
 मुक्तासमूह का दर्शन, कुटिल केश-कलाप रूप चौर का आकर्षण,
 अधर पल्लव का दशन करना कर द्रव्य हैं ॥ ८ । १० ॥

राधा—श्रुत्वा तावदत्र करो न देयः नवा न पति मुग्धो कोकिलः ॥

इति—एषा बल्ली कुसुमसहितं चूतमालम्ब्य गाढं

धत्तेऽत्यन्तं मुकुलपुलकं प्रेमगर्भं स्वनाथम् ।

पापं पायं मधु मधुरी मालती मल्लिकानां

भ्रामं भ्रामं ललितललितं चुम्बति प्राणनाथम् ॥११॥

ततो राधा—अन्योन्य बाहुपरिमलितकण्ठदेशं

शश्वन्मिथः स्मरकथास्मितसुन्दरास्यम् ।

नानाद्रुममधुरगुञ्जित सङ्ग पुष्पं

कुञ्जं जगाम सहसा हरिणायताक्षी ॥

तत्र गत्वा कल्पद्रुम नवपल्लव कल्पित कल्पेषु कुञ्जमध्येषु राधा-
मुरसि विनिधाय स्वपिती कृष्णः । ततस्तत्र विविधमन्मथक्रीडाम-
नुभूय निजभवनगमनञ्चक्रे । राधा सखिगणैः सह भारमादाय मथुरां
गतवती ॥ इति दानखण्डः ॥१२॥ इतिश्रीगोपालभट्टगोस्वामिविर-
चितं श्रीकृष्णप्रेमामृतं समाप्तम् ।

श्रीराधा ऐसा सुन कर कहने लगी—तौ तुम्हें एक भी कर नहीं
मिलेगा । यह लता पुष्पों से रहित निज नाथ आस्र वृक्ष का आश्रय
करगाढ़ पुलक मुकुल का धारण कर रही है । भ्रमरी मालती मल्लि-
ओं का मधुपान करती हुई घूम रही है । वह निज प्राणनाथ मधुकर
का चुम्बन कर रही है ॥ ११ ॥

अनन्तर श्रीराधा—गोविन्द दोनों ही परस्पर कंठदेश में भुजा
रख कर, मधुर गुब्जायमान भ्रमरों से परिवेष्टित पुष्पों से युक्त
नाना द्रुममय कुञ्ज के लिये हठात् चल दिये । निरन्तर कामकथा
तथा मन्दहास्य से दोनों का मुख-कमल शोभायमान रहा ।
श्रीकृष्ण वहाँ जा कर कल्पद्रुमों के नवीन पल्लवों से विरचित कुञ्ज
में श्रीराधा को वक्ष में ले कर शयन करने लगे । अनन्तर वहाँ

यं ब्रह्मावरुणेन्द्ररुद्रमरुतस्तन्वन्ति दिव्यैः स्तवैः
 र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ।
 ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
 यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणाः देवाय तस्मै नमः ॥
 गोप्या गोपेशस्य ध्यात्वा पदाब्जं गोप्या गोपेशस्य लीलां लिलेख ।
 सून्याक्षिमेनीलमणिश्च माघे साकेहक्षेनागाश्वमहीप्रमाणे ॥
 पुस्तकं स्वाक्षरश्चेति ।

विविध मन्मथ-क्रीडाका आस्वादनकर श्रीहरि निज गृह के लिये चले
 दिये । श्रीराधा सखियों के साथ गव्यादि लेकर मथुरा गई ॥१२॥

वैशाखी कृष्णा एकादशी
 कृष्णादास



गौडीयग्रन्थगौरवः—

ब्रजभाषा में प्रकाशित प्राचीन पुस्तकें—



१—गदाधरभट्टजी की बाणी		॥)
२—सूरदासमदनमोहनजी की बाणी		॥)
३—माधुरीबाणी	(माधुरी जी कृता)	॥ =)
४—वल्लभरसिकजी की बाणी		॥ =)
५—गीतगोविन्दपद	(श्रीरामरायजी कृत)	॥)
६—गीतगोविन्द	(रसजानिवैष्णवदासजी कृत)	॥)
७—हरिलीला	(ब्रह्मगोपालजी कृता)	=)
८—श्रीचैतन्यचरितामृत	(श्रीसुबलश्यामजी कृत)	५॥)
९—वैष्णववन्दना [भक्तनामावली]	(वृन्दावनदासजी कृता)	=)
१०—विलापकुसुमाञ्जलि	(वृन्दावनदासजीकृता)	॥)
११—प्रेमभक्तिचन्द्रिका	(वृन्दावनदासजीकृता)	॥)
१२—प्रियादासजी की ग्रन्थावली		॥ =)
१३—गौराङ्गभूषणमञ्जावली	(गौरगनदासजी कृता)	॥)
१४—राधारमणरससागर	(मनोहरजी कृत)	॥)
१५—श्रीरामहरिग्रन्थावली	(श्रीरामहरिजीकृता)	॥ =)
१६—भाषाभागवत [दशम, एकादश, द्वादश]	(श्रीरसजानि- वैष्णवदासजी कृत)	

सानुवाद संस्कृतभाषा में—

- १—अर्चाविधि: (संगृहीत) ॥
- २—प्रेमसम्पुट: (श्रीविश्वनाथचक्रवर्तीजीकृत) ॥
- ३—भक्तिरसतरङ्गिणी (श्रीनारायणभट्टजीकृत) १
- ४—गोवर्द्धनशतक (श्रीविष्णुस्वामी संप्रदायाचार्य श्रीकेशवाचार्य कृत) ॥
- ५—चैतन्यचन्द्रामृत और सङ्गीतमाधव (श्रीप्रबोधानन्द-सरस्वतीजी कृत) १॥
- ६—नित्यक्रियापद्धति (संगृहीत) ॥=॥
- ७—ब्रजभक्तिविलास (श्रीनारायणभट्टजी कृत) २॥
- ८—निकुञ्जरहस्यस्तव (श्रीमदरूपगोस्वामि कृत)
- ९—महाप्रभुप्रथावली (श्रीमन्महाप्रभुमुखपद्मविनिर्गता) ॥=॥
- १०—स्मरणमङ्गलस्तोत्रं (श्रीमदरूपगोस्वामिजीकृत) ॥=॥
- ११—नवरत्नं (श्रीहरिरामव्यासजी कृत) =॥
- १२—श्रीगोविन्दभाष्यं (श्रीपादवलदेवजी कृत) ४॥
- १३—ग्रन्थरत्नपञ्चकम् १॥
- श्रीराधाकृष्णगणोद्देशदीपिका (श्री श्रीरूपगोस्वामिजीकृत)
- श्रीगौरगणोद्देशदीपिका (श्रीकविकर्णपूरजी कृत)
- श्रीब्रजविलासस्तव: (श्रीश्रीरघुनाथदासगोस्वामिजीकृत)
- श्रीसंकल्पकल्पद्रुमः (श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीजी कृत)
- १४—श्रीमहामन्त्रव्याख्याष्टकम् (सञ्चित)
- १५—ग्रन्थरत्नपट्टकम् (सञ्चित) ॥

॥ श्रीश्रीगौरहारर्जयति ॥

गौडीयग्रन्थगौरवः—

प्रकाशितग्रन्थसंख्या—११२—११३

स्वकीयात्वनिराशबिचारः

तथा

परकीयात्वनिरूपणम्

रचयिता—

श्रीश्रीविश्वनाथचक्रवर्तीजी

सम्बत्—२०२०

मूल्यम्— ५५ नये पैसे

प्रकाशकः व मुद्रकः—

कृष्णदासबाबा

गौरहरिप्रेस, कुसुमसरोवर

आर्य समाज के आचार्य

श्रीमान श्रीमान

श्रीमान श्रीमान

❀ स्वकीयात्वनिराशविचारः ❀

श्रीकृष्णाय नमः ।

इह ब्रजे केचन श्रीमन्नन्दनन्दनेन सह वृषभानुनन्दिन्या उद्वाहं वदन्तो विवदन्ते । तत्र त एवं प्रष्टव्याः, किं मथुराप्रस्थानात्पूर्वमेव ? उत मथुरातो द्वारकायामुषित्वा ततः कुरुक्षेत्रमिलनसमये ? आहोस्विन् तत आगत्य दन्तवक्रवधानन्तरं पद्मपुराणीयगद्यानुसारेण पुनर्जागमनोत्तरकाले ? किमुत लक्ष्मीपरमव्योमनाथवन्नित्यसिद्ध एवेति, तत्रापि किं पितृभ्यां श्रीकृष्णाय प्रथमत एवानन्यपर्वेव दत्ता ? उताहो आदौ अन्यस्मे दत्ता तदनन्तरं यथा कथञ्चित्त्वाद्वाहस्य मिथ्यात्वेन विख्यापनं श्रुत्वा पुनरनेनोद्वाहिता ?

नाथः ब्रजराजस्य वैश्यजानित्वादुपनोतभ्यैव श्रीकृष्णस्य तदौचित्यात्, प्रकृते तु मथुरायानेव कंसवधानन्तरमेव श्रीमद्वसुदेवेनैव तस्य संस्कृतत्वात् । न चादौ ब्रजे संस्कृतचर एव पुनः क्षत्रियत्वे संस्कृत इति वाच्यम्, शोभागवतादिषु कुत्रापि तथानुरज्जेखात् न्यायसिद्धत्वाच्च । तद्यथा—“गर्भाधानादष्टमे जन्मतो वा मौञ्जीवन्धः शम्पते ब्राह्मणानाम् । राजन्यानां नवमेऽकादशेऽब्दे वैश्यानां च द्वादशे वेदविद्विरिति” स्मृतेः । प्रस्तुते श्रीकृष्णस्यैकादशवर्षारम्भमात्रं ब्रजे स्थितिः सुप्रसिद्धा ।

नापि द्वितीयः कुरुक्षेत्रान्निजान्तरं सर्वेषां ब्रजवासिनां च यथा पूर्वं सकुटुम्बानामेव स्व स्व स्थानगमनात् विशेषतस्तत्तासां रहो भिन्नसमये—“आहुश्च ते नजितनाभ” इत्येतत् तद्वचनस्य व्याख्याने श्रीकृष्णनन्दनवैष्णवोपनिषाः “ननु त्रयमेवागः यः । मां कुतो नानु-

(२)

भवतस्तत्राहुः गेहं जुषां परगृहिणीनामस्वतन्त्राणां” इति व्याख्या-
 तत्वात्तन्प्रसंगस्यापि कर्त्तुमयोग्यत्वात् । तृतीयस्तु दुर्घट एव ।
 पाद्मोत्तरखण्डे श्रीकृष्णागमनानंतरं “गोपनारीभिरनिशं क्रीडया-
 मास केशव” इत्यत्र गोपपत्नीभिरित्युक्तत्वात् “बहु प्रेमरसेनात्र
 मासद्वयमुवासहे” त्युक्त्वा समनंतरं तस्मिन्नेव गद्ये पुत्रदारसहि-
 तानां ब्रजवासिनां श्रीकृष्णेनान्तर्द्धापितत्वस्योक्तत्वाच्च । प्रमाणा-
 न्तरस्य तु कुत्राप्यदृष्टत्वात् । न चानिशक्रीडा दाम्पत्यं विना न
 सिद्ध्यतीत्यन्यथानुपपत्त्या तदवश्यमङ्गीकर्त्तव्यमिति वाच्यं ।
 तस्य हाटकेश्वरस्येवाविरतसुरतस्यामतत्वाद्रसापहृत्वाच्च । ननु कृष्ण-
 सन्दर्भगोपालचन्द्र-लोचनरोचन्यादिषु दन्तवक्रवधात् पूर्वलीलानां
 भवतारलीलात्वेनोक्त्वा प्रत्याख्यानात् एतदनन्तरलीलानामेव
 नित्यता स्थापितैव । सर्वासां ब्रजसुन्दरीणां सत्यत्वमिथ्यात्वे तत्र
 निर्णीय मायिकीनां स्वस्वपतिगृहगृहिणीत्वे स्थितित्वविवरणात्
 सत्ताभिः सह श्रीकृष्णस्य पुनरुद्वाहस्याप्युक्तत्वात् केन वा को नाम
 नवीनः सन्देहः समुत्थापित इति सन्दिहानाः स्मः वयमेव । अत्रो-
 च्यते । श्रीकृष्णलीलानां श्रुति-स्मृति-पुराणागमादिषु नित्यत्वेन
 प्रतिज्ञातानां सर्व्वपूर्वाचार्य्यजीवातुरूपोपासनीयत्वेन सम्मतानां
 यदनादरं विधाय स्वरचितलीलानामेव नित्यतां ब्रूथ । तत्र श्रीभग-
 वत्सन्दर्भादिरेव युष्मन्निरसने जागरूको वर्त्तते एवालं तद्विचार
 विस्तारणात्र सिद्धान्तसारे तु विधृतमेव । भागवतामृतधृतगद्यान-
 सारिणश्चैक्यवन्तस्तर्हि तल्लिखनमुपक्रमोपसंहाराभ्यां विचार्य्य ।
 अनाय्यं कथं वदथ ! तत्र तेन दन्तवक्रं निहत्य यमुनामुत्तीर्य्य
 श्रीमन्नन्दादिगोपगणैः सह मिलित्वा गोपनारीभिर्मासद्वयं विहृत्य
 पुत्रदारसहिताः सर्व्व एव ब्रजवामिनोऽन्तर्द्धापिता एतावन्मात्रं
 निर्णीतं नान्यदधिकं किञ्चिदपि । किञ्च यद्यपि स्वस्वपत्यादिभिः
 सह ब्रजवासिनामप्रकटे वास पुराणानुयायी तेषां ग्रन्थकर्त्तृणां
 निर्णयः कथमन्यैरन्यथा वक्तुं शक्यं । उच्यते चेत् केन वा तत्प्र-

(३)

माणीकरणीयं अपि च यद्युद्वाह एव दुर्घटस्तदान्यैरुपात्तोऽपि पूर्वोद्वाहस्य मायिकत्वख्यापनानन्तरं श्रीकृष्णेन सह पुन विवाहः शिष्टैः कथं मन्तव्यः लोके वेदे च तस्य दिधिषुवादस्यातीव जुगुप्सितत्वममूलकत्वं च स्पष्टमेव । नापि चतुर्थः संगच्छते—

प्रकटाप्रकटयोरैकरूपेण लोकवल्लीलाकैवल्येन च सर्वदा स्थितेः सर्वत्र निर्णयात् । ननु ब्रह्मसंहितोक्तश्रीकृष्णस्यादिपुरुषत्वं तासां च लक्ष्मीत्वमतिविष्पाटमेव । तदनुयायिनां गोलोकोपासकानामस्माकं किमेताभिरवतारलीलाविभीषिकाभिः । न चाप्रकटलीलां विना माधुर्यात्वाद एव न संभवेदिति वाच्यं । अप्रकटस्य सर्वेषां नयनागोचरस्य गोलकत्वे एव स्थापितत्वात् । अत्र बदामः । यद्यपि रमादिशब्दैस्तासां आदिपुरुषत्वेन च श्रीकृष्णस्य च विख्यातस्तथापि ब्रह्मणोक्तमंत्रचिन्तामणेरुपासनाप्रकारे तु श्रीमन्नन्दनन्दनत्वे तासां च गोपीत्वे पञ्चरात्र-गौतमीय-क्रमदीपिकादिषु च निश्चितत्वात्तथा वक्तुमशक्यमेव । नच व्यासोक्तलीलाभिर्विना पञ्चरात्रादिषु कोऽपि मन्त्र उक्तोऽस्ति । पृतनास्तनपातारमित्यारभ्य तत्र लीलाविशिष्टस्यैव श्रीकृष्णस्य सर्वत्रोपास्यत्वेन निर्दिष्टत्वात् । लोकवल्लीलाकैवल्यस्यैव समीहितत्वं सर्वत्र तद्विन्नोपासना नास्त्येव चेत्तथापि प्रौढि ब्रह्म इव कश्चन निर्लील उपास्यतां नाम न तत्र विवादः । निर्विशेषे स्वीकृते उपासनाया असिद्धिः सर्वत्राचार्यैर्निर्णीतैव । किंच प्रथमनिष्पन्नो विवाहः सर्वमिन्नेव ब्रजे विख्यातः विदग्धमाधवादावुक्तः कथं सोऽन्यथा कर्तुं शक्यः । न च शारीरकादौ सर्वं प्रपञ्चज्ञातस्य मिथ्यात्वं प्रतिपाद्यत एव तद्वदस्यापि मिथ्याभूताभिर्गोपीभिर्गोपैः करग्रहणस्य मिथ्यात्वं निजग्रन्थेषु निर्णीतमिति वाच्यम् । शारीरकमतानुसारिभिस्तथात्वे नित्यं रटद्भिरपि निष्पन्नो व्यवहारो ब्राह्मणादीनां यथा प्रवृत्तामन्यथा कर्तुमशक्यत्वात् चेत्तैरेव सिद्धः प्राकृतो व्यवहारो भ्रमत्वेनोप्युप्यमाणोऽपि असिद्धः कर्तुमशक्यः प्रकृते गोपसुन्दरी-

सम्बन्धिलालालोरन्यै मिथ्यात्वे निश्चीयैकस्मिन्नेव ग्रामे प्रथमानंतर-
द्वितीयोद्वाहः कथं निर्वाहणीयः तथापि यदि कथंचित्तद्वक्तव्यमेवेति
निर्वध एव यौष्माकः तर्हि प्रथमोद्वाहवादिभ्यः प्राचीनेभ्यो जार-
वादित्वे गालिप्रदाय स्वयं द्विर्विवाहं वदन् दिधिपुवादित्वमपि
स्वस्योरीकरणायमवश्यमेवेत्यलं विचारविलसितेनेति । “पुनर्भू-
र्दिधिपू रुद्धा द्विस्तस्या दिधिपुः पतिरि”त्यमरः । किञ्च यदि कृष्ण-
प्रेयसीनां मायिकत्व-सत्यत्वाभ्यां सर्वथा अभिन्नाकाराच्च सर्वदा
स्वरूपद्वय स्वीकारः तदा ब्रजे यावन्तो ब्रजवासिनस्तेषां श्रीवृष-
भानुकीर्त्तिदाप्रभृतीनां तासां पितृणामप्यन्यथानुपपत्त्या स्वरूपद्वयं
स्वाकृतं व्यमेव । नो चेत् कृष्णसन्दर्भ-गोपालचम्पूक्तः सिद्धान्तो
व्याकुप्येत । तत्र तु “मन्निर्वर्त्तिताः ताः स्व स्व पितृगृहमनुवर्त्ततां ।
कृष्णैक परायणास्तु स्व स्व पितृगृहं” इति देव्या वचनेन समाहित-
त्वात् । यदि च नाम-रूपादिनैक्येन ता युगपदेव पतिगृह-पितृ-
गृहादिषु प्रहितास्तर्हि सुतरां स्वस्वपतिगृहगृहिणानां भाव्याः पुत्र-
प्रयोजना इति न्यायेन गृहादिसोष्ठवषोषाय च अपत्योत्पत्तिरव-
श्य भाविना । तस्यां वसत्यां जातकर्मारभ्य सर्वक्रियाकलापमुभय
कुलवृद्धादि विना नैव निष्पद्यते इति तेऽपि स्वयमेव स्वीकृता एव ।
एवं च याः स्व स्व पितृगृहं गतवत्यस्ताभिः सह श्रीकृष्णस्य
विवाहोत्सवो भावीति भवदाशयः । तत्र तस्य विवाहोत्सवे
सर्व एव ब्रजवासिजनाः श्रोमद्ब्रजराजेनावश्यमेव निमन्त्रणीयाः
तथा सति तत्पर्वणि स्यात्प्रधानत्वात् जटिलाभारुण्डाद्याः पुरंध्रयः स्व-
स्ववधूभौ राधाचन्द्रावल्यादिभिः सङ्गवश्यमामन्त्र्य एव अत्रैवं
संदेहः प्रस्तुते तस्मिन्नुत्सवे स्वस्वपार्श्ववर्त्तिन्यो राधाद्याः कृष्णेनो-
द्वाह्यमाना अपि ता स्तास्ताभिः श्वश्रादिभिः पुनर्निमन्त्रितै रभिमन्यु-
प्रभृतिभिः श्रीवृषभाणादिभिः स्तासां पितृभिस्ताभिश्च दृश्यन्ते त
वा । दृश्यन्ते चेत् कोट्टरा वाधः समस्यत किं एता मद्वधूवर्गभ्यो
महारेभ्योऽस्मद्गालिकाभ्योऽस्मभ्यं पृथगेव इति निश्चयात्मकः उत

(५)

परिचेतुमशक्यतया सन्देहरूपः आहोश्वित् योगमायाबलेनैवाननु-
संधानावयवः । नाद्यः तथा सति यद्यपि वयं सत्या एता मायिक्य
इति पितृगृहगतवतीनां भवदभिमतः तथापि प्राचीन-स्कार-
बलात् पतिभ्योऽभिमन्वादिभ्यः संकोच संपत्त्या पुन विवाहस्याऽ-
नभिमतत्वात् । पतिगृहस्थितानां तु तथाबोधाभावात् स्वसमाना-
काररूपगुणादिमतीनां दर्शनेन विचिकित्सापत्त्या महाजुगुप्सा ।
एवं श्रवणादिभिः पतिभिः पितृभिश्च युगपदर्शनेन जुगुप्सै-
वमस्य तेन तु प्रकृतविवाहकर्मणि प्रवर्त्यते इति विसण्डुलत्वाच्च न
च एता मदीयाभ्योऽभिन्ना इत्याकारक एव बोध इति प्रौढीरास्मा-
कीति भ्रमादपि वाच्यः ।

तासां नाम-रूप-गुणादीनां सर्वथा अभेदेनैव प्रतीयमानात् । नापि
द्वितीयः द्वयोरपि नामादिभिरीपदप्यनन्यतया श्वश्रू प्रभृतीनां स्वय-
मेव स्वेषां वा अपरिचय इति वक्तुमप्ययोग्यत्वात् । नापि तृतीयः
तस्याः प्रकृतलीलासंपादिकात्वप्रसिद्धेः । प्रकृतं तु वरकन्ययो दर्श-
नपूर्वकवित्रीष्टज्ञानात्तत्तन्मंगलसंपादनानन्तरं आप्तवर्गैस्ताभ्यां यौतु-
कादिसमर्पणं न त्वन्यत् । सर्वथा तु मिथः संदर्शनमेव लोक-
वेदरीत्यासु निष्पन्नं । तस्मिंश्च सति श्रीकृष्णस्येतेषां दर्शनेन
लज्जा-भयोत्पत्तिः । तथा तेन सहोद्वाहे प्रवर्तितानां गोपीनां श्वश्रू-
पत्यादिदृष्ट्या भयादिना प्रकृते पुनर्विवाहेऽननुमतिः । गोवद्ध ना-
भिमन्युप्रभृतीनां इन्द्रजालसदृश तद्दर्शनात् श्रीकृष्णेन सह विरोधो-
द्भवः पित्राद्या वृषभाणवादयस्तु मदौरस्यो भवन्त्येता एता न भव-
न्तीति वा कथं वा प्रतियन्तु कथं वा पुनः पूर्वजामातृणां समतमेव
निरपेक्षतया ताः संप्रददतु, न च सर्व समाधात्री पौर्णमासीति
विवृतमेवेति वाच्यं । श्रीशंकराचार्याद्याः सहस्रशः प्रपञ्चस्य मिथ्या-
त्वं व्याख्याय श्रुतिरपि तदुपोद्धलकत्वेन दर्शयित्वापि ब्राह्मणादि-
कर्तुं कविवाहादिकर्मणां मिथ्यात्वं लोके दृढीकृत्य तेषां स्त्रियादियेभ्यः
केभ्य एव दाययितुं न समर्था बभूवु रिति पूर्वमेवोक्तत्वात् । अत्र तु

कृष्णकर्ज कचरित्राणां लीलात्वेन प्रसिद्धानां दिव्यत्व-नित्यत्वयोः
प्रतिष्ठितानां न जाने मायिकत्वकल्पनया किं साधनीयं वादिभि-
रित्यलमनुलापेनेति । अपि च श्रीमद्वेदव्यास एकस्यैव ऋग्वेदस्य
चतुर्धा विभागं विधाय यथाधिकारिशाखाः सहस्रं विभज्यापि स्त्रीशू-
द्रादीनां तत्रानधिकारात् कथं निस्तारः स्यादिति भारतमप्युपदिश्य
मोक्षाधिकारिणां तन्निश्चयार्थं ब्रह्ममीमांसामप्यध्यायचतुष्टयेन प्रदर्श्य
पुनरपि द्वंद्वधर्मेस्वभिरतान् जनान् वीक्ष्य तदुपकारार्थं यथाधिकारि
विचार्यार्यायैव वर्त्तनीयं तत्त्वानार्यैश्चर्य्यैति पुराणानि प्रकाशि-
तानि । तथापि चित्तस्याप्रसाद एव समुपसीदति स्मनतु तत्प्रसादः
यदैव श्रीमन्नारदोपदेशात् श्रीमद्भागवतं वर्णितवान् तदैव सर्वतो
भावेन मनः प्रसन्निमुपलभ्य भगवत्स्वरूपमप्युपलेभे । अतएवावा-
चीनैर्भव्यबुभूषुभिस्तच्चित्ताप्रसादप्रसादाभ्यां अन्वय-व्यतिरे-
काभ्यां निश्चित्य शास्त्रान्तरेषु तत्सम्मतेष्वेव मनोऽभिनिवेशनीय-
मिति प्रमाणचूडामणित्वेन श्रीमद्भागवतमेव सतां सम्मतं तत्रापि
श्रीकृष्णलीलाप्रधानत्वेन दशमस्कंध एव तद्धृदयं । तत्रापि तनू
प्राण इव सर्वलीलातोऽपि मुख्यतमरासलीला वर्णनं पंच अध्या-
याः अतस्तत्सर्वस्वरूपस्त एव विचारणीयाः । तत्र श्रुश्रूषन्त्यः
पतीन् काश्चिदश्नन्त्योपायेत्यादि । तमेव परमात्मानं जारबुद्ध्या-
पि संगतेत्यादि श्रीशुकवाक्यं ।

मातरः पितरः पुत्रा इत्यां, तद्यात मा चिरं घोषं शुश्रूषध्वं
पतीन् सतीरित्या, भर्तु शुश्रूषणं स्त्रीणां परोधर्मो ह्यमाययेत्या,
पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेऽसुभिरित्या, जुगुप्सितं च सर्वत्र
ह्यौपपत्यं कुलस्त्रिया इति कृष्णवाक्यानि । यत्पत्यपत्यं सुहृदा-
मनुवृत्तिरित्या, कुर्वन्ति हि त्वयि रतिं कुशलाः स्व आत्मनित्य -
प्रिये पतिमुतादिभिरात्तिदैः किमित्यादि । कास्त्रयंग ते कलपदामृ-
तवेणुगीत-संमोहितार्य-चरितान्न चले त्रिलोक्यामित्यादि तासां
वचनानि च प्रथमेऽध्याये । पतिमुतान्वयभ्रातृवान्धवानिति विल-

(७)

द्वय ते त्यच्युतागता इत्यादि च तृतीयेऽध्याये । एवं नदर्थो-
 ग्भितलोकवेद स्वानां हि वो मय्यनुवृत्तयेऽवला इत्या । न पार-
 येऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विविधायुपापि च । या मा
 भजन् दुर्जरगेहशं खलाः संवृश्च्य तद्व इत्यादि श्रीकृष्णवाक्यानि
 चतुर्थे अध्याये । कृत्वा तावन्तमात्मानं यावती गोपयोषितः ।
 रराम भगवांस्ताभिरित्यादि श्रीशुकवाक्यं । स कथं धर्मसेतूनां वक्ता
 कर्त्ताभिरक्षिता । प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम् । आप्त-
 कामो यदुपतिः कृतवान् वै जुगुप्सितं । किमभिप्रायं एते नः
 संशयं छिन्धि सुव्रत इत्यादि श्रीराजर्षि प्रश्ने । धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट
 ईश्वराणां च साहसं । तेजीयसां न दोषाय बन्धेः सर्वभुजो यथा ।
 गोपीनां तत्पतीनां च सर्वेषामेव देहिनां । योऽन्तश्चरतीत्यादि ।
 मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान् स्वान् स्वान् दारान् ब्रजौकस इति श्रीशुक-
 वाक्यानि च पंचमेऽध्याये ।

अतोऽत्रैवं विचार्यते । यद्वर्णनान्तरमेव श्रीमद्वेदव्यासस्य
 चित्तप्रसप्तिरजनिष्ट तन्मध्यवर्तिन हृदयांतः पञ्चप्राणा इव या
 पंचाध्यायी तत्र तादृश—महाराजर्षि—श्रीमत्परीक्षित् प्रश्नानुरूपं
 श्रीमन्मुनीन्द्रेण भ्रमवत् स्वरूपानुभविना सर्वज्ञेन राजसंदेहनिरसन-
 पूर्वकेन भगवतस्तेजीयस्त्वाब्रदोष इत्युक्त्वाऽनोश्वरान्प्रति यथा
 रुद्रोऽद्विजं विषमिति दृष्टान्तेन भयं प्रदर्श्य पुनरपि निरहंकारि-
 मात्राणां कुशलाकुशलाचरणाभ्यामप्यर्थानर्थौ नस्तः किमुत सर्व-
 जीवनिकायानामीशितु स्तयोरन्वयः सम्बन्धोऽपीत्यभिधाय,
 यत्पादपंकजपरागस्य नितरां सेवया तृप्ता भक्तियोगप्रभावेनैव
 खण्डिताखिलबन्धा जीवन्मुक्ताः ग्वच्छन्दाचारिणो नैव नह्यमाना-
 स्तदाचरणैर्न बध्यमाना भवन्ति तस्य स्वेच्छया प्रकटीकृततादृश
 लीलामयवपुषो बन्धाशंकापि कुत इत्युक्त्वा गोपीनां तत्पतीनां
 च सर्वेषामपि देहिनामन्तर्यामितया प्रवर्त्तकरूपेण स्थित एवा
 प्रकटप्रकाशो गोकुलयुवराजतया तेषां पालकः सन् यो विहरति अधु-

नापि तथा कुर्वन्नेवास्ते स एव एव कृपया प्रकटो भूत्वा त्राननुगृ-
ह्यताद्वशोः क्रोणः करोति तथैव विराजते । या लीलाः श्रुत्वा-
ऽवश्यमेव सर्व एव तदेकोपासको भवेदेवेति विहितः । तदन्यत्वेन
कैश्चित्कल्पनान्तरमापाद्य विपादयन्ते यद्यपि दद्यात् पदपतिता-
स्ते निषिद्धाचारपरा इत्यप्यनेनैव सूचितः सर्वां ते नु तासामभिसा-
रादौ पत्यादीनां योगमायया समाधनं व्याहृत्य यद्यपि ताः श्रीकृ-
ष्णं विहाय निजगृहमनाजिगमिष्वस्तथापि ते नानुमोदिताः
पुनरनया रीत्यैव मिलनस्यश्वासं प्रापिताः सत्यः राज्यंते केवलं
लोकभीत्यैव स्व स्व वासं शय्यानिलयं गतवत्यः एतावानेव सिद्धां-
तितः अभ्यासेनैव एव दृढीकृतः नतु मतान्तरस्य लेशोऽप्युद्भा-
वितः चेदितोप्यन्यथा किञ्चिदभविष्यत् सर्वज्ञेन तेन कुतो नोत्थाप-
यिष्यत् नच मतान्तरस्यात्यन्तगोप्य-वात्तत्तत्प्रकाशितवान् शुक्र
इति स्वप्नेऽपि प्रलपनीयं महासभायां सर्वत्र विहितव्याहारस्यैव
शास्त्रे लोकव्यवहारसिद्धत्वात् । न त्वविहितस्य प्रकृते तु पौनः-
पुन्येनैतस्यैव तेन विहितत्वात् । अतस्तादृशराजर्षिमहासदसि निषी-
दतां ब्रह्मर्षिदेवर्षिप्रभृतीनां श्रीमन्नारदपशु रामवेदव्यासाद्यव-
ताराणां च समक्षं द्वयोः प्रश्नोत्तराभ्यां य एव निष्कर्षः परमोत्क-
र्षमवाप स एव सर्वावाचीनजीवानां जीवातुरिति विदुषां परा-
मर्शः । तदन्यथा कल्पनायां श्रीमन्मुनीन्द्रस्य ब्रह्मरातस्यासर्वज्ञ-
ता । श्रीकृष्णस्य पापहारित्वेऽपि पापकारिता विदग्धमाधवादि
प्रकाशकानामप्यविदग्धता इत्यादया बहव एव दोषा आपत-
न्तीत्यलं तत्संलापेनेति संक्षेपः । किंचो ह स्यामुज्वलोपासनायां
केचनावाचीनाः प्राचीनानां श्रीशुकदेववेदव्यास-पराशरादीनां
विदग्धमाधवादिप्रकाशकानां च मतं विमतत्वेन मन्यमानाः केवलं
स्वकल्पितास्वायिकायां स्वकीयाख्यानं विख्याप्य निक्षिप्तानि सन्देह-
महोदधौ हृदयान्यपरिक्लृप्तदयानां अतोऽत्रैवं विचार्यते । तत्
किं तदाख्यातुः स्वाभिमतं उतान्यदोयहाह तत्सौ हाह ।

❀ अथ परकीयात्वनिरूपणम् ❀

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीकृष्णलीलापाथोधिनिमज्जितमनो-द्विपान् ।
वन्दे तद्विपरीतांस्तु नैव विदुः मे मनः ॥१॥
श्रीमञ्जीवपदद्वन्द्वं वन्दे यैराशयो निजः ।
लघुत्वमत्रेत्येतस्य व्याख्यान्ते ख्यापितः खलु ॥२॥

स यथा—स्वेच्छया लिखितं किञ्चिन् किञ्चिदत्र परेच्छया ।

“यत्पूर्वापरसंबद्धं तत्पूर्वमपरं परं” इति ॥
रागेणैवार्पितात्मान इत्यत्र व्याख्या तथा ।
पत्नीभावाभिमानात्मेत्यत्रापि च तथा नया ॥
महाभावस्य सद्भावाभावयोर्हेतुयुक्तिः ।
निश्चित्य लक्षणे तस्य विवृत्याभ्यासता मुहुः ।
रसस्य तु परीपाकः परमक्रमलीलया ।
भवेद्व्यासशुकादीनामत्रैवावेशदर्शनात् ॥
विदग्धमाधवादीनां कृत्वा चात्र निर्भरम् ।
वर्णने चित्तसंरम्भात्तथाद्योपान्तमेव हि ॥
अस्या निर्वहणादेवेत्युज्ज्वलस्य विवेचनम् ।
समृद्धिमत् आख्याने सप्त पत्रोलिपेः परम् ॥
स्वांतम्य सर्वसंरम्भः सर्वाते दर्शितो यतः ।
अतः परेच्छालिखने विचारः क्रियते मया ॥
येन पूर्वापरालोके लोच्यते तद्विगीतता ।

अथ सोऽयं ग्रन्थकृन्महाकारुणिको रसिकमण्डलाखण्डलः
श्रीकृष्णचैतन्यस्वयं भगवता हृदि प्रवर्त्तनापरवशतया स्वसुहृद्वर्ग-

(२)

हृदयानन्दनाय विशेषतोऽर्वाचीनजगज्जनानामनायासेनैव वाङ्म-
नसयोः कृतार्थीभावभावनया च पूर्वस्मिन् ग्रन्थे संचेपतो वर्णितमपि
श्रीकृष्णैकालंवनत्वेनैव शृङ्गाररसं विवृतवान् । तत्र तावन्नायक-
शिरोरत्नस्य यथा कथञ्चित् परिशीलयितुर्मनोनयनादेः समाकर्ष-
कस्य श्रीकृष्णस्य मुख्यनायकत्वे धीरोदात्त-धीरललित-धीरशान्त-
धीरोद्धतैः सह पूर्णतम-पूर्णतर-पूर्णैस्त्रिभिर्गुणितैर्द्वादश । पत्यु-
पपतिभ्यां गुणने चतुर्विंशतिः । पुनश्चानुकूल दक्षिण शठ धृष्टै-
श्चतुर्भिर्गुणने पण्यवति प्रभेदा निरूपिताः, निरूप्य च केषांचिद्ब-
हिर्मुखानांकदाचिदत्र दोषदृष्टिरूपद्योतेति परमोत्कर्षो रसस्यात्रैवौ-
पपत्य एव नतु पत्याविति भरतवचने दृढीकृतः धीरोदात्तादयो
द्वादशामृतसिंधाबुदाहताः । रुक्मिणं युधि विजित्येत्यादिना रुक्मि-
ण्यादीनां पतिरिति पतिरुदाहृतः । कात्यायनि महामायेत्यादिना
तास्वेव कीयतीनांतु पतिभावो हरावभूदिति दुर्गाव्रतपरासु पति-
भाववतीनां कासाञ्चिदपि तथात्वे गौणतया दर्शितः । अन्ये च शत-
धृष्टाद्या अप्युदाहृताः । ततश्च नायिकानां कन्या-स्वकीया-परकीया
भेदतस्तिसृणां मध्ये स्वकीयापरकीययोर्मध्या-मुग्धा-प्रगल्भा
इतिभेदैः षट् पुनश्च धीरा-अधीरा-अधीराधीराभिर्द्वादश । कन्या
केवलं मुग्धाथस्वीया परोढा चेति त्रिधा इति पंचदश प्रभेदाः । पुन-
रभिसारिकेत्यादयवस्थाष्टकेन विंशत्युत्तरं शतं । अग्रत उत्तम-
मध्यम-कनिष्ठा इति त्रिविधैः षष्ठ्युत्तर शतत्रयी नायिकाभेदाना-
मिति निर्णाय स्वीयोदाहरणं मुख्यतया रुक्मिण्यादिषु गौणतया
दुर्गाव्रतपरासु कामुचित्कन्यास्वपि दर्शितं । परकीयोदाहृतिर्ब्रजे
श्रीराधिकादिषु धन्यादिष्वपि दर्शिता । ततश्च नीरसानां निरसनाय
“बहु वार्यते यतः खलु यत्र प्रच्छन्नकामुकत्वं च । याच मिथोर्दु-
ल्लभता सा परमा सम्मथस्य रतिरिति” भरतमुनि सम्मत्या,
“वामता दुर्लभत्वं च स्त्रीणां या च निवारणं । तदेव पञ्चवाणस्य
सन्धे परममायुधमिति” रुद्रसम्मत्या, यत्र “निषेधविशेषः सुदुर्लभ-

(३)

भत्वं च यन्मृगाक्षीणां । तत्रैव नागराणां निर्भरमासज्यते हृदय-
मिति” संहितासम्मत्या “अनन्यशरणा स्वीया पणहार्या पणा-
गणा । अभ्यास्तु केवलप्रेम तेनैषा रागिणी मतेति” शृङ्गारतिलक-
सम्मत्या च परोदोपत्योरेव सकल सहृदयसाक्षिणो रसनिर्यासा-
स्वादो दृश्यते ततश्च तयोरेव नायकोत्तमत्वमेव निर्वहिरितं ।
तत्राप्यर्वाचीन-साहित्यदर्पणकारादिभिर्यदत्र दोषा आसज्यन्ते तत्र
कारणमधर्म स्पर्श एव तत्परिहारार्थमाह-लघुत्वमिति अत्रोपपत्तौ
कैश्चिद् यल्लघुत्वमुक्तं एतत्प्राकृतनायक एव, तत्रैवोपपत्यस्य वैध-
मात् । तस्य च दुरदृष्टजनकत्वात्तस्य च नरकपातित्वात्पर्यवसाने
दुःखमात्रोपादानत्वेन लघुत्वम् । तथा तच्चेष्टितस्य काव्यनाट्यग-
तत्वेनोपादेयतया स्वादेन “यद्धर्मकृतः स्थानं सूचकरयापि तद्वेत्
इतिन्यायाचर्यणदशायां सभ्यानामपि ताद्रूप्यापत्तेः च विधर्मस्पर्-
शात् । न तु कृष्णे धर्माधर्मनियन्तृचूडामणीन्द्रे धर्माधर्मादि
समस्तवस्तु सृष्टिस्थितिसंहारकारकभूविजृम्भमात्रस्यादिपुरुषस्या-
प्यंशानि स्वयं भगवति श्रीलीलापुरुषोत्तमे नरवपुषि । तथैव तदीय
शक्तिसमुदायमुख्यतमायां ब्रह्मादिनीमहाशक्तौ श्रीगोपिकारूपायां
च न संभवेदेव । तदा तच्चरितारवादकानामपि “विक्रीडितं ब्रजव-
धूभिरिति” “तद्वाग्विसर्गो जनतामविप्लव” इति “तदेवसत्यं तदु-
दैव मंगलमित्यादिभिः” सर्वोत्तमत्वमहाफलश्रवणाच्च । प्रत्युततत्रैव
नायकोत्तमत्वं प्रसंजितमिति । अतएव ग्रंथकृतेव नाटकचन्द्रिकायां
“यत्परोदोपपत्योस्तु गौणत्वं कथितं बुधैः । तत्र गोपीश्च कृष्णं च
विनेति प्रतिपद्यताम्” । अलङ्कारकौस्तुभकृद्भिरपि “अप्राकृते परो-
दारमणी रतिरेव सर्वोत्तमतया भूयसी श्रूयते । न तस्यामनौचि-
त्यप्रवर्तितत्वं । अलौकिकं तु सिद्धे भूषणमिति न्यायात् । तर्का-
गोचरत्वाच्च । तस्मान्न कृष्णेऽयं दोषः किमर्थं नोक्तं रसनिर्यासास्वा-
दनार्थं तेषां सभ्यतया तद्विषयक एव स्वकर्त्ता को रसनिर्यासास्वाद-
स्तदर्थः । यदि कृष्णेऽपि तैर्लघुत्वमुक्तं स्यात्तर्हि तेषां रसनिर्यासा-

स्वादो निर्विषय एव स्यादिति भावः । यद्वा कथंमूले रसनिर्यासा-
स्वादार्थं ह्ययं च लोकगतस्वभक्तजनान् रसनिर्यासमास्वादयितु-
मवतारिणि “स्वदेशचौरादिकाद्वेतुसण्ताद्वयभः” तस्य तु स्वकर्त्त-
को रसनिर्यासास्वादः प्रकटलीलायामप्रकटलीलायां च सदैव
वर्त्तत एव । ता एव जन्मादिलीलाः प्रपञ्चजनेषु कृपया दर्शिता-
श्चेत् प्रकटास्ता एव चक्षुर्भिस्तिरोधापिताश्चेदप्रकटा उच्यते न तु
प्रकटाप्रकटयोर्लीलयोः स्वरूपतः किञ्चिद्वैलक्षण्यमस्तीति । यदुक्तं
भागवतामृते—“अनादिमेव जन्मादिलीलामेष तथाद्भुतां । हेतुना
केनचित् कृष्णः प्रादुर्गुर्यात्कदाचन” इति । तथा च श्रीवैष्णव-
तोषण्यामपि दन्दवक्रवधानन्तरं “रामेण साद्धं मथुरां प्रणीते”
इति “तास्ताः क्षपाः प्रेष्ठतमेनेत्यादिना ” “यथा समाधौ मुनयोऽ
न्धितोये” इत्यन्तेन व्याख्यानेन । तद्यथा—अत्र विगाढभावेन
तोत्राधयः सत्यो मतोऽन्यं सख्यादिकमपि न सुखाय ददृशुः ।
ततश्चाधुना तु सुखाय पश्यतीति वियोगो नास्तीत्यर्थः हे उद्धव !
भवद्द्वारा तासु संदेशानुसारेण श्रीवृन्दावनस्यैवाप्रकटप्रकाशविशेष-
प्रवेशात्तासां नित्यं मत्प्राप्तेरिति भावः । ननु पूर्वोक्तानुसारेण गोलो-
काख्ये वृन्दावनस्य प्रकाशविशेषे तस्मिन्नस्ति प्रकटलीला सदृश्येवा-
प्रकटलीला । तर्हि कथमुभयोरेकत्र समावेशः उच्यते प्रकटलीलायाः
अप्रकटप्रकाशस्य चाभेदेनैवाप्रकटलीलाप्रकाशौ प्रतिपन्नाविति दृश्यते ।
तदनन्तरपद्येन ‘ता नाविदन् मय्यनुरक्तविद्धधियः स्वमात्मानमद-
स्तथेदम् । यथा समाधौ मुनयोऽन्धितोये नद्यः प्रविष्टा इव नाम
रूपे ।’ अस्यार्थः तास्तथाभूता विरहोत्कण्ठातिशयेनाभिन्त्यक्त-
दुर्द्धर्महाभावाः सत्यः । अथ कदाचित् तद्दर्शनार्थं गते मयि लब्धो
योऽनुपगो महामोदनाख्यव्यक्तिकारी पुनः पुनः संयोगस्तेन बद्धा
धीर्यासां तासां तथा भूताः सत्यः, स्वं ममतास्पदं आत्मानमहंका-
रास्पदं च अदः प्रकटलीलानुगतत्वेनाभिमतं यथा स्यात्तथा
नाविदन् किंतु द्वयोरैक्येनैवाविदुरित्यर्थः । प्रकटप्रकाशस्य तल्ली-

(५)

लायाश्चाभेदेनैवाप्रकटनद्वयमजानन्निति विवक्षितम् । ततश्च नाम-रूपं च तस्मिन्स्तन्नामरूपात्मनि प्रकटप्रकाशविशेष प्रविष्टा इव न तु प्रविष्टा वस्त्वभेदादित्यर्थः । तत्र प्रकटाप्रकटलीलागतयो-
 न्नामरूपयोरभेदे दृष्टान्तः-यथा समाधौ मुनयोऽब्धितोये इत्यादि श्रीकृष्णसन्दर्भे अष्टपंचाशदधिकशततमे वाक्ये-अयं हि सर्वभूता-
 नामादिरन्तोऽतरं वहिरित्यादि द्वाभ्यां । यथाऽहंकारो भूतादिः सर्वेषां भूतानां खादीनामाश्रन्तादिरूपः । अहङ्कारांतर्गतान्येव खा-
 दीनीत्यर्थः । यथा च खादिनी भूतानि भौतिकानां शरावसैधवादी-
 नामाश्रन्तादिरूपाणि, खादीनामन्तर्गतान्येव तानीत्यर्थः । एवं एतानि प्रकटलीलागतेषु परमार्थसत्यवस्तुषु वर्तन्ते युष्माकं प्रकट-
 लीलाभिमान्यहंतास्पदमात्मानं अप्रकटलीलाभिमान्यहंतास्पदेना-
 त्मना ततो न्याप्तः । एवमिदंताहंतास्पदं यदुभयं तच्च पुनः परे प्रकटं
 अदृश्यमानेऽपि तस्यां वृन्दाटव्यां विहरमाणेऽक्षरे निन्यमेव युष्मत्संगिनि मयि आश्रयरूपे आ भाति विराजमानं पश्यतेति ।
 तस्मात् प्रकाशभेदादेव तद्वत्त्वादि भेदव्यपदेशो विरहसंयो व्यव-
 स्था चेति इदमत्रापि व्यक्तमितिदिक् । तस्मादस्माद्वृन्दावनादप्रकट-
 प्रकाशस्य सर्वात्मत्वैकरूप्ये सत्येव तेषां ब्रजवासिनां तत्र वासः संभवेदिति
 यथारीत्या प्रकटे श्रीकृष्णस्य तत्र पित्रादीनामन्येषां सपरिवाराणां गोपादीनां च
 यत्प्रकारकस्थानं तथैवाप्रकटप्रकाशेऽपीति प्रकरणार्थः सिद्धः । लघुत्वमत्रेत्यत्र केचनैवं व्याचक्षते ।
 तद् यथा-तत्राशंक्य समादधाति लघुत्वमिति-पदद्येन अत्र चाशंकानुवादो लघुत्वमत्र यत्प्रोक्तमिति । अयमर्थः ननु “शृंगो हि
 मन्मथोद्धेदस्तदागमनहेतुकः । उत्तमप्रकृतिप्रायो रसः शृंगार इष्यते” ।
 इत्यनर्वाचीननिरुक्तानुत्तमप्रकृतिप्राये इत्युक्तेरुज्ज्वलशुचिप-
 र्याये रसेऽस्मिन्नधर्ममयमौपत्यमंगत्वाय नोचितं । जारः पाप-
 पतिः समाविति त्रिकाण्डशेषादिदर्शनेन नाम्नोऽपि तस्य निन्दा-
 गर्भमेव लभ्यते । नाट्यालंकारशास्त्रयोस्तु तस्य न्यङ्कार एव श्रूयते
 यदुक्तं तन्मतं संगृह्य साहित्यदर्पणे-उपनायकसंस्थायामित्याद्येन

(६)

शृंगारेऽनौचित्यमित्यंतेन च । यन् बुत्राप्यौपपत्यवर्णनं दृश्यते
तत्खलु नेष्टा यदग्निरसे इति दर्शयिष्यमाणवृद्धमतप्रामाण्येनांगि-
नि रसे तु न स्यात् किंतु अंगे रसे सोपहासमेवेति गम्यते । तत्पक्षं
पुष्पता श्रीभगवता च “अरवर्ग्यमयशस्यं च फल्गुवृच्छं भया-
बहं । जुगुप्सितं च सर्वत्र ह्यौपपत्यं कुलस्त्रीया” इत्यनेन जुगुप्सित-
पर्यन्तदोषा उक्ताः । श्रीत्रजदेवीभिरपि-“निःस्वं त्यजन्ति गणिका
जारा भुंक्तारतां स्त्रिय” इत्यनेन तथैवानुमतं श्रीपरीक्षितापीत्वेव-
मेवाक्षिप्तम् । “आप्तकामो यदपतिः कृतवान् वै जुगुप्सितमिति”
तदेवमत्र लघुत्वं जुगुप्सितत्वमिति यावद्व्याख्येयं । अतो मुनि-
नापि रत्नावलीनाटिकावद् यजातिचरितवच्च दाम्पत्याय सपत्न्या-
दिकृतवाक्यमाणत्वादिना दाम्पत्य एव रतिः प्रशस्ता स्यादित्येवमतं
नचौपपत्ये प्रशस्या स्यादिति । तर्हि कथं तेन तद्वाक्येनौपपत्य-
रतिः प्रशस्यते तत्र समाधानं तत्तु प्राकृतनायके कृष्णादवरनायके
इत्यर्थः कृष्णे त्वलघुत्वे हेतुः रसनिर्ग्यासेति । रसनिर्ग्यासो रस-
सारः मधुररसविशेष इत्यर्थः । एतदुक्तं भवति अत्रावतारसमय
एव औपपत्यरतिः प्रत्यायिता तदेतद्दर्शके प्राचां मतेऽप्याशंसया
रसविधेरवतारितानामिति तस्यैव तासामपि तदर्थं रसाभावादार्थ-
मेवावतार इति निर्द्देश्यते । तस्य तासां चेत्याद्यानन्तरं तदेवं श्रीम-
द्वद्ववाक्ये ब्रह्मसंहितावाक्ये च तेन तासां नित्यसम्बन्धापत्तेः
परकीयात्वं न संगच्छते । तदसंगतेश्चावतारे तथात्वप्रतीतिमायि-
ष्येव तथा च स्वयमेव ललितमाधवे दर्शितं पौर्णमासीगार्ग्याः
संवादे-“गार्गी-नूनं गो-अद्भुतादि गो एहि चंदाअलीपहुदीणं
उद्वाहो मा आ एणित्वाहिदो । पौर्णः-अथ किं पतिम्मन्यानां वल्ल-
वानां ममतामात्रावशेषिता तासु दारता यदेभिः प्रेक्षणमपि तासां
सुदुर्घटमिति । तदेव कृष्णेन तासां दाम्पत्ये सत्ये सति परकी-
यात्वे च मायिके सति नश्यत्येवान्ततो मायिकमंत्रतस्तदनाशेऽना-
दित्वे च सृति सत्यमेव स्यात्तद्रूपत्वे च सति रसाभासः स्यादित्य-

(७)

तोऽवतारसमयस्यापरभागे न्यक्ती भवत्येव दाम्पत्यं । स एष
पर्यवसानसिद्धान्तश्च ललितमाधवप्रक्रिययात्र निर्वाहयिष्यति ।
यतो बहुवर्णितविरहव्यावर्त्तनाय नित्यसंयोगमयसिद्धान्तमुक्त्वापि
क्रमलीलारसस्तु तत्र न सिध्यति इति अपरितुष्य संतिप्तादिचतुर्षु
फलरूपेषु विप्रलम्भान्तराऽप्रतिघात्यस्य समृद्धिमत् उद्वाह पर्याप्तस्यो
दाहरणरूपतया प्रमाणी करिष्यते इत्यादि । किं तु न लघुत्वमुक्तं किं
तु महत्त्वमेवेत्याह । न कृष्णे इति तत्र हेतुमाह—रसनिर्यासेति ।
अत्रोच्यते यद्ग्रन्थकृतां परद्वौपत्योर्निर्दोषत्वे प्रत्युत्तरसावहत्वे च
दर्शित-प्रमाणेषु केवलसाहित्यदर्पणीयमतमाश्रित्याप्रामाण्यमभि-
व्यज्य पापाद्याशंकया एव रसाभासत्वमंगीकृत्यान्यथा कल्पते तद-
संगतमेव । श्रीमद्ग्रन्थकृद्भिर्भरतादीनां मतमाश्रयद्भिः साहित्यदर्पणी-
यमतस्य परित्यक्तवान् । तथा च तदीयप्रतिज्ञावचनं नाटकचन्द्रिकायां
‘नातीवसंगतत्वाद्भरतमुनेर्मतविरोधाच्च । साहित्यदर्पणीया न गृहीता
प्रक्रिया प्रायः’ इति ।

ननु सर्व एव ग्रन्थरतल्लिखित एव, अस्माकं तु पापावहत्वाद्
यथा कथञ्चित्तदूषण एव पुरुषार्थ इति चेत् तर्हि श्रीकृष्णेन बाल्ये
पूतनायाः हननं, पौगण्डे वत्सस्य, कैशोरे बृषस्य, देवकीभ्रातृणां
स्वमातुलानां शिशुपालदन्तवक्रयोः पैतृस्वस्त्रेययोरपि च श्रीभागवत्-
शास्त्रप्रसिद्धमेव । भारते च मिथ्याभाषण—युधिष्ठिरपक्षपातसर्वदा
छलाश्रयित्वद्रोणाचार्यवधकारित्व — स्वप्रतिज्ञात्यागित्वादिश्रूयमा-
णानि दोषमयान्येव पापदायिनीति सिद्धयन्ति तत्कर्मणि । न च
तेषां पूतनादीनामसुरत्वे तत्तद्धननं न दोषावहं किन्तु लोकहितार्थं
गोत्राह्वणवालकादीनां रक्षणाय भक्तवात्सल्यत्वेन च गुणावहमिति
वाच्यं बृषासुरवधे इन्द्रस्य सर्वैर्देवर्षिभिः प्रोत्साहितस्यापि महावि-
पत्तेरिति प्रसिद्धेः । यदि च देवत्वेऽपि महेन्द्रस्य विष्णुना मोहित-
स्याऽपि ईदृश्यवस्था तदा श्रीकृष्णस्य नरलीलत्वे ततोऽप्यधिक-
दोषापत्तेश्च । ननु कैर्वा तव बचसा तथा मन्तव्यं यतः श्रीव्यास-

(८)

शुकदेवादिभिः कैरपि तच्चरितानि नोदङ्कितानि, प्रप्युत तच्छ्रवणे-
नापि “य एतत्पूतनामोक्षमि” त्यादिना फलप्रापकत्वेन स्तुतानि ।
एवं चेदिष्टापत्तिरास्माक्रीनैव ।

किंचानया पुराणागमप्रसिद्धया औपपत्यलीलया किमपराद्धं
न च तत्र प्रमाणमस्तीति वक्तुं शक्यं, विक्रीडितं ब्रजबधूभिरिदं
च विष्णोरित्यनेन प्रेमभक्तिप्राप्तिं वक्तुं श्रोत्रोरपि श्रवणात् । ननु
भगवत्प्रेवं तथापि “उत्तमप्रकृतिप्रायो रसः शृङ्गार ईष्यते” इति
निरुक्तेः उज्ज्वलशुचिपर्यायेऽस्मिन् रसेऽधर्ममयस्यौपपत्यस्यानौचि-
त्यात् “जारः पापपतिरिति” त्रिकाण्डशेषान्तस्य नाम्नोऽपि निन्दा-
गर्भश्रवणात् नाट्यालङ्कारशास्त्रयोस्तुतस्य न्यङ्कारस्य श्रुतेः ।
“अखगर्गमयशस्यं” चेत्यादि भगवद्वाक्यात् । “निः स्वं त्यजन्ति
गणिका जारा भुक्तां रतां स्त्रिय” इति ब्रजसुन्दरीवचनात् ।
“आप्तकामो यदुपतिः कृतवान् वै जुगुप्सि तमिति” परीक्षि-
त्तेश्च । लघुत्वं क्षुद्रत्वं जुगुप्सितं पापमित्यादि निश्चयात् विशेष-
पतस्तदवतारावसर एव मायिक्या एव रसस्वादार्थमौपपत्यरीतेः
प्रत्यायितत्वाच्च ।

शमप्रकृतिका वयमौपपत्यप्रसंगमपि श्रोत्रुं न शक्नुम इति
चेत् तर्हि युष्मन्मते शान्तरस एव रसोऽन्ये जुगुप्साऽधर्मादि-
मूलका एवेति न श्रोतव्याः शृङ्गारस्तु नैवास्वादनीयो भवतीति
नखांका ॥ श्यामे इति पद्ये धृष्टनायकस्य श्रीकृष्णस्यांगे ताभिः
कृतान्नखांकां न सोढवता भवता मूलार्थमाच्छादय कृत्यमयात्ररसे
स्वस्यौदासीन्यमेव व्यक्तिकृतं, सा यथा यदद्यपि तच्छ्रीविग्रहे
क्षतरूपा स्वेन संभवन्ति “यत्तु सुजातेति” दृष्ट्या तास्तान्नर्प-
यन्ति च किंतु सुकोमलमुद्रया नखादिना स्पृशन्ति मात्रं तथापि
ये तदाभा सावर्णा उदयन्ते ते च प्रतिनायिकाभिस्तादृशतया
मन्यन्ते । तदनुसारेण कविभिर्वर्ण्यते इति ज्ञेयमित्येषा न चौप-
पत्यपरोद्धयोः श्रीकृष्णब्रजसुन्दरीष्वसद्भावप्रमाणस्येति कदाप्याशङ्क

नीयं । लौकिकवल्लीलाकैवल्यं स्वीकृता श्रीकृष्णेन स्वस्मिन् मयि
 औपपत्ये सति युष्माकं स्व-स्व पतित्यागाद्वैधर्म्यं सति चारवर्ग्यादि
 म्यादिति भयं प्रदर्श्य तासां भावपरीक्षणेन तन्निर्द्धारितात् । एवं
 “जारा भुङ्क्वारतां स्त्रियं” इत्यनेन यथा जारा अग्न्या रतात्त्य-
 जन्ति तथा वयमपि तत्र रता अंततो जारेण तेन त्यक्ता इव तस्यै-
 व फलितार्थत्वात् । एवं परीक्षितापि परदाराभिमर्शनमित्याद्युक्त्वा
 तयोरेव निश्चितत्वात् । श्रीशुकदेवेनाऽपि “धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट”
 इत्यादिना परदाराभिमर्शनमेवांगीकृत्य तेजीयस्त्वाद्यादि दृष्टान्तेन
 तथावधारणात् । हरिवंशविष्णुपुराणादिष्वेवमेव वर्णनाच्च अस्तु
 नाम तर्हि निर्दोषत्वेऽधर्मपापाद्यनावहत्वे प्रमाणं ब्रूहीति ब्रूषे
 शृणु परीक्षितप्रश्नानन्तरं श्रीशुकदेवेन ‘धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट’ इत्या-
 रभ्य कुशलाचरितेनैषामिह चार्थो न विदद्यते । विपर्ययेण वानर्थो
 निरहंकारिणां प्रभो । किमुताखिलसत्त्वानां तिर्यङ् मर्त्यदिवौकसां ।
 ईशितश्चेशितव्यानां कुशलाकुशलान्वयः” । तदन्ते यत्पादपरा-
 गेत्यादिना भक्तानां स्वैराचारत्वमुक्त्वा कैमुत्यं प्रदर्श्य अध्यायान्ते
 “विक्रीडितं ब्रजबधूभिरि” त्यनेन बक्तश्रोत्रोरुभयोरपि यथा कथ-
 ञ्चित् कथनश्रवणाभ्यामेव हृद्रोगरूपकामादौ सत्येव परम्याः प्रेम-
 लक्षणाया भक्तेर्लाभ इति कैमुत्येन यदीयं विक्रीडितमीदृशप्रभावं
 न तत्र दोषस्पर्शगन्धोऽपि कृतज्ञसुधिभिरभिधेयः । प्रत्युतं तच्छ्र-
 वणानन्तरं सत्त्वरैपि तत्परैर्भवितव्यमिति विधिशोक्तः ।

किञ्च तादृश-राजसभायां परीक्षित प्रश्नानन्तरं श्रीमन्मुनी-
 न्द्रेण तत् समक्षं प्रहर्ष्यतारानिकरायमानानां श्रीमद्व्यासनामदा-
 दीनां साक्षात् सिद्धान्त-सुधारस-पूरेण तत्सदसि चकोरान् सरसी-
 कृत्य यन्निरधारि । तथैव श्रीकृष्णसन्दर्भे गोपीनां तत्पतीनां चेति
 पदचव्याख्यानेन स्वारसिकी लीलाप्रसंगे च यत्सुनिश्चितम् ॥
 तत्राप्यव्याचीना विप्रतिपद्यन्ते केवलं बलेनैव स्वमौढ्यस्य ततोऽ-
 ऽप्रतिपत्तये च । आः किं वान्यैः प्रमाणैः श्रीमज्जीवगोस्वामिचरणैः

(१०)

सर्वं वैमत्यं निराकृतं श्रीभक्तिसन्दर्भे-यथा-कामाद्वेषाद्भयात् स्नेहा-
द् यथा भक्त्येश्वरे मनः । आवेश्य तदघं हित्वा बहवस्तद्गति-
गताः ॥ ३२० ॥ यथा विहितया भक्त्या ईश्वरे मन आवेश्य तद्-
गतिं गच्छन्ति तथैवाविहितेनापि कामादिना बहवो इत्यर्थः । तदघं
तेषु कामादिषु मध्ये यद्द्वेषभययोरघं भवति तद्वित्तैव भय-
स्यापि द्वेषसंवलितत्वादघोत्पादकत्वं ज्ञेयम् ॥

अत्र केचित् कामेऽयघं मन्यन्ते । तत्रेदं विचार्यते । भगवति
केवलः काम एव पापावहः किम्वा पतिभावयुक्तः अथवा उपपति-
भावयुक्त इति । स एव केवल इति चेत् स किं द्वेषादिगणपाति-
त्वात् । तद्वत् स्वरूपेणैव । परमशुद्धे भगवति यदधरपानादिकं
यच्च कामुकत्वारोपणं तेनातिक्रमेण वा पापश्रवणेन वा ।
नाद्येन । उक्तं पुरुस्तादेतत्ते चैद्य इत्यत्र द्वेषादेर्यक् तत्त्वात्
तस्य च स्तुतत्वात् । अतः प्रिया इति स्नेहवत् कामस्यापि प्रीत्या-
त्मकेन तद्देव न दोषः । तादृशीनां कामो हि प्रेमैकरूपः । यत्तु सु-
जात इत्यादिना आनुकूल्ये एव तात्पर्यदर्शनात् । सैरिन्ध्यस्तु
भावो रिरंसाप्रायेत्वन श्रीगोपीनामिव केवलतत्सुखतात्पर्याभा-
वात्तादपेक्षयैव भिद्यते न स्वरूपतः । सानङ्गतप्तकुचयोरित्यादौ
अनन्तचरणेन रुजो मृजन्तीति परिरभ्य कान्तमानन्दमूर्ति-
मिति कार्यद्वारा तत् स्तुतः । तत्रापि सहोष्यतामित्यादि तदेव
तम्य कामद्वेषादिगणान्तः पातित्वं परिकृत्य तेन पापावहत्वं परि-
हृतमित्यन्तम् ।

अथ कामुकत्वारोपणाधरपानादिरूपस्तत्र व्यवहारो नाति-
क्रमे हेतुः । यतो लोकवल्लीलाकैवल्यमिति न्यायेन लीला तत्र
स्वभावत एव सिद्धा । तत्र श्री भूलीलादिभिस्तस्य तादृशलीला रस-
मोहस्वाभाविकं भगवत्ताद्यननुसंधानमपि कामुकत्वादिमननमपि
च तदभिरुचितत्वेनैवाभिगम्यते । तथा तत् प्रेयसीनामपि तत्स्वरूप-

(११)

शक्तिविग्रहत्वेन परमशुद्धरूपत्वात् । तदितरे न्यूनत्वाच्च तदधरपाना-
दिकमपि नानुरूपं । पूर्वयुक्त्या तदभिरुचितमेव । न च प्राकृत-
रामाजने दोषः प्रसंजनीयः । तदयोग्यं तादृशं भावं स्वरूपशक्ति-
विग्रहं च प्राप्यैव तदिच्छयैव तत् प्राप्तेः ।

अपापश्रवणेन च न पापात्रहोऽसौ कामस्तदश्रवणादेव ।
अतः पतिभावयुक्ते च तत्सुतरां न दोषः प्रत्युतं स्तुतिः श्रूयते ।
संपर्यचरन्तं भक्त्या पादसंवाहनादिभिः । जगद्गुरुं भर्तृबुद्ध्या
तासां किं बर्ण्यते तप इति महानुभावमुनीनामपि तद्भावः श्रूय-
ते । मध्वाचार्यधृतं महाकौर्मवचनं-अग्निपुत्रा महात्मानस्तपसा
स्त्रीत्वमापिरे । भर्तारं च जगद्योनिं वासुदेवमजं विभुमिति ।
अतएव वन्दितम् । पतिपुत्रसुहृद्भूतमित्यादिना । अथोपपतिभा-
वेन च पापात्रहोऽसौ यत्पत्यपत्यसुहृदामनुरित्यादिना ताभिरेवो-
त्तरितत्वात् । गोपीनां चेत्यादिना श्रीशुकदेवेन च । महानुभावानां
मुनीनामपि तद्भावो दृश्यते । यथा पाद्मोत्तरखण्डवचनं - पुरा
महर्षयः सर्वे दण्डकारण्यवासिनः । दृष्ट्वा रामं हरिं तत्र भोक्तु-
मैच्छन् सुविग्रहम् । ते सर्वे स्त्रीत्वमापन्नाः समुद्रताश्च गोकुले ।
हरिं संप्राप्य कामेन ततो मुक्ता भवार्णवात् । अतः पुरुषेष्वपि स्त्री-
भावोद्भवाद्भगवद्विषयत्वात् न प्राकृतकामो किंतु साक्षान्मन्मथ इति
श्रवणात् आगमादौ तस्य कामत्वेनोपासनाच्च भगवदेकोद्भाविता
ऽप्राकृतकाम एवासौ इति ज्ञेयम् । श्रीमदुद्धवादीनां परमपि श्री-
गोपीसदृशभावलिप्सा श्रूयते ।

एताः परं तनुभृतो भुवि गोपबन्ध इत्यादौ । किं बहुना श्रुतीना-
मपि तद्भावो बृहद्वामने प्रसिद्धः । यतस्तत्र श्रुतयोरपि नित्य-
सिद्धगोपिकाभावाभिलाषिण्यः सत्यः तन्त्रेणैव तद्गणान्तः पाति-
न्यो वभूवुरिति प्रसिद्धिः । एतत् प्रसिद्धिसूचकमेवंतदुक्ता ताभिः
निभृतमरुन्मनोऽक्षदृढयोगयुज इत्यादि । विस्पष्टश्चायमर्थः । यद्ब्र-

(१२)

ह्याख्यं तत्त्वं शास्त्रदृष्ट्या प्रयासबाहुल्येन मुनय उपासते तदर-
योऽपि यत्न्य स्मरणान्तदुपासनां विनैव ययुः । तथा स्त्रियः
श्रीगोपसुभ्रूवस्ते तत्र श्रीनन्दनन्दनरूपस्य उरगेन्द्र देहतुल्यौ यौ भुज-
दण्डौ तत्र विषक्तधियः स यस्तवैवाङ्घ्रि सरोज सुधा स्तदीगस्प-
र्शविशेषजातप्रेममाधुर्याणि ययुः । वयं श्रुतयोऽपि समदृशः
स्तुल्यभावा सत्यः समास्तादृशगोपीकात्वप्राप्त्या तत् साम्य-
माप्तास्ता एवाङ्घ्रिसरोजसुधा मया तावत्य इत्यर्थः । अर्थवशा-
भिक्तिविपरिणामः । अङ्घ्रीति सादरोक्तिः अत्र तदरयोऽपि
ययुः स्मरणादित्यनेन भावमार्गस्य भट्टि त्यर्थसाधनत्वं दर्शितम् ।
समदृश इत्यनेन रागानुगाया एव साधकतमत्वं दर्शितम् ।
अन्यथा सर्वसाध्य साधन विदुष्यः श्रुतयोऽन्यथैव प्रकर्त्तोरन् ।
श्रुत्यनुभवसिद्धा तासां मानुष्ये मैव निरवाधीति प्रकरणार्थश्च ।

ननु तत्र सिद्धान्ताः फलितार्था अभविष्यन्नेव । ययौपपत्य-
परोढत्वयोः सत्यत्वमभविष्यन् । वयं तदेव मन्यामन्यामन्बहे
तस्मान्मूलएव कुठारः । पतिश्चोपपतिश्चेत्यारभ्य सर्वस्मिन्नेवो-
ज्ज्वलनालमणौ मुहुर्मायिकत्वेनैव व्याख्यातम् । तद्दिग्दर्शनं यथा
पतिश्चोपपतिश्चेत्यत्र पतिः पुरवनितानां द्वितीयश्च ब्रजबनितानां
द्वितीयत्वं तु यद्यप्यासामवतारावसर एव प्रत्यायितं नतु सर्व-
देत्यादि । रागेणोल्लङ्घयन्नित्यत्र स्वजन प्रेम वशावतार लीला-
वेशेन नित्यलीलामननुसन्धानस्य तासां च लीलाशक्तिर्माययैव
रसविशेषपरिपोषाय तासु परकीयात्वं प्रत्यापयय्य तत्रौपपत्या-
यितवतीति सङ्केतीकृतेत्यत्र यत् कस्यचित् कवेः पद्यमुदाहृतम्
खलु तादृगौपपत्यप्रत्यायनायोत्प्रेक्षमाभिति ।

लघुत्वमत्रेत्यत्र एतदुक्तं भवति । असावतारसमये तथा
प्रतीतिर्मायिकयेव ॥४॥ श्रीकृष्णेन तासां दाम्पत्ये सति परकीया-
त्वेच मायिकत्वे च सति नश्यत्येव ततो मायिकम् ॥५॥

(१३)

कन्यकारच परोदाश्चेति सोऽयं चावतारलीलादृष्ट्यैव व्यवहारो न वस्तुतः॥६॥ नासूयन्निति । तस्य श्रीकृष्णस्य नासूयन्निति । तस्य कृष्णस्य माययापि स्वे स्वे दाराविवाहसमयत एव मायारचितास्तान् इत्यादि । पतिम्मन्यान प्रति माया प्रतिमाया प्रकटयाभास ॥७॥ गोप्यैर्व्युद्भो इत्यपूर्ववद्भ्रमानुवाद एव । शक्तिमेवादृत्य तदुपयुक्तां लीलाशक्तिमेवादृत्य तद्वारावतारितानां नित्यप्रेयसीनामेव तासां परदारत्वभ्रमेण यथारसस्य विधिः प्रकारविशेषः संभवति तथा जन्मादिलीलाया नित्यत्वं विस्मयार्थं प्रकटीकृतानामित्यर्थः । तदाशंसया हेतुः रसिकेति, तस्माल्लीलाशक्तिप्रेरिततया कृतं तासां परोदात्वप्रत्यायनं परसंगत्यभावश्चेत्यादि । समृद्धिमदुदाहरणे-तत्र परिमृग्यतेत्यत्र सर्व्वे ज्ञातश्रीकृष्णविषयकाशक्त्यानन्तरं यदि तासामन्यभक्तो कात्वं वृद्धो मिथ्यात्वेन व्यक्तं स्यात्तदैव जुगुप्साव्यत्यस्थापयनवत् धार्म्मिकस्य श्रीब्रजराजस्य सभायां अपि धार्म्मिकरीत्या स्थापयित्वा, ततः 'योगमायामुपाश्रित' इति "नासूयन् खलु" इत्यादिन्यायेन यस्याः मायाया सोऽयं प्रपञ्चः सैव समाधात्री । निजेश्वरलीलाकौतुकात् तत्तत्कल्पितवती मध्ये चासूयापरिहारार्थं समाहितवतीति गम्यत इत्यादि । कृष्णसन्दर्भगोपालचम्पूमनु चैव विवेचितं बहुशः ।

स्वरूपसिद्धानां भगवद्वाराणामपरकर्त्ता कवलात्कारपरिहारार्थतत्तदाकारनया ये स्वद्वारास्तान् स्वे इत्यादि, एतदुदितमुपलक्षणं, तदेव तासां पतिम्मन्येष्वेवाह-शयनादिष्वेव च स्वरूपसिद्धायावन्निरे अन्येषु चान्यदा एवेति गम्यते तावदेव युक्तं तासु च मर्यादारक्षणोत्कण्ठावद्धनैकप्रयोजनत्वान्न स्या इत्यादि । चम्पूमा च पोर्णमास्याकारिताया यशोदानन्दिन्याः सिंहवाहिन्या च्यः पूर्व्वत एव तावदुभयविधात्र नापूर्व्वतया मन्तव्याः । पूर्व्वमा सजातीया हि द्वितीया मयैव निर्मिताः, संज्ञायाश्च यावत् स्त्यास्तन्माया कल्पितावच्च । अत्र श्रीब्रजराजं प्रति तथा वणयितव्यत्वात्

(१४)

नायं श्रियोऽग इत्यत्र पूर्वोक्तमायामात्रव्यतितान्यथात्वमेव द्रढ्यतीति ६ अथ नित्यप्रिया इति नित्यप्रियाणां मायां विना कथमुपपत्तिः स्यात् १० नेष्टा यदङ्गिनीति नित्यप्रेयसीनां तासां यथा रसस्य विधिरित्यत्र बहुत्र ११ समृद्धिमत्प्रवृत्त्यगद्यपद्यमयं बहुशो निर्णीतं । तदन्ते च यथा अथ कंसवधात् प्राचीनानां लीलानां सद्व्यस्तनतां मत्वा यदुपासनं क्रियते तत्खलु एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहत्तुर्ब्रजे । निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्मकटोत्प्लवनादिभिरित्यादिरीत्यावतारलीलावत् पूर्वावतारलीलावत् पूर्वमतीतानामपि तां तां निजलीलां भक्तभक्तिविशेषानुरोधेन तदा तदा करोतीत्येव मन्तव्यम् । त्वं भक्तियोगपरिभावित इत्यादेः ।

तत्र बाल्यलीलोपासना ग्रहिला अपि दृश्यन्ते । किंतु श्रुतेक्षितपथत्वेनैव ता द्रष्टव्या न तु स्वमनोरथमानकल्पितत्वेनेति गम्यते । तत्र स्वेच्छया रचिताया अपि संभोगलीलायाः सम्पन्नत्वं एव सम्मतं न तु समृद्धिमत्त्वं, महाप्रवासरंकारानन्तरभावित्वाभावात् अत एव कासाञ्चिद्लीलानां प्रकट प्रकाशगत तुल्यानां तत्तन्मन्त्रपालकसंप्रदायाविच्छिन्नपरंपरा सु रोधेन नित्या स्थितिरेव गम्यते न तु सर्वथासामपि प्रकटलीलानां कालियहृदप्रवेशलीलानां महादुःखमयत्वेन कासाञ्चिदन्यासामपि मुहुरागतभयव्याकुलीकृतत्वेन प्राकृतमिश्रत्वेन विरोधात् “योग एव भवेदेष विचित्र कोऽपि मादन” ते योग एवेति सखेदानामेव तासामुपादानेन सहस्रधीसख्योल्लेखनेन च प्रत्याख्यानात् प्रत्ययि तासां नित्यत्वे चित्रतुल्यता प्राप्या लीलात्वहानाच्चेति इत्यादि नेष्टा यदङ्गिनीत्यत्रासमृद्धिमत्प्रथष्टके कृष्णसन्दर्भे गोपालचम्पूमनु च विवृतं तत्तद्व्याख्यानां सारो यथा नेष्टेत्यत्र, तदुक्तं साहित्यदर्पणकारेण परोढां वर्जयित्वेत्यादि । तदेतच्च गोकुलाब्जदृशां कुलमन्तरेणेति तास्तु स्तुता इत्यर्थः आशंसयेति, तादृशक्रमलीलासाध्यत्वेन रसविशेषास्वादानाय सर्वशक्तितां सर्वेश्वरतामप्यनादृत्य तदुपयुक्तं

(१५)

लीलां प्रवर्त्तिताः, स्वस्वपतिगृहमनुवर्त्तिता । परास्तु कृष्णमात्र-
पतिपरायणाः स्व स्व पतिगृहमित्यादि ।

अत्रेदं विचार्यते, अति-स्मृति-श्रीभागवतानां ख्याततया श्रीमन्म-
ध्वाचार्य-श्रीरामानुजाचार्य-श्रीबल्लभाचार्यचरणैर्विबृतानां श्रीभ-
गवल्लीलानां मायिकत्वं कियद्दिनस्थायित्वं यत्पौनः पुन्येन शतवृ-
त्तितया कंठरवेणैवाचाते । तत्रैवं पृच्छामः तत्किमैन्द्रजालिका-
र्यत्वादिन्द्रजालवन्मायिकं किं वा अज्ञानकल्पितशुक्तिरजतव-
द्वहिरंगायाः मायाख्यायाः शक्तेः कार्यं अथवा लीलाशक्तिकृतं
सर्वम् । नादयं ऐन्द्रजालिकस्य नयनादेः पृथक्त्वेन साबधानतया
स्थितस्यान्यदीयव्यामोहनार्थमेव तत्तत्कृतेः प्रकटमभूत् न तु
स्वस्य तदाविष्टत्वं प्रकृते तु नायिकानायकयोरुभयो रूभयोरपि तत्र
तत्राविष्टता भवतैव सुप्रथितैव । नापि द्वितीयं यत्र यत्र श्रीकृष्ण-
लीला तत्र तत्र मायासम्बन्धाभावाम् । माया परै त्यभिमुखे च
विलज्जमानेति द्वितीयस्कंधसिद्धान्तितत्वात् । वैष्णवतोषण्यां
यशोदामोहन-रासादिलीलायां तथैव समाहितत्वात् । श्रीभगवत्स-
न्दर्भे च श्रियायुक्त इत्यस्य व्याख्यानेऽन्तरंगवहिरंगशक्त्योरवता-
रणानन्तरं पूर्वस्यां भगवति विभुत्यादि विस्मृतिहेतुर्मातृभावादि
प्रेमानन्दविशेष इत्युक्तत्वात् । न च तस्यास्तस्मिन् भावे तथा विस्मृ-
तिहेतुत्वमिति वाच्यं । विभुत्वादि मातृभावादि इति द्वयोरप्या-
दिशब्दग्रहणात् सर्वेषु एव रसेषु तथा विस्मृति-प्रेमानन्दमये राव-
श्यकत्वाच्च । नापि तृतीयां लीलाशक्तेः स्वरूपशक्तित्वात् । स्वरूप-
शक्तिप्रकाशितत्वस्य नित्यत्वस्य च मिथो हेतु मत्रा ज्ञेयेति भगव-
त्सन्दर्भे न विद्यते यस्य चेति गजेन्द्रमोक्षणीये पद्ये व्यख्यातत्वात्
ननु कासाञ्चिदेव लीलानां मायिकत्वं वयं मन्यामहे न तु सर्वासा-
मेव । परोदोषपत्योस्तु कंठरवेणैव वदामोऽन्यासां कालियदमनादि
कासाञ्चित् प्रच्छन्नतया भक्तहृदयव्याकुलीकत्वप्राकृतमिश्रवादि-
दोषदर्शनात् अवतारलीलाया असर्वदिकत्वात् कादाचित्कत्वा-

च्चेत्तथात्वे पर्यवसानं स्यादस्तु नाम अप्रकटे भोगनाम्नि नित्ये
 घाम्नि स्वारसिकी मन्त्रमयी भेदाभेदाभ्यां नित्यत्वेन नित्यस्थिति-
 त्वेन नित्यलीला विराडान्त एव ताभ्यामिव सर्वाभीष्टसिद्धि र्भवि-
 ष्यत्येवेत्यलमनयावतारलीलाया, सत्यं सत्यं एवं चेत्तर्हि स्थाली-
 पूलाकन्यायेन सर्वासामेव लीलानामसत्यत्वमेव कथं न स्यात् ।
 भो ! स्यादेव यतः कंसवधात् प्राचीनानामिति व्याख्यातत् प्रत्या-
 ख्यानात् लीलात्वहानाच्चेत्युक्तत्वाच्च । किं च एका नित्या अपरा
 अवतारलीलात्वेनोक्ता अतो नित्यानुयोगितया अनित्यत्वमुक्तमेवेति
 परामृश्य साधुभिः भोगो नित्यस्थितिलीलायानुसंहरते कदाप्यनेन
 पद्मपुराणीयवचनेन लीलामात्रायैव तथात्वं कृष्णसन्दर्भे दर्शित-
 मेवेति किं पिष्टपेषणया, ननु धन्याः स्य भो ! धन्या यतः श्रीकृ-
 णसम्बन्धिलीलाजातं कदाचित् सत्यत्वेन कदाचिदसत्यत्वेन
 कदाचिन्नित्यत्वेन च व्याहरथ तत्रापि कदाचित् कासाञ्चित् कदाचित्
 सर्वासामेवेति भवदाशय एवागमाभिर्दुर्वोधः । न च परदोषपतित्वं
 भवदसम्मतं प्रत्युत परमाभीष्टत्वेनैव मुहुः स्थापितत्वात् नित्यलो-
 केऽपि तयोः स्थितिश्च भवतैत स्थापिते सति वद कथ मायिकत्वं
 वक्तुं शक्यते ननु परदोषपत्योर्नामापि मया अस्लीलत्वापपर्या-
 यत्वाच्च मोक्षार्थ्यते, यथोक्तं पतिश्चोपपतिरितिव्याख्यायां पतिः पुर-
 वनितानां द्वितीयस्तु ब्रजवनितानामिति द्वितीयस्त्ववतारावसर एव
 इत्यादिना द्वितीयशब्देनैवोक्तं नतूपपतिशब्देन उपसंहितं च अथ
 प्रोषितभर्तृका इत्यत्र हि यस्य नामाप्यश्लीलतया नोच्चार्यते
 इत्यादिना श्रीकृष्णसन्दर्भे तु “मत्कामा रमणं जारमि” त्यस्य
 व्याख्यातव्यं तदेवमेवोक्तं “तमेव परमात्मानं जाबुद्ध्यापीति”
 जारबुद्ध्यापीति या जारवादिनः कल्पना सा तु असत्यैव अनर्ह-
 त्वादिना तथात्व पूर्वापराननुसंधायिनमत्रेत्यत्र धर्म—व्यतिक्रमो
 दृष्ट इत्यभ्युपगमवानङ्गीकृत्येऽपि तासां राजानूदितवहिर्मुखमत-
 तत्परदारत्वे परितोषमप्राप्य तदपि खंडयन् सिद्धान्तान्तरमाह-

गोपीनामिति इत्यादिभिराक्रुष्टुं चेति । तत्कथं मया नित्यलीलायां
तस्य स्थितिर्वक्तव्या, उक्तं चेदुपन्यस्यतां पृथपराननुसन्धाग्निन् !
शृणु सावहिततया भक्तिसन्दर्भे रागानुगाप्रकरणे कामाद्वेषादि-
त्यस्य व्याख्यायां परकीयोपपत्त्यो निर्दूषणत्वे यथा भवता ग्या-
पितं तत्सर्वं पूर्वमेव दर्शितं विशेषतस्तत्रैवाते श्रीमदुद्धवादीनां
परमभक्तानामपि गोपीभावलिप्सा श्रूयते । “एताः परं तनुभृतो
भुवि गोपवध्व्य इति”, “आसामहो” इत्यादि किं बहूना, श्रूतीना-
मपि तद्भावो बृहद्वामने प्रसिद्धः । यतरतत्र श्रुतयोऽपि तदगणान्तः
पातिनो वभ्रुर्नित्यसिद्धगोपिकाभावाभिलाषिण्यः सत्य इति प्रसि-
द्धिरित्यादि तथेव श्रुतिभिरपि श्रीकृष्णनित्यधाग्नि ता दृष्टा इति
बृहद्वामने प्रसिद्धमिति तत्प्रघटकश्च कृष्णसन्दर्भे यथा-“आनन्द-
रूपमिति ते यद्विदन्ति पुराविदः । तद्रूपं दर्शयामाकं यदि देयो
वरो हि नः । श्रुत्वैतद्दर्शयामास स्वलोकं प्रकृतेः परम् । केवलानु-
भवानन्दं दिव्यमक्षरमव्ययम् । यत्र गोवर्द्धनो नाम सुनिर्भ-
रदरी वृतः । रत्नधातुमयः श्रीमान् सुपद्मिगणसंयुतः । यत्र निर्मल-
पानीया कालिन्दी सरितां वरा । रत्नवद्धोभयतटा हंसपद्मादि
संकुला । शश्वद्रासरसोन्मत्तं यत्र गोपी कदम्बकं । ततः कदम्बक-
मध्यः किशोराकृतिरच्युत” इति । न च ता गोपानां पत्न्यो न
भवन्ति किंतु गोपजातिस्त्रिय इति बाच्यं, अग्रे वेदानां “यथा
त्वल्लोकवासिन्यः कामतन्त्रेण गोपिका । भजन्ति रमणं मत्वा चिकी-
र्षाजनिनस्तथेति” प्रार्थनान्तरं भगवता प्रार्थनानुरूपवरदानात् ।
यथा-“जारभावेन सुस्नेहं मुददं सर्वतोऽधिकमि” त्यादि । गोविन्द-
वृन्दावननाग्नि वृद्धगोतमीये श्रीकृष्णस्य श्रीमुखवाक्यस्य श्रीकृ-
ष्णसन्दर्भे प्रमाणितत्वात् तद्यथा-इदं वृन्दावनमित्यारभ्य “अत्र
या गोपपत्न्यश्च निवसन्ति ममालये । योगिन्यस्ता मया नित्य-
मिति” । न वात्र व्याख्यान्तरावकाशलेशोऽपि “पत्युर्नो यज्ञसंयो-
गे” इति पाणिन्यनुशासनात् “पत्नी तत्कर्तृव्यज्ञस्य फल-

(१८)

भोक्तीति' सिद्धान्तकौमुदी निरुक्तेष्वच । ननु सवमेतदास्वीकुम्भहे, य-
दाप्रकटप्रकटयोरैक्यरूपेणैव तत्तल्लीलाया नित्यस्थितेरेवास्मद्वचनमेव
प्राश्यामो नान्यथा तदपि श्रुत्वा न बिस्मरत यथा श्रीकृष्णसन्दर्भे
एकसप्तत्युत्तरशततमे वाक्ये तदेवं स्वारसिकी अप्रकटलीला
दर्शिता । अथाप्रकटलीले द्वे अप्यर्थे विशेषेणाह "गोपीनां तप्त-
तीनां च सर्वेषामेव देहिनाम् । योऽन्तश्चरति सोऽध्यक्ष एष क्रीड-
नदेहभाक् (१७१) अतः अन्तः स्थितः यथा स्यात्तथा गोपीनां
तप्ततीनां तप्ततिम्मन्यानां क्रीडनदेहभाक् सन् तेषामेव गोकुल-
युवराजतया अध्यक्षश्च सन् यश्चरति स एष प्रकटलीलागतोऽपि
भूत्वा सर्वेषां विश्ववर्तिनां देहिनामपि क्रीडनदेहभाक् सन् तेषां
पालकत्वेनाध्यक्षोऽपि सन् चरति । तस्मादनादित एव ताभिः क्रीडा-
शालित्वात् सिद्धावात्र शक्तिरूपाणां तासां संग एव स्तुत एव पर-
दारदोषोऽपि नास्ति । एतत्पद्यव्याख्यानं-गोपालचम्पूमध्ये च
अन्तरंगान् प्रति त्वयमर्थः गोपीनां काश्चिदव्यूढाः काश्चिद व्यूढा
इति द्विधात्र प्रसिद्धा वस्तुतस्तु नित्यसिद्धानां सर्वतः श्रेयसीनां
प्रेयसीनां अन्यासामपि नानाभाव समृद्धानां कुमारीतरुणी-वृद्धानां
तथा यथा सम्भवं तासां पतीनां तदुपलक्षिततया कुमारततीनां
सर्वेषामपि तदेकजीवानां जीवानां यानि तत्तादुचितता विस्ताराय
तदीयक्रीडासाधनदेहानि तदाशक्तः सन् अन्तः शब्दाभिहिते महिते
जगन्नेत्रादन्तर्हिते सदाभवे स्वदैभवे यश्चरति क्रीडति स एष
एवाध्यक्षः कदाचिज्जगत्प्रत्यक्षः सन् क्रीडति । तस्मान्निजप्रेय-
सीभिः समं अनादित एव मिथुनतेति कथनादौपपत्यं नोपप-
त्त्यहं किंतु परमव्योमाधिपलक्ष्मीनारायणवहाम्पत्यमेव तदहं-
भवतीति ।"

किंच सर्वे ज्ञातश्रीकृष्णविषयकाशक्त्यनन्तरं यदि तासां
अन्यभर्ता कात्वं ब्रजे मिथ्यात्वेन व्यक्तं स्यात्तदैव जुगुप्साव्यत्य-
येन रसः संपद्यते, तस्माद्ब्रजसभायामपि नव्यमित्यादिनातद्-

वादस्य पौर्णमासीदेव्यो द्वारा यत्समाधानं विहितं तदपि महान-
 विहितमेव विप्रादिसाक्षिक श्रीमन् नन्दादिवन्धूवर्गसमाधानपूर्वकं
 पितृभिरन्यगोपेभ्यो वितीर्णत्वात् यदि चोभयमुभयमर्पितयोऽनु-
 गानां श्रीमन्नन्दादीनां समक्षमेव तदुद्वाहो निष्पन्नः तर्हि पुनरन्य-
 कर्तृक वचनादिव तत्सर्वतैरेव कथं मिथ्येति प्रतीयतां । न च
 भ्रान्त्या कर्ता प्रत्यक्षीकृतपदार्थः पदार्थन्तरत्वेन ब्रह्मणाऽपि ग्राह-
 यितुं शक्यः, कृतनिश्चयस्य तस्य स्वस्मिन् प्रामाण्यनिश्चयात् च
 यथाकथञ्चिद्देव्या वचनेन समाधातव्यं । तथापि पुनरुद्वाह्य सर्व-
 था तदसम्भतिरेव भावयिषित्वा वा देव्या स्वकल्पितगोपीनां
 दर्शनया सर्वेषामेव भ्रान्तिदूरीकरणाय ताभिः सह श्रीकृष्णेन
 विवाहे श्री ब्रजराजस्य सम्मतिः स्यादेवेति वक्तुं युज्यते । स्वयमेव
 निष्पादितपूर्वव्यवहारस्य मायाया वचनादेवाप्रमाणीकर्त्ता मश-
 क्यत्वात् । न च कृष्णेन परमेश्वरत्वात्तद्दोषाणामग्रहणात् स्त्री रत्न-
 लीनि स्वीकृतान्येवेति वाच्यं । पूर्वावतारैर्नैव दाशरथिना जान-
 क्याः कृतपरीक्षाया अपि रजकमुखाद् वादश्रवणमात्रादिव परि-
 त्यागात् । ननु तदवतारस्तथैव मर्यादापरत्वमेव तस्यासीत् ।
 अस्य दुर्ल्लीलशेखरता तन्मर्यादेव सर्वासु लीलासु प्रसिद्धैव ।
 सत्यं श्रीकृष्णस्य मर्यादापरता परता स्वयमेव न कैश्चिद्दृष्टा
 अपि मुहुः स्थाप्यते । चेत्स्वयमेवेदानीं पुनर्दुर्ल्लीलतांगीक्रियते ।
 इष्टापत्तिरास्माकीनैव एतावता कष्टकल्पनेन न किमपि प्रयोजनं ।
 यथास्थितमेवास्तु तत्सर्वमित्यलं विस्तरेणेति दिक् । यत्तु मुन्या-
 दिना सत्यत्वे व्यक्तीकृतास्ता गोप्यः स्वरूपेण रमणं प्रापुर्माया-
 कल्पिता गोप्यस्तु स्वस्वपतिमित्येव श्रीभगवत्संमतं, दृश्यते च
 संज्ञाच्छायादिवत् कल्पनायामेव व्यक्तत्वमेव परिणामः सर्वत्र
 इत्युक्तं । तेन रवस्य कारुण्यमेव व्यक्तीकृतं । पूर्वं यदा यदा तासां
 व्रतलोपप्रसंगप्राप्त आसीत्तदा तदैव मायैव समादधात् । अनेन
 सर्वास्वेव श्रीकृष्णेन भवन्मते परिणीतासु सतीषु पूर्वोद्धारो-

(२०)

गोपसंज्ञा-गृहस्थ्यनाशान् किं कुर्युरिति परामृश्यानुकंपया मायिक्यो गोप्यस्तेषां भार्यात्वे भगवन्मतज्ञेन भवता निर्दिष्टत्वात् । न च तासां बोद्धारो गोपाः यथा कथञ्चित् प्रवलायामेव मायिकी गोपी स्तेभ्यः समर्प्य प्रतारिताः अन्ततोऽप्रकटणीमागमनकाले ते सर्व एव व्यापादिता इति वाच्यं । श्रीभागवतामृतधृतपद्मपुराणोपगमेषु “अथ तत्रस्था नन्दादयः सर्व एव ब्रजवासिजनाः पुत्रदारादिसिता दिव्यरूपधरा विमानमारूढा परमं वैकुण्ठलोकमत्रापुरि” त्युक्तेः सर्वेषामेवाविशेषेण ब्रजवासिपुत्रदारादिसाहित्येनैव तदारोहणस्य सम्मतत्वात् । किंचात्रैव सन्दिहानाः स्म एकस्मिन्मेव ग्रामे द्वयोरपि सार्वदिकस्थितौ सत्यां मातरपितरादीनां श्वश्रादीनां वा कीदृशो व्यवहारः समजनि । द्वयो नाम—रूपादेर्भेदाभावात् पतिभिः सह सर्वसति अपत्यादेरवश्यं भावित्वात् तत्तद्व्यवहारनिर्वाहणाय पित्रादीनां सत्यत्वे मायिकत्वे च युगपद् विद्यमानतायाः आवश्यकत्वात् एतै र्यादृशं सरसावहत्वं निव्यूढतैरेतद्विचार्यते न वेति । न चापत्यादिर्न भावी लक्ष्म्यो इवेति वाच्यं लक्ष्मीरेव सीतात्वेनावतीर्णा विप्रादिसाक्षिकतया मातृपितृभ्यां वितीर्णा सती प्रजाः सृतेऽस्मैव एवं पाच्छ्रित्यापि प्रत्युत लोकबङ्गीलाकैवल्योत्तद्भावेऽमालरूपता लोकशास्त्रप्रसिद्धा इति बहव एव पल्लवाः सतीत्यलने रनुलाक्तसंज्ञा च्छायादृष्टान्तश्चात्र न संगच्छते । - छायाया अपि सूर्याभ्यदीयेन संभोगाभोगा भावात् भवता तु तत्तन्नामरूपतया सर्वथा अभिन्नास्ता गोपेभ्यो धितार्णा इत्येतदंशस्य ततोऽपि वैलक्षण्यात् अनेन रावणरुद्धसीतापि व्याख्याता । यच्च ललितमाधवायप्रक्रियां समृद्धिमति मूलोदाहरणदृष्टमदृष्टं विधाय तदुदाहरणत्वं “सख्यस्ता मिलिता” इति स्वाभिमतत्वेन उक्ता वाचो युक्ते विलासः सोऽप्यविचारतयैव यत् उज्ज्वलनालमणौ ग्रन्थे क्रोडाश्यानुसारिण्यां टीकायां व्याख्यातं यथा—“दुर्जभा-लोकयोयूनोः पारत व्याद्वियुक्तयोः । उपभोगातिरेको यः कान्त्यते

स समृद्धिमान्'। अस्यार्थः-वियुक्तयोर्विरहिन्योर्यूनो नायिकानायक-
योरेव पारतन्त्र्याद्धेतोरेव दुर्लभा लोकयोर्य उपभोगस्तस्यातिरेक
आधिक्यं स समृद्धिमान् संभोगः कीर्त्यते । संपन्नादिसंभोगे दुर्ल-
भे भोगे दुर्लभा लोकत्वस्य द्वयोः पारतन्त्र्यं अनकारणं किंतु एकस्या
नायिकाया एव, तस्या हि श्वश्रू पतिम्मन्य—पित्रादीनामधीनत्वं
तैर्वार्य्यमाणत्वं न तु नायकरय श्रीकृष्णस्य तस्य हि स्वपित्रादीना-
मधीनत्वेऽपि न तैः स्त्रीप्रसंगे वार्य्यमाणत्वं, नायिकायाः श्वश्रू—
पतिम्मन्यादिभिश्च वार्य्यमाणत्वेऽपि न तेषामधीनत्वं । अत्र तु
“दग्धं हंतैति” “तवात्र परिमृग्यते” त्युदाहरणद्वये द्वयोरेव राधा-
कृष्णयोर्ललितमाधवोक्तकथानुसारणे रुक्मिण्या अधीनत्वं वार्य्य-
माणत्वं च । एवं चाधीनत्व-वार्य्यमाणत्वहेतुके दौर्लभ्ये सत्यु-
पभोगाधिक्यं युक्तिसिद्धमेव । तदाधिक्यं ललितमाधवकथायामेव
द्रष्टव्यं । पारतन्त्र्यादित्यनेन द्वयोर्मानहेतुकं दुर्लभा लोकत्वं व्या-
वृत्तं पारतन्त्र्यादपादानाद्वियुक्तयोः पारतन्त्र्यरहितयोरित्यर्थः-
इति व्याख्या तु न संगच्छते । “दग्धं हतं दधानयेति” तवात्र परि-
मृग्यते” त्युदाहरणद्वये तयोः पारतन्त्र्यरहित्यादर्शनात् प्रत्युत
पारतन्त्र्यपरमावधित्वमेव तत्कथायामेव दृष्टं । यत्र दत्तशपथापि
न बद्ध्वापि रहस्यं बक्तुं न प्रभवतीति । पारतन्त्र्यादिहेतोः वियु-
क्तयोरित्यर्थोऽपि नात्र घटते । वियुक्तयोरिति वियोगोऽयं सुदूर-
प्रवासभवोऽवश्यं व्याख्येय एव । स च सुदूरप्रवासो मथुरागमन-
रूप एक एव । तत्र पारतन्त्र्यादिति कारणोपादानमव्यावृत्तिकम-
किञ्चित्शरमिवेति । किंचायं समृद्धिमान् संभोगो लक्ष्मणोदाहरण-
दृष्ट्या ललितमाधवोक्तकथाक्रमेण प्रकटलीलायामेव तत्रापि
सकृदेव भवति । नित्यत्वं त्वस्य प्राक् प्रदर्शितमेव । एवं च सुदूर-
प्रवासान्ते दाम्पत्ये सत्यपारतन्त्र्ये एव समृद्धिमान्-संक्षिप्त-संकी-
र्ण-संपन्ना एव औपपत्ये इति व्याख्या प्रसिद्धिर्नैव ग्रन्थकृदाशय-
स्पर्शिनीति बुद्ध्यते । पारतन्त्र्याभाव एव दाम्पत्य एव समृद्धिमा-

निति यदि तेषामाशयस्तर्हि “सख्यस्ता मिलिता” इति स्पष्टमेव पारतन्त्र्याभावदास्पत्य निरूपकपदचमनुदाहार्य “दग्धं हंत दधानयेति” “तवात्र परिमृग्यतेति” औपपत्यपारन्त्यमयं पदचद्वयं कथमुदाहरणत्वेनोपन्यस्तं । तदा हि विवाहप्रसंग एव नास्ति, सूर्य्यदत्ता सत्राजितः कन्यैवाहमित्याभिमानवत्याः श्रीराधायाः श्रीकृष्णे पूर्ववदौपपत्यभाव एव । पारतन्त्र्यस्य तु तदानीं परमावधिः स्पष्ट-एवेति क्रियानपन्हवो विधेयः । ननु सख्यस्ता इत्यादौ किमतः परं कर्तव्यमत्रास्ति मे इति वृन्दावनेश्वर्या वाक्येन पारतन्त्र्याभावमये दास्पत्ये एवानन्दविशेष एवावसीयते । मैवं तत्रैव तदनन्तरमपि तया पुनश्चोक्तं “या ते लीला पदमरिमलोद्गारिवन्या परिता, धन्या दौणी विलसति वृता माथुरीमाधुरीभिः । तत्रास्माभिश्चटुलपशुपीभावमुग्धान्तराभिः । संवीतस्त्वं कलय वदनोल्लासिवेणुविहारम्” इत्यनेन वृन्दावने गोपपत्नीभिश्चटुलाभिस्त्वमपि अभिसारार्थं वेणुवादनपरः सन् विहारं कुरुष्वेत्येवप्रार्थनायाः सीमानात् तादृशेवापत्ये द्वारकायां मनोऽनुरक्तता जाता । ततश्च श्रीकृष्णेणापि तथा इव इति वरो दत्तः । ननु कथं ग्रन्थकृद्भिः नववृन्दावने-व्रजसुन्दरीणां विवाहो वर्णितः । यदिव वर्णितः तर्हि कदाचित् कल्पे दन्तवक्रवधानन्तरं तत्रानुक्तोऽपि तासां विवाहोऽस्मद् युक्त्याभ्युपमन्तव्य एव स्यात् । सत्यं द्वारकायां तासां विवाहो न निष्प्रमाणक एव, यदुक्तं पद्मपुराणीयद्वात्रिशदध्यायकार्तिकमाहात्म्ये “कैशोरे गोपकन्यास्ता यौवने राजकन्यका” इति । स्कान्दप्रभासखण्डे च गोप्यादिमाहात्म्ये-षोडशैव सहस्राणि गोप्यस्तत्र समागता इति, अतः पूर्णतमस्य वृन्दावननाथस्यैव द्वारकानाथो यथा पूर्णप्रकाशस्तथैव पूर्णतमाणां तदीयशक्तिणां तासां पूर्णरूपा रुक्मिण्याद्यास्तासां विवाहः समुचित एव । ननु पूर्णतमधाम्नि व्रजभूमौ वर्णयितुं शक्यः समर्थाया एव रतेः समञ्जसत्वापत्तेश्चटुलपशुपीभावमुग्धेत्यादि प्रार्थना प्रातिकूल्याच्च । विशेषश्च उज्ज्वलस्य नवीन-

टीकाया द्रष्टव्य इति दिक् । तस्माद्गन्धकृतामनुसारिणां तेषामपि
 अयमेवाशयो लक्ष्यते । सवदृगैश्वर्यः श्रुतयोऽपि नित्ये धाम्नि
 गोपपत्नीपरिवृतं रासत्रिलासिनं श्रीकृष्णं दृष्ट्वाैव तासामनुगता
 भूत्वैवापुरिति तैरेव निर्द्धारितत्वात् । ननु स्मृतमेतत्सर्वं किन्तु
 कंसवधात् प्राचीनानां लीलानां का गतिः कल्पनीया तदुच्यतां
 उच्यते तदर्थमपि प्रमाणान्तराणि नान्वेषणीयानि किन्तु भवत्प्र-
 माणित “न विद्यते यस्य चेत्यादि” पद्ये यस्य चेत्याख्यानमेव ।
 तत्र मत्स्य-कूर्म-वराह-वामनादीनां किं पुनः श्रीकृष्णस्य त्रैकालि-
 कीनां सर्वासामेव लीलामात्राणामविशेषेण अप्राकृतत्वे स्वरूप-
 शक्तिप्रकाशितत्वे श्रीभगवत्तत्त्वतद्द्वाम्नां च परिकराणां च प्रकाशा-
 नन्त्यात् जन्म-कर्मलक्षणायास्तस्याथानन्त्ये अनन्तब्रह्माण्डगतत्वेन
 सर्वदा विराजमानत्वे मनसाथागोचरे स्वरूपानन्दविलासमात्रत्वे
 सति नित्यत्वं प्रमाणं दर्शयामि । तद्यमर्थ इत्याराप यस्य तु सर्वदा
 स्वरूपस्थत्वात् मनसाथ गोचरत्वात् प्राकृतत्वानि जन्मादीनि न
 विद्यन्ते तथापि यस्तानी अच्छति प्राप्नोति तस्मै नम इत्युत्तर-
 श्लोकस्थेनान्वय इत्यादि । ननु प्राप्नोतीत्युक्ते कादाचित्कत्वमप्यु-
 पगम्यते तत्राह अनुकालं नित्यमेव प्राप्नोति कदाचिदपि न त्यजति
 इत्यर्थः । स्वरूपशक्तिप्रकाशितत्वस्य नित्यत्वस्य च मिथो हेतु
 हेतुमत्ता ज्ञेया । ननु कथं जन्मकर्मणोर्नित्यत्वं ते हि क्रिये क्रियात्वं
 च प्रति निजारम्भपरिसमायामेव सिद्ध्यतीति ते विना स्वरूप-
 हान्यापत्तेः, नैष दोषः भगवति सदैवाकारानन्त्यात् प्रकाशानन्त्यात्
 जन्मकर्मलक्षणलीलानन्त्यात् । अनन्तप्रपञ्चानन्त वैकुण्ठगत-
 तत्तल्लीलाकर्मणोरथ सा यावत्समाप्यन्ते वा तावदेवान्यत्र प्रारब्धा
 भवन्तीत्येवं श्रीभगवति विच्छेदाभावात् नित्ये एव ते जन्मकर्मणी
 वृत्ते ते तत्र ते क्वचित् किञ्चिद्ब्रह्मलक्षण्येनारभ्येते क्वचिदैक्यरूप्येणेति
 ज्ञेयम् । विशेषणभेदाद्विशिष्टैक्याच्च एक एवाकारः प्रकाशभेदेन
 पृथक् क्रियास्पदं भवतीति चित्रं वतैतदेकेन वपुषेत्यादौ प्रतिपादितं ।

क्रियाभेदात्तत्तत् क्रियात्मकेषु प्रकाशभेदैरप्यभिमानभेदश्च । तथा सत्येकत्रैवात्र लीलाक्रमजनितरसोद्बोधश्च जायते । ननु कथं ते एव जन्मकर्मणी वृत्ते ते इत्युक्तं, पृथगारब्धत्वात् अन्ये एव ते उच्यते कालभेदेनोदितानामपि समानरूपाणां क्रियाणामेकत्वं, यथा शंकर-शारीरके “द्विर्गोशब्दोऽयमुच्चारितो न तु द्वौ गोशब्दाविति” प्रतीति-निर्णीतं शब्दैकत्वं तथाहि द्विः पाकः कृतोऽनेनेति द्विधापाकः कृतो-ऽनेनेति प्रतीत्या भविष्यति अतो जन्मकर्मणोरपि नित्यता युक्तैव । अतएवागमादावपि भूतपूर्वलीलोपासनाविधानं युक्तं, तथा चोक्तं माध्वभाष्ये—“परमात्मसम्बन्धित्वेन नित्यत्वात्-त्रिविक्रमादावप्युपसंहार्यत्वं युज्यत” इति, अमुमतं चैतच्छ्रुत्या “यद्गतं तत् भवच्च भविष्यच्च” इत्यनयैव । उपसंहार्यत्वमुपा-सनायामुपादेयत्वमित्यर्थः । तत्तस्य जन्मनः प्राकृतत्वात्तस्माद्विलक्ष-णत्वं प्राकृतजन्मानुकरणत्वेनाविर्भावमात्रत्वं, क्वचित्तदनुकरणेन वा । “अजायमानो बहुधैव जायते” इति श्रुतेः । तथा देवक्यां देवरूपायां विष्णुः सर्वगुहाशय” “सत्यं विधातुं निजभृत्ये”त्यादि च ।

तथा कर्मणो वैलक्षण्यं स्वरूपानन्दविलासमात्रत्वं तद्यथा लोकवल्लीलाकैवल्यमित्यादि । ननु एतत्सर्वं भवत्प्रमाणितमेव भवत्प्रमाणं किन्तु ललितमाधवोक्तप्रौर्णमासीगाग्योः संवादोदित-भाविकत्वस्य को वा प्रतीकारः ततोऽप्यधिकं सर्वोपमर्दकं विदग्ध-माधवे प्रौर्णमासीनान्दीमुख्याः संवादेऽभिमन्युना विवाहस्य मिथ्यात्वमेव निश्चित्य एतत्पक्षस्य मूलोत्त्वात् एव कृतोऽस्ति तत्राप्युपायश्चिन्तनीयः । नोचेद्वर्णितचर्यपि सा लीला मायिकत्वे पर्यवस्यति एव ग्रन्थकृद्भिस्तथात्वे स्वस्याभिमतस्य निश्चितत्वात् अत्र ब्रूमः श्रीमद्ग्रन्थकृद्भिस्तत्र “गूणं गोत्रं गादि गो एहि चंदा अली प्यहुदीणं उचाहो मा आप निच्चाहिदो” इत्येवोक्तं । ननु भ्रमादिशब्देन मिथ्यार्पितं वा न च मायाशब्दस्य बहिरंगायाः

शक्तेरेव वाचकत्वेतिवाच्यं, श्रीभगवत्सन्दर्भे “न विद्यते यस्य चेति” पञ्चम्याख्याने मायायाः स्वरूपशक्तित्वे प्रमाणितत्वात् । तद्यथा-स्वरूपभूतया नित्यशक्त्या माया इत्याख्यया युतः । अतो मायामयं विष्णुं प्रवदन्ति सनातनमिति” श्रुतेः । “आत्ममाया तदिच्छा म्यादिति” संहितातः । “त्रिगुणात्मिकाज्ञानं च विष्णु-शक्तिस्तथैव च । मायाशब्देन भण्यन्ते शब्दतत्त्वार्थवेदिभिरिति” शब्दमहोदधिः । माया वयुनं ज्ञानमिति निघंटोरित्यादि । ततश्च दुर्घटघटणापटीयस्या योगमायया उद्वाहनिर्वाहस्तया “दैवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः । आविरासीद्यथा प्राच्यां दिश्यु-डुराजपुष्कल इति वद्वोद्वव्यः । प्रस्तुते च जगन्निस्ताराय श्रीकृष्णस्य यशो विस्ताराय च लीलाग्रन्थस्तादृशैर्महाकारुणिकैर्वर्णितः । सा चेत् अपरामर्शान्मायात्वे कल्प्यते तर्हि तेषु विप्रलिप्सुतां लीलायामसत्यतां च समारोप्य ऐहिकामुक्तिं कल्याणं स्वस्य साधनीयमेव वादिभिः ततः स्वरूपशक्तिप्रकाशितत्वात् सर्वास्ता लीला नित्या एवेति सर्वं सुस्थं । किञ्च विदग्धमाधवस्थ-पौर्णमासी-नान्दिमुखोः संवादे—“णांदी भअवदि जसोदा धत्ती ए मुहराए अत्तणोणत्तिणी राहि आगोउलमज्जे आणि अजडिला पुत्रस्य अहिमण्णो हत्थे उव्वाहिदल्लिय नारण्णं तु मणिच्चिसि संवुत्ता, जंएसा गोउल मज्जे आणीदा” इत्यादेरेव पाठः । नत्वन्य इतोऽप्ययिकस्तथैव ग्रन्थकृतां श्रीहस्तलिखितपुस्तकेषु दृष्टत्वात् अद्यापि तानि पुस्तकानि श्रीमन्मदनगोपालगोविन्ददेवराधादामोदराणां पुस्तकागारेषु अन्यत्रापि विराजन्ते । तस्मात् “उव्वाहिदल्लिय इतः परंतु मणिच्चिताविअदीसन् पौर्णतरयैबहेतोः नांदीकधंविअ पौर्ण-विहस्य” तद्वचनार्थमेव योगमायया मिथ्यैव प्रत्यायितं तद्विधाना-मुद्वाहादिकं नित्यप्रेयरय एव खलु ताः कृष्णस्य नांदी सहर्षमि-त्येतत्पर्यन्तं केनचित् स्वाभिमतप्रतिपिपादयिषयान् प्रक्षिप्य मिथ्यैव प्रत्यायितमिति । तेन प्रक्षिप्तपाठेन न शंका पंकिला विधा-

तज्या स्वधीः सुधीभिरित्येवधेयम् । परं च यदद्यमेव पाठः प्राचीनपुस्तकस्थोऽभविष्यत् तदा ललितमाधवीय चंदाश्रलीप्य दुदीण उच्चाहो माया एणिच्चाहिदो इ-येव सर्वत्र स्वग्रन्थेषु तैः प्रमाणितं । अमुमपि विदग्धमाधवप्रसंगमत्यन्तसुस्पष्टं मिथ्यावाचकत्वे तेऽवश्यं प्रामाण्यिष्यत् इत्यपि परामृश्यं यदाहुः यदि स्वयं श्रीकृष्णेन सा लीला अवतारावसर एव दिनानि कतिचित्कस्मैचिदा स्वादविशेषाय सर्वज्ञतां सर्वशक्तितां सर्वेश्वरतामपि अनादृत्य तदुपयुक्तां लीलाशक्तिमेवादत्त्यावतारितानां नित्यप्रेयसीनां तासां परदारत्वभ्रमेण यथा रसस्य विधिः प्रकारविशेषः संभवति तथा नित्यलीलां विस्मय्य प्रकटीकृतानामित्यादि, तत्रापि एतदुक्तं भवति यदद्यपि निर्विघ्नेऽपि संभोगे रसता भवत्येव तथापि “न विना विप्रलम्भेन संभोगः पुष्टिमिष्यत” इति भरतन्यायेनापेक्षित विप्रलम्भश्च तल्लीलावैचित्र्यमुद्बहन् भवति वैचित्र्यं च जायापत्योरितः परं नास्ति । यज्जायापत्योरेव सतोर्लीला शक्त्या जन्मान्तरवशाद्विस्मृततद्भावयोर्मिथ्यैवान्यत्र प्रत्यायित जायाबिबाहयोर्या प्रतिकृतिकल्पनाद्यावचिते पतिमन्ये लोकधर्ममर्यादां समुल्लङ्घयन् केन रागेण रहसि परस्परमिलितयो निरन्तरशंकया जातदौर्लभ्ययोः कदाचिज्जाते पत्युस्तु दूरप्रवासे मिलनयुक्तिमसंभावयतो स्ततो जातेऽपि कथमपि संभोगे लीलाशक्त्यैव व्यञ्जितदाम्पत्ययोः परमसुखचमत्कार इति च, कृष्णसन्दर्भे च न च दाम्पत्ये प्रकटे “बहुवाच्यते” इत्यादि भरतादयनुसृतनिवारणादद्यभावादसनिष्पत्तिः न स्यादिति वाच्यं । तस्य निवारणं खलु भयेन तावत्सर्वातिशयसामर्थ्यात् किंतु लज्जयैव । लज्जा च कुलकुमाराणां स्वस्त्रीसम्बधानुमितावपि जायते । किमुत परमलज्जादि-गुणनिधानस्य ब्रजे नववयः शीलतामेवाव्यञ्जतस्तस्येति । किन्तु बहु पत्नीकत्वे मात्रादिभिर्मिथस्ताभिरपि संगस्यानभीष्टत्वात् स्वतएव निवारणं प्रच्छन्नकामुकत्वं च स्यात् इत्यादि । अत्र वदामः आदौ “नेष्टा यदङ्गि-

नी"त्यस्यार्थो ग्रन्थकृदभिमतो यथा-शृङ्गाररसे पापादि श्रवणा-
शंकया परोढा नेष्टा तत् गोकुलाम्बुजदृशां कुलं विना ज्ञातव्या ।
कुतः रसिकमण्डलशेखरेण कंसारिणा अवतारितानां प्रकटीकृतानां
केन हेतुना अत्र रसे यो विधिः प्रवर्त्तना तस्य आ सम्यक् स्तुत्या
हेतुना प्रकटाप्रकटयोर्लीलायाः स्थितित्वे ऐकरूप्यं पूर्वमुक्तमेव ।
अयमर्थः पूर्वं कोऽपि संसारादुत्तितीपुरिमं शृङ्गाररसं नास्वादयत्
संप्रति तु एतत्संवधात् याः श्रुत्वा तत्परो भवेदिति विधिश्च शुक्रदेवेना-
पि जीवमात्र प्रतिविहितत्वं निकृतकृत्या भोश्चरितार्थाः प्रकृतं शृणुत य-
स्य लीला क्रमसाध्या प्रेमरसविशेषरसास्वादनाय नित्यसिद्धानि सर्वज्ञ-
तादीन्यनादृत्य विस्मार्थ्य च प्रेयःयोऽवतारिताः स्वयं च तथा
सन्नेवावतीर्णं स एव निर्यासत्वेन मुहुर्निर्दिष्टः तथैव तत्परिपोष
इत्यपि निद्धारितः किंच लीलावैचित्र्यं च जायापत्योरिव सतो
लीला जन्मान्तरवशाद्विस्मृततत्तद्भावयोर्मिथ्यैवान्यत्र प्रत्यायित
जायाविबाहयोर्द्वर्मानिर्वाहोत्तरं महाप्रबन्धानन्तरं - समृद्धिमति
संभोगे च जाते सति लीलाशक्त्यैव वा श्रीकृष्णसन्दर्भोक्त आका-
शादिबाण्यामन्यादिना देव्या व्यञ्जितदाम्पत्ययोः पुन ब्रजे विबाहे
निष्पन्ने परमसुखचमत्कार इति च निरनायि । स एव पुनः लीला-
शक्तिप्रेरितोऽपि मिथ्यात्वेन प्रतीत इत्य शुच्यते । तत्रैवं प्रष्टव्याः
स्थः तस्य स्वस्य वा नित्यदाम्पत्यादीनां विस्मृतिः किं लीलाशक्ति-
निष्पाद्या, जीववत् अज्ञानकल्पिता अविद्या कार्यरूपा वा । अथवा
स्वेच्छयैव रसनिर्यासास्वादनायांगीकृता । नादयः पक्षः लीलाशक्तेः
स्वरूपशक्तित्वात् स्वरूपशक्तिप्रकाशितत्वस्य हेतुमत्तेति सन्दर्भोक्तं
पूर्वमेव लिखितत्वात् । तत्कृतविमृतेन कदाप्यनित्यतेति सिद्धान्ति-
तत्वात् । किंच प्रीतिसन्दर्भोक्तभगवतो विभुत्वादिविस्मृतिहेतु-
मातृभावप्रेमानन्दावृत्तिविशेषः अतएव गोपीजनाविद्याकाला-
प्रेरक इति गोपालतापनीश्रुताविति पूर्वमेव प्रदर्शितं च मातृभा-
वादि तत्कृतं सत्यं स्यादत्रापि कृष्णे तासामुपपत्तिभावः । तासु

श्रीकृष्णस्य परकीयाभावश्च सत्यो न भवति मायिकमिति कथं
 वक्तुं शक्यमिति तैरपरानृश्यं । नापि द्वितीयः ईश्वरे अविद्ययाऽ-
 ज्ञानकादिकस्य सम्बन्धस्य शंकरशारीरकादावप्यनुक्तत्वात् । तत्रापि
 स्वयं भगवति तत्रापि वैष्णवैः तथा वक्तुमनर्हत्वात् । नापि
 तृतीयेऽपि भवदभिमतसिद्धिः । यतोऽन्यासु सर्वासु एव लीला
 स्वरुच्या रसस्य सारांशस्य स्वादनाय अर्थात् स्वयमास्वादयितुं
 विशेषतोऽर्वाचीनभक्तान् तस्यास्वादनायाः पात्रीकत्तुं मुरीकृत्या-
 यास्तस्याः कदाप्यरुच्याऽसंपृक्तायाः श्रीभगवत इच्छाशक्त्यैव
 निष्पादितायाः पूर्वोक्तयुक्तेरेव मायात्वे सात्वतैर्गिरां गोचरीकत्तु-
 मयोग्यत्वात् । न च ब्रह्ममोहनकालीनलीलावेशवदयमपि वाच्यः ।
 तत्रापि ब्रह्मणाधिकृतभक्तत्वे ऐश्वर्य्यप्रधानत्वात् यथा परिवार-
 प्रसंगं श्रीभगवतोऽपि तदनुरूपभ्यैश्वर्यादेरेवावश्यकभाचित्वात्
 प्रस्तुते तु माधुर्याविष्टयोः सर्वथा ततो निष्क्रान्तेरनर्हत्वात् । उत
 एवायं लीलावेशः प्रेमाधीन एव । तथात्वे विनिगमकेऽप्रकटे किं
 प्रेमाभाव एव यतस्तत्रानावेशः । अवतारलीलायामेवस्यादिति ।
 अतोऽत्र लीलावेशशब्देन भवता तदज्ञानमेवोच्यते । तेन विस्मृत-
 तत्तद्भावतेति तत्कृताध्यासेन स्वरूपास्फूर्तिः । यथा जीवस्य देहावे-
 शादहं सुखी दुःखी कृशः स्थूलश्चास्मि इतिविपर्य्यासस्तथा प्रकृते
 परस्परान्यदीयत्वभावनाद्गुरुजनकृतवारणादिना कदाचित् समयेऽ-
 नवाधाभीष्टतया नानक्लेशभाक्त्वं अतएव स्वप्नवत् यथावसर-
 मतो दूरीभविष्यत्येवेति भवदभिप्रायो बुद्ध्यते । परं तु जीवस्य
 स्वतोऽज्ञानध्वंसः कुत्रापि न प्रथितः श्रवणमनननिधिध्यासनादिनाऽ-
 थ च महावाक्यानामुपदेशेन च यदा तत्त्वमस्यादिना सोऽहमस्मीति
 स्वरूपस्फुर्त्या अज्ञानध्वंसः स्यात्तदैवात्यन्तिकदुःखहानिः सुखावा-
 मिश्च जायते एषैव मोक्षत्वेन भण्यते । अत्र तु तस्य च तासां च
 न किंचनोपदेशवाक्याश्रयीभूतं शास्त्रं दृश्यते । न कश्चिदुपदेष्टा
 न च श्रवणमननादिश्च तत्केनोपायेन ततोऽज्ञानवंधानमुक्ता इति

चिन्तयमानोऽस्मि । न च द्वौ वक्तारौ उपदेशग्रन्थश्च मया विख्या-
 पिता एवेति वाच्यं तेषामर्वाग्भवत्वात् तत्र प्रमाणाभावाच्च तदु-
 पयोगिताया अभावात् । नहि मायावादिनां मतेऽपि यद्यपि
 सर्वेषां व्यवहारमार्गाणामेवासत्यत्वं तथापि ब्राह्मणादीनां यस्य यत्र
 यादृशो व्यवहारः समुचितो निर्व्यूढोऽस्ति तमन्यथा कृत्वा यस्य
 कस्यचित् स्त्र्यादियेनकेनचित् गृहीतं गृह्यते वा तस्मात्तादृशेभ्योऽ-
 प्ययं बिलक्षणो नवीन एव पंथाः । न वायं न वा नित्यलीलायां
 दाम्पत्यमेव अवतारलीलायामपि दंतबक्रबधानंतरं तदेवेति
 वाच्यं । प्रकटाप्रकटयोरपि परकीयत्वेन पूर्वप्रमाणितानां सन्दर्भ-
 स्य व्याख्यानानामेव जागरूकत्वात् । गोपीनां तत्पतीनां चेत्यत्र ।
 अत्र या गोपपत्न्यश्चेत्यत्र च नहि भवदभिमते उद्वाहे किञ्चिदपि
 प्रमाणमस्ति चेदार्थं तत्स्याद्भवता किं नोत्थापितं स्यात् प्रयुत दन्त-
 वक्रबधानन्तरागमनप्रसंगे पद्मपुराणीयपद्वयेषु भवत्प्रमाणितेषु
 परकीयत्वस्यैव निश्चयो निष्पद्यते तद्वयथा 'कालिन्द्याः पुलिने
 रम्ये पुण्यवृक्षसमाचिते । गोपनारीभिरनिशं क्रीडयामास केशवः ।
 रम्यकेलिसुखेनैव गोपवेशधरः प्रभुः । बहुप्रेमरसेनात्र मासद्वयमुबा-
 सहे" ति । गापानां नारीभिरित्येव वाक्यस्यावश्यं निर्वचनीयत्वात् ।
 तृतीयस्कंधे शुकदेववचने देवहूतिनृपबधूरिति वत् इति व्याचक्षा-
 नेन तेन स्त्रेनैव कृष्णवध्य इति स्वप्रमाणितं प्रत्याख्यातं । पुनर्गोप-
 नारीभिरनिशमित्यत्र तेषां पत्नीभिरिति दृष्टं विधाय अनिशक्रीडा-
 दाम्पत्यहेतुत्वेन गम्यमानतयोक्ता । अनया तु न त्वन्यत् प्रमाण-
 मस्तीति ज्ञापितं एवं च यत्तक्रीडा भगवता कृता गोपगणैः सह ।
 पणावहासरूपेण जिता गोप्यो धनानि च । गोपैरानीय तत्रैव
 कृष्णाय विनिवेदिता इत्यादि वाराहीयपद्यं चम्पूस्थं गोपानां
 भार्यात्वेना सुखत्वापत्तौ च प्रमाणायां निष्पन्नं । न तु भवद-
 भिमते दाम्पत्ये साधकतायामिति यतः पणहेतुको योऽवगतो हास-
 स्तेन रूपेण जितानां न तु वैरेण, ग्लहजितानां अन्यदीयानां

पत्नीनां विवाहाजेतृभिः कुत्रापि केनाप्यदृष्टा श्रुतत्वात् । चेदेवम-
भविष्यत्तदा ते गोपादयः सर्वे एव तदीया कर्मकरा अभविष्यन्
प्रकृते न तथेति विचार्य्य । न च दाम्पत्ये प्रकटे बहुवार्य्यते इत्यादि-
भरतानुसृतनिवारणाभावाद्रसनिष्पत्तिश्च न स्यात् इत्यादिना
किंतु बहुपत्नीकत्वे मात्रादिभिर्मिथ्यगताभिरपि सतत संगस्यानभीष्ट-
त्वात् स्वत एव निवारणं प्रच्छन्नकामुकत्वं च स्यादित्यंतेन भरत-
मतानुसारिणां प्राचां वाचमवधीरितं उदीरिता चैपैव निवारणा ।
तत्र मात्रादिभिः प्रेयसीभिश्च कर्त्तीभिरित्येकाधिकरणकनिवारणं
न्यायप्राप्तमेकवासनाकं स्यान्नवेति त एव प्रष्टव्याः नन्वयुक्तं कथं
प्रायस्तुव्यं मात्रादिभिरित्यादिप्रहणात् पित्रापितृव्यैस्तत्पत्नीभिर्मातृ-
ष्वस्त्रादिभिश्च काश्याद्यांशकया वात्सल्येन सपत्नीभिस्तु सापत्न्ये-
नेति विवेचनीयं । सत्यं एवमपि मातरपितराभिर्वात्सल्यरसनिम-
ग्नैरत्र निवारणे यादृशो रसस्य परिपोषः सतु भक्तिरसामृतसिन्धु-
वेदिभिरसिकैरेव विवेचनीयः अथ च श्रीकृष्णस्य लज्जालुतया
निवृत्तिपरत्वं मात्रादीनां तन्निवारणरतत्वं च तदन्यैः कैश्चिदपि
कुत्रापि श्रीभागवते भक्तिशास्त्रादिषु च नादद्याप्युपलब्धमित्यनु-
लापेन । ननु स वो हि स्वामी भवतीति गोपालतापस्यां आर्य्य-
पुत्रोऽधुनास्ते इति दशमस्कन्धे गोपीनां पतिरेव वा इति बृहद्गौत-
मीये चेति प्रमाणानि संत्येव । तत्कथं न सन्तीत्युच्यते । सत्यं
गोपालतापन्यां हि उत्तरार्द्धे—एकदा हि ब्रजग्रित्रय इत्यारभ्योपक्र-
मोपसंहाराभ्यां प्रच्छन्नकामताया एव निश्चयात् स्वामी भवतीत्यस्य
उपभोक्तृत्वलक्षणं ऐश्वर्य्यवत्त्वे एव संगच्छते । कृष्ण एव युष्माकं
रूपयौवनादिनामुपभोक्तृत्वे स्वामी न तु बोद्धार इत्येव मुनेराश-
यात् । न च दन्तवक्रबधानन्तरं कुत्रचिद्वर्णितविवाहपरमिदमिति
वाच्यं । मुनिना लृढं विहाय वर्त्तमानप्रयुक्तत्वात् । न वा नित्यदा-
म्पत्यं मनसि विधाय तथोक्तं इत्यपि वक्तव्यं दाम्पत्ये प्रमाणा-
भावात् । पूर्वयुक्त्युक्तिभ्यश्च तैरेव परोदौपत्ययोरेव नित्येऽवतारे

च निश्चितत्वात् । आर्य्यपुत्र इत्यत्रापि ब्रजराजस्य आर्य्यत्वे सारल्येनैवास्माकी विपत्तिरिति सारल्यवाचित्वे एव तथोक्तिः संगता भवति । न च भावि दाम्पत्यसूचकमेतदिति वक्तुं शक्यं । स्वकृत इह विसृष्टाः पत्यपत्यान्यलोका इत्यादिना तत्प्रकरणे मुख्य-यैव स्पष्टीकृतत्वात् भाविनि प्रमाणान्तराभावात् च । गोपीनां परिरेव वा इत्यस्याप्यर्थः पतित्वे उपपतित्वे च वाच्ये पतिशब्दस्य प्रयुक्तत्वे एव संघटते । देवेषूपदेवेषु पूज्येषु देवाः पूज्या इतिवत् । अन्यथा गोपी इत्यस्य ङापुंयोगादाख्यामिति पाणिनिस्मरणात् पुंयोगादेव प्रत्ययो जातोऽस्ति । तथा सति विरुद्धमतिकृद्दोषो दुनिर्वार एव स्यात् । स तु जुगुप्सापर्य्यवसादी । न च जातौ ङाप इति वाच्यं जातिरिति सिद्धे एतत्सूत्रस्य विशेषत्वं पर्य्यवसानात् गोविन्दवृन्दावननाम्नि बृहद्गौतमीये श्रीकृष्णेण श्रीमुखेनैव “अत्र या गोपपत्न्यश्चेत्या”दिना तासां गोपानां पत्नीत्वेन सुनिश्चित-त्वात् । तदाज्ञाहेलनाभिरयपातभीतेश्च सर्वथान्यथा वक्तुमर्ह-त्वात् विशेषतः सिद्धान्तकौमुदी-भाषावृत्ति-संक्षिप्तसार-मुग्धबोधा-दिषु पुंयोगादित्यस्योदाहरणत्वेन गोपीपदस्यैव गृहीतत्वाच्च । एवं गौतमीये गोपालस्तवराजे गोपनारीभिरावृतमित्यत्र क्वचिद्गोपां-गनावस्त्रहारिणमित्याद्यन्यत्र च पत्नीत्वे एवोक्तत्वाच्च तस्मात् परम-धीरेषु तादृशेषु अज्ञैरेव स्वकीयापक्षपातीति दोष आसज्यते । भक्तिसन्दर्भे रागानुगाप्रकरणे भगवत्सन्दर्भे श्रीकृष्णसन्दर्भे गोपाल-चम्पूमध्ये च परकीयत्वनैव प्रकटाप्रकटयोरपि मुहुर्मुहुस्तैरेव सुनि-श्चितत्वात् । दन्तवक्रबधानन्तरप्रसंगे श्रीदशमटिप्पण्यां प्रकटा-प्रकटयोरैक्येनैव सुप्रथितत्वाच्च । अतएव उज्ज्वलनीलमणिटीकायां लघुत्वमत्र यत्प्रोक्तमित्यत्र यत् स्वंच्छापरेच्छालिखनयोः पूर्वापर-सम्बन्धत्वासम्बन्धत्वं स्वाशयः प्रकटीकृतः सोऽप्युपलक्षणत्वे सर्वेष्वेव ग्रन्थेषु बोद्धव्यः । अतः पूर्वापरसम्बन्धानि व्याख्यानानि तदीयस्वेच्छाकृतानि अन्यानि तु परेच्छाकृतानीत्यवधेयम् । अस्मा-

भिस्तूभयथा निर्दोषत्वे एव प्राचीनसम्मतत्वे च ग्रहीतव्यानीत्यपि
 ध्येयमिति । तत्र कारिका पूर्व लिखितैव, श्रीगोपालचम्पूमनु च
 ग्रन्थान्ते कारिका यथा—“प्रायः सर्वा हरेर्लीलाः क्रमशः सूचिता
 मया । यथासं लब्धरुचिभिरास्याद्यन्तां महात्मभिरिति ।” उच्चल-
 व्याख्यानानि यथा-रागेणैवार्पितात्मान इत्यत्र अन्तरंगेण रागेणै-
 वार्पितात्मानो न तु बहिरंगेण विवाहप्रक्रियात्मकेन धर्मेण । तदेवं
 मिथुनीभावे तासां रतिमुक्त्वा श्रीकृष्णस्याप्याह-धर्मेण विवाहात्म-
 केनैवास्वीकृता रागेण तु स्वीकृत इत्यर्थ इति । रतिप्रकरणे “साधारणी
 निगदिता समञ्जसासौ समर्था च । कुब्जादिषु महिषीषु च गोकुलदेवीषु
 च क्रमत” इत्यत्र तथाहि समर्था खलु सैव स्यात् या लोकं धर्मं
 चातिक्रम्य परमकाष्ठामापन्ना पुष्टिमाप्नोति । तदुक्तं परकीयाल-
 क्षणे—“रागेणैवार्पितात्मानो लोकयुग्मानपेक्षिणेति ” वक्ष्यते च
 “इयमेव रतिः प्रौढा महाभावदशां व्रजेदिति” । अथ यान्या रतिः
 समंजसाख्या सा खलु लोकधर्मापेक्षया तथोच्यते । अतएव नाति
 समर्था तत एव च निवारणादिनाऽपि भावान्तिमां सीमां न प्रप-
 द्यन्त इति भावः । समञ्जसालक्षणे—“पत्नीभावाभिमानात्मा
 गुणादिश्रवणादिजा । क्वचिद्भेदितसंभोगवृत्त्या सान्द्रा सम-
 ञ्जसा ।” पत्नीभावेति लोकधर्मापेक्षिता दर्शिता । पत्नीभावाभिमान
 एवात्मेवात्मा यस्या इति तदभिमानस्य तिरस्कारे समर्थाया इव
 स्थित्यभावश्च व्यक्त इत्यादि । गुणादिश्रवणादिजा तत्प्रादुर्भूते-
 त्येवार्थः । नतूत्पद्यमानेति “जनी प्रादुर्भाव” इति धातुपाठात्
 इति । महाभावत्वं “अनुरागः स्वसंवेदयदशां प्राप्य प्रकाशितः ।
 यावदाश्रयवृत्तिश्चेद्भाव इत्यभिधीयते ।” एतद्व्याख्यायां-अयंभावः
 “रागः खलु दुःखमप्यधिकं चित्ते सुखत्वेनैव व्यज्यते । यतस्तु
 प्रणयोत्कर्षात् स राग इति कथ्यते” इत्युक्तलक्षणः दुःखस्य च
 पराकाष्ठा कुलबधूनां स्वयमपि परमसुमर्यादीनां स्वजनार्थपथाभ्यां
 भ्रंश एव नाग्न्यादि न च मरणं ततश्च तत्तत् कारितया प्रतीतोऽपि

श्रीकृष्णसम्बन्धः सुखाय कल्पते चेत्तर्ह्येव रागस्य परमेयत्ता ततश्च
 तामाश्रित्यैव प्रवृत्तोऽनुरागो भावाय कल्पते । सा चाऽम्भत एव
 ब्रजदेवीष्वेव दृश्यते, पद्महिपीषु तु सगभावयितुमपि न शक्यते
 आरम्भत एव इति व्यञ्जयितुं नवरागहिङ्गुलभरै रित्यत्र नवशब्दो
 दास्यते । तदेवमेता एवोद्दिश्य उद्धवः स चमत्कारमाह “या दुस्त्यजं
 स्वजनमार्यपथं च हित्वा ” इति । इदृशोक्त्या च यद्यपि तासां
 तत्त्यागो न भवति तथापि कृत इति कुलांगनात्वं परममर्यादात्वं
 च दर्शितं । तस्मात् समर्थाख्यैव रतिरनुरागदशामारूढा सती महा-
 भावदशामानोर्तीत्येतानि । अनेन महाभावस्वरूपेयमिति ग्रन्थकृतां
 हादमेव स्वहादं विधाय व्याख्यानाद्भाषितं । श्रीराधिकात्र रस
 आलम्बनरूपा सा चेदीदृशत्वेन निश्चित्योपास्या म्यात्तर्ह्येव रसः
 सालम्बः नोचेदालम्बनवैरूप्याद्वैरस्यादन्येषां मूलोत्खात एव । किं च
 गोपालचम्पूमध्ये च सर्वत्रैव परकीयात्वस्यैव वर्णनं विशेषतः
 षड्विंशतिमे पूरणे रासमारभ्य त्रिशत्पूरणपर्यन्तं अशेषतया
 तस्यैव श्रीभागवतरीत्या विस्तारतस्तदेवास्तीति । विशेषतः समृद्धि-
 मत प्रघट्टके सप्तपत्रीलिपेः शेषे तु अतीव सुव्यक्ततया सर्वोपमर्दकः
 समग्रग्रन्थस्य निर्गलितार्थः स्वाशयसारः सिद्धलेखः कृतोऽस्ति ।
 यथा-परमरसपरिपाकस्तु क्रमलीलायामेव क्रमते । श्रीभागवतादि
 प्रकाशकप्राचीनभक्ताणां विदग्धमाधवादिप्रकाशकतादृशग्रन्थकृतां
 चात्रैवावेशदर्शनान् । अत्रैव ग्रन्थे अस्या एव निर्वाहणादिति ।
 तस्मात् ये रागानुगीयानुगामिनो बुभूषन्ति तैरन्तरंगव्याख्यानुगतै-
 र्भवितव्यं । तैः सहैवालापः समुचितो नोचेदन्यैरलं संलापेन ।
 माधवमहोत्सवनामखकृतग्रन्थे दानकेलिकौमुदचनुसारिणि उप-
 क्रमोपसंहारपरकीयात्वेनैव सर्वं वर्णितं दिग्दर्शनं यथा-कामिश्चित्
 पटु जटिलां विकृष्यमाणां नदंतीं दधिघृतकदंभेषु राधा । श्वश्रू-
 सा महसि निशाम्य नम्रवक्त्रा स्मेरत्वं जनहसबिबमाशु दध्ने ।
 इत्यादया बहव एव । तस्मात् सर्वथा तेषामाशय एष एव ज्ञातव्यो
 नान्यः कदाचिदपीत्यलं विस्तरेणेति दिक् । ग्रन्थसंख्या ७००॥श्रीरत्नु।

(३४)

परकीयारमोत्कर्णे प्रमाणानि

जारधर्मेण सुस्नेहं सुदृढं सर्वतोऽधिकं ।
 मयि संप्राप्य सर्वेऽपि कृत्यकृत्या भविष्यथ ॥
 बृहद्भामने—धृतविद्वन्मण्डने विद्वलेशपादाः
 परभावेन यः संगस्तच्चातीव सुखं मिथः ।
 मयैव कल्पितं तच्च योगमायाबलम्बिना ॥
 —भविष्ये राधा व्रतप्रसंगे

अतः—परकीया भावे ह्य रसेर उल्लास ।
 ब्रज बिना अन्यत्र नाइ इहार प्रकाश ॥
 —चैतन्यचरितामृते
 बहुवाय्यते यतः खलु यत्र प्रच्छन्नकामुकत्वं च ।
 आ च मियो दुर्लभता सा मन्मथस्य परमा रतिः ॥
 —भरत मुनिः

अत्र निषेधविशेषः सुदुर्लभत्वं च यन्मृगाक्षीणाम् ।
 तत्रैव नागराणां निर्भरमासज्यते हृदयम् ॥
 —विष्णुगुप्तसंहितायाम्
 वामता दुर्लभत्वं च स्त्रीणां या च निवारणा ।
 तदेव पञ्चवाणस्य मन्ये परममायुधम् ॥ —रुद्रः
 अनन्यशरणा स्वीया पणहाय्या पणांगना ।
 तस्यास्तु केवलं प्रेमा तेनैषा रागिणीमता ॥
 —शृङ्गारतिलके

तुहु यदि कहसि करिया अनुषंग ।
 चौर पिरीति होय लाग्य गुण रंग ॥
 सु पुरुख ऐछन नाहि जग माफ ।
 आर ताहे अनुरत बरज समाज ॥

(३५)

विद्यापति कहे इथे नाहि लाज ।

रूप गुण वति का इहा बढ काज ॥

—विद्यापति चरणाः

परकीय धन सकलि प्रधान यतन करिया लई ।

नैष्ठिक हइया भजन करिले पद्धति साधक हई ॥

पद्धति हईया रस आस्वादिया नैष्ठिके प्रवृत्त हय ।

ताहार चरण हृदये धरिया द्विज चण्डीदास कय ॥

—चण्डीदास पदावली

रति परकीया याहारे कहिया से इ से आरोप सार ।

भजन तोमारि रजक भियारीरामिणी नाम जाहार ॥

वाशुली आदेशे कहे चण्डीदासे सुनह द्विजेर सुत ।

ए कथा लवे ना ना जाने ये जना सेइ से कलिर भूत ॥

—चण्डीदास पदावली

प्रच्छन्नोऽन्यः प्रकाशोऽन्यः कृत्रिमाकृत्रिमावुभौ

सहजाहार्य्य नामानौ परौ यौवनजोऽपरः ।

विश्रम्भजश्च प्रमाणो द्वादशैति महर्द्धयः ॥

—सरस्वती कण्ठाभरण

अप्राकृते श्रीकृष्णस्य परकीया भावस्य सर्वोत्तमत्वे प्रमाणानि

नेष्टा यदग्निरसे कविभिः परोद्धा

स्तद्गोकुलाम्बुजदृशां कुलमन्तरेण ।

आशंसया रसविधेरवतारितानां ।

कंसारिणा रसिकमण्डलशेखरेण ॥

—धृतोज्ज्वलनीलमणौ प्राचीनवाक्यं

लघुत्वमत्र यत्प्रोक्तं तत् प्राकृतनायके ।

न कृष्णे रसनिर्व्यासवादाथमवतारिणि ॥

—उज्ज्वलनीलमणौ

(३६)

यत्परोदोपपत्यस्तु गौणत्वं कथितं बुधैः ।

तत्तु कृष्णं च गोपीश्च विनेति प्रतिपद्यतां ॥

—नाटक चन्द्रिकायां

नासौ नाट्ये रसे मुख्ये यत्परोदा निबध्यते ।

तत्तु स्यात्प्राकृतचुद्रनायिकादयमुसारतः ॥

—उज्ज्वलनीलमणौ

अप्राकृते तु परोदारमणीरतिरेव सर्वोत्तमतया भूयसी श्रूयते ।
न तस्यामनौचित्यप्रवर्तितत्वं अलौकिकत्वं तु सिद्धे भूषणेमेव
न तु दूषणमिति न्यायात्तर्कागोचरत्वाच्च ॥

—अलंकारकौस्तुभे ।

प्रक्रीयाभावसम्बन्धिनि प्रमाणानि

यथा प्रकटलीलायां पुराणेषु प्रक्रीर्तिता ।

तथा ते नित्यलीलायां सन्ति वृन्दावने भुवि ।

गमनागममे नित्यं करोति वनगोष्ठयोः ।

गोचारणं वयम्यैश्च विनासुरविघातनं ॥

परकियाभिमन्यस्तथा तस्य प्रियाजनाः ।

प्रच्छन्नेनैव भावेन रमयन्ति निजप्रियं ॥ अ० ५२

—पादमे पातालखण्डे वृन्दावनमाहात्म्ये

राधादद्यास्ताः परमभगवत्यस्तु पत्यात्मजादीन्

लोकान्धर्मान् ह्रियमपि परित्यज्य भावं तमाप्ताः ॥

—बृहद्भागवतामृते २।५।१४७ श्लोकं

व्रजलीलायां—आदौ राधिकायाः

इत्थं श्री राधिकादेवी प्रादुर्भूता धरातले ।

मन्मायामोदितमतिर्नात्मानं वेत्ति कर्हिचित् ॥

सामेव पतिमिच्छन्ति भानुपूजां दिने दिने ।

करोति सखीभिः सार्द्धं पुण्ये गोवद्धने गिरौ ॥

(३७)

वृषभानुर्ददौ कन्यां राधां मत्वाभिमन्ववे ।
 मन्मायाकल्पितं तच्च न वेत्तीयमपि स्फुटं ॥
 अन्ये कुतो न जानन्ति मम मायाविजम्भितं ।
 तदैषा परकीयाहमिति मत्वा मनस्विनी ॥
 भीता गुरुभ्यो रहसि मया क्रीडति निष्कुटे ।
 परभावेन यः संगस्तच्चातीव सुखं मिथः ।
 मयैव कल्पितं तच्च योगमायावलम्बिना ।
 दाहशक्तेर्यथावन्हेस्तथैवा मम बल्लभा ॥
 अनया सह विच्छेदः क्षणमात्रं न विद्यते ।
 तथा च रसपोषाय प्रकटस्यानुसारतः ॥
 करोमि लीलामतुलां योगायोगविवर्द्धनाम् ।

—भविष्यपुराणे राधाश्रमीव्रतप्रसंगे

ततः सखीजनैस्तस्याः श्वश्रुं संप्राप्य यत्नतः ।
 कर्तुं माहूयते देवि पाकार्थं तु यशोदया ॥
 नारदोवाच—कथमाहूयते देवी पाकार्थं तु यशोदया ।
 सतीषु पाककर्त्रीषु रोहिणीप्रमुखाष्वपि ॥

वृन्दोवाच—पूर्वं दुर्व्याससा दत्तो वरस्तस्यै मंहामुने ।
 इति कात्यायनोवक्त्राच्छ्रुत्मासीन्मया पुरा ।
 त्वया यत्पच्यते देवि तदन्नं मदनुग्रहात् ।
 मिष्टं स्यादमृतस्यर्द्धिं भोक्तुरायुस्करं तथा ।
 इत्याह्वयति तां नित्यं यशोदा पुत्रवत्सला ।
 आयुष्मान्मे भवेत्पुत्रः स्वादुलोभात्तथा सती ॥
 श्वश्र्वानुमोदिता सापि दृष्ट्वा नन्दालयं व्रजेत् ।
 ससखीप्रकरा तत्र गत्वा पाकं करोति च ॥ ५२ अ०

—पद्मपुराणे पातालखण्डे वृन्दावनमाहात्म्ये

तत्रैव—सापि कृष्णं वनं यान्तं दृष्ट्वा स्वगृहमागताः ।

(३८)

सूर्यादिपूजाद्व्याजेन वसुमाहृतये तथा ॥
 वञ्चयित्वा गुरुन्याति प्रियसंगेच्छया वनं ।
 इत्थं तौ बहुयत्नेन मिलित्वा स्वगणैस्ततः ॥
 विहारैर्विविधैस्तत्र वन विक्रीडते मुदा ॥
 तत्रैवाग्रे—सा तु सूर्यगृहं गच्छेत्सखीमण्डलसंयुता ।
 कियद्दूरं ततो गत्वा परावृत्य हरिः पुनः ।
 विप्रवेशं समास्थाय याति सूर्यगृहं प्रति ।
 सूर्यं प्रपूजयेत्तत्र प्रार्थितस्तत्सखीजनैः ॥
 प्राक्—पुनश्च सारिकावाक्यैः स्वतल्पादुदतिष्ठतां ।
 गच्छतः स्वस्वभवनं भीत्युत्कण्ठाबुलौ ततः ॥
 आत्मनः सदृशाकारं राधामन्यां ससर्ज सा ।
 या सा तु कृत्रिमा राधा वृषभानुगृहे सदा ॥
 अयोनिसम्भवा या तु पद्मिनी सा पराक्षरा ।
 कृत्रिमा या महेशानि तस्यास्तु चरितं शृणु ॥
 वृषभानुर्महात्मा स तस्या वैवाहिकी क्रियां ।
 कारयामास यत्नेन पञ्चवर्षे तु सुन्दरि !
 तस्यास्तु चोभयं वंशं सावधाना बधारय ।
 श्वसुरस्य वृकस्यापि वंशं परमसुन्दरं ॥
 श्वश्रुस्तु जटिलारुयाता पतिर्मन्योऽभिमन्युकः ।
 ननान्दा कुटिलानाम्नी देवरो दुर्मर्दाभिधः ॥

—वासुदेवरहस्ये राधातन्त्रेऽष्टमपटले

लोपिता कुलमर्यादा रासकेलिपराक्रमा ।
 स्वकामा तु महातेजा ब्रह्मरूपधरा वरा ॥
 ऊर्जिता वेदमर्यादा निर्मला तनुगर्बिता ।
 आभीरनागरी कन्या कामिनी कृष्णयोषिता ॥

—धृतनिम्बार्कीयस्तोत्ररत्नहारे-गौतमतन्त्रे
 कृष्णप्रोक्तराधिका न्तवराजे ॥

(३६)

ततो मया ताः सर्वा निभाल्य राधा कथं न दृश्यते इत्युक्ते
तुंगविद्ययोक्तं—गोकुलयुवराज ! सा खलु सप्रणयं आर्यया
जटिलया कस्यचिद्गृहकार्यविशेषस्य कृते रक्षिता गृहे विद्यते ।

—विरक्तचूडामणिजीदासगोस्वामोपादेन मुक्ताचरिते ।

कलशानवनीतचोरे कमलादृक्कुमुदचन्द्रिकापूरे ।

विहरतु नन्दकुमारे चेतो मम गोपसुन्दरीजारे ॥

—कर्णामृते—(२।७१) ।

बालोऽपि शैलोद्धरणाग्रपाणि

नीलोऽपि नीरन्ध्रतमः प्रदीपः

धीरोऽपि राधानयनावबद्धो

जारोऽपि संसारहरः कुतस्त्वम् ॥ कर्णामृते २।७३

संकेतोक्तकोकिलादिनिनन्दं कंसद्विषः कुर्वतो

द्वारोन्मोचनलोलशंखबलयक्वाणं मुहुः शृण्वतः ।

केयं केयमिति प्रगल्भजरतीवाक्येन दूनात्मनो

राधा प्रागणकोणकोलिबिटपिक्रोडे गता शन्बरी ॥

—पद्यावल्यां धृतउपपत्ति-उदाहरणे उज्वलनीलमणौ

न राधा भर्तारं क्वचिदपि च दृग्भिर्गृहगतं

समद्राक्षान्नित्यं तव सरसमूर्तिं विलिखति ।

तवाप्येतद्वद्बो बहति रुचिरां तत्प्रतिकृतिं

ततः कृष्ण प्रेम्णाहमपि बिदधे दौत्यमखिलं ॥

अथालम्बनसंग्रहः

शान्ते ब्राह्मण एव स्यात्प्रीते दासः प्रकीर्तितः ।

प्रेयसि स्युः सखायो हि यशोदा बत्सले स्मृता ॥

मधुरे राधिका ज्ञेया हास्ये स्यान्मधुमङ्गलः ।

सखीयूथोऽद्भुते ज्ञेयो वीरे चारणगोवृषाः ॥

(४०)

करुणो वत्सवृक्षादिः जटिलाद्यागु रौद्रके ।
 गोवर्द्धनोऽभिमन्युश्च भयानक उद्गीरतौ ॥
 तपस्विन्यादयो ह्यत्र वीभत्से परिकीर्त्तिताः ।
 ब्रजस्था नियता ज्ञेया आलम्बनविभावकाः ॥
 धृतोच्चलनीलमणिटीकायां नारायणभट्टपादविरचितायां

—भक्तिरसतरङ्गिण्याम् ॥

शुनह नागर कान । राजकुमारि राधिका नाम ।
 जटिलावधू नवीन बालि । अपन सो भावे कर खेयालि ॥
 रस न परशे ताकर अङ्ग । कै सने होयब तोहर रङ्ग ॥
 भने विद्यापति न शुने नीत । ता बिनु कानू की धरब चीत ॥
 —विद्यापतिजी

जागल शाश चलत तब कान ।

ना पूरल आश विद्यापति भान ॥ विद्यापतिजी
 शाशु घुमा ओत कोरे आगोरि ॥ इति पद्ये—
 जटिला शाश, फुकरि तहि बोलत बहुरि बेरि काहे थाढ़ि
 ललिता कहत अमङ्गल शुनल ॥

—विद्यापति जी ॥

जटिला जाइया आनिल धरिया आपन बधूर हाते ।
 बसिला हरपे देयाशिनी पाशे घुचाये वसन माथे ॥
 आनंदे देयाशिनि बले शुभवाणी सब सुलक्षणयुता ।
 गन्धर्व पावनी जगत तारिणी राधा नाम भानुसुता ॥

—चंडीदास जी

गुरु गुरुजन दूरे तेयागिनु पति छुर धार ताय ।
 कानुर पिरोति किरीति करिनु कलंक ए लोके गाय ॥

—ज्ञानदाम जी

गृहे गुरुजन स्वामि तरजन जा लागि ना दिनु काणे ।

(४१)

एखन की लागि से जन आमारे ना चाहे नयन कोणो ॥
—ज्ञानदास जी

कह लहुलहु जटिलार बहू तोमारे सभाइ जाने ।
कहिते कहिते अनेक कहिछ एतना गरब केने ॥

—ज्ञानदास जी
एइ मने बले दानी हैयाछ कान्हाई छुडते राधार अङ्ग ।
राखाल हइया राजकुमारी सने ना जानि किसेर रङ्ग ॥

—ज्ञानदास जी
घर हेन नहे मोर घरेर बसति । बिष हेन लागे मोर पतिर पिरीति
बिरले ननदी मोर यतेक बुझाय । कानुर पिरीति बिनु आन नाहि
भाय ॥

—ज्ञानदास जी

निज पतिर बचन येन शेलेर घा ।
तार आगे दांढाइते भये काँपे गा ॥
ताहे आर ननदिनी करे अपमान ।
तोहे छार पिरीति लागि राखियाछि प्राण ॥

—बलरामदास जी

एक दिन आयान आइल घरे ।
कालिया देखिनु तारे, बन्धु बलि ताहारे सम्भाषि ॥
आमार आरति देखिया आयान मुखे कापड़ दिया हांसि
बन्धुयार भरमे आयानेर सने मनेर कथाटी कह ॥ इत्यादि
—ज्ञानदास जी

तुरित हिं करह पयान ।
राई जागाइ लेह निज मन्दिरे निकटहि होयत बिहान ।
शारी शुक् पिक् सकल पक्षिगण तुहँ सब देह जगाई ।
जटिला गमन सब हुं मेलि भागई शुनइते जागत राई ॥

(४२)

निशि अबशेष जागि सब सखी गण

—पद में गोविन्ददास जी

अतद्ब्रता परगामिनि परकीयेति मता च ॥

वसुरी मुनि देखन दौरि चली जमुना जल के मिस बेगा तवै
 कवि देव सखी के संकोचन सों करि उठ सु औसर को वितवै
 वृषभानुकुमारी मुरारी की और विलोचन कोरिन सों चितवै
 चलिवेको धरै न करै मन नैकु बडै फिर फेरि भरे रितवै ॥

—देवकवि: परकीया प्रौढ़ा विदग्धा उदाहरणं

मासु ननद घर त्रास देखावै ।

तुम कुलवधू लाज नहि आवति बारबार यह कहि समुझावे
 कबही गई न्यान तुम यमुना यह कहि कहि रिस पावै ।

राधा को तुम संग करति हो ब्रज उपहास उड़ावै ॥

वे हैं बड़े महर की बेटी तौ एसी कहवावै ।

सूनहु सूर यह उनकि फावै ऐसी कहति डरावै ॥

—सूरदास जी

मेरो मन गोपाल हरचोरी ।

चितवत हि उर पैठि नैन मन ना जानों धौं कहा करचोरी ॥

माता पिता पति बन्धु सजन जन सखि आंगन सब भवन भरचोरी
 लोकवेद प्रतिहार पहरुआ तिनहुँ पै राख्यो न परचोरी ॥

धर्म धीर कुलकानि कुंचाकर तेहि तारौ दे दूरि धरचोरी

पलक कपाट कठिन उर अन्तर इते हु जतन कछु वै न सरचोरी ॥

बुधि विवेक बल सहित सच्योपचि सुधन अटल कबहुँ न टरचोरी

लियो चुराइ चितै चित सजनी सूरसो मो तन जात जरचोरी ॥

—सूरदास जी

श्याम यह तुम सों क्यौ न कहौं ।

जहा तहां घर घर को घेरा कौन भाँति सहौं ॥

पिता कोपि करवाल लेत कर बंधु वधन को धावै ।
माता कहै कन्या कुल को दुःख जनि कोऊ जग जावै ॥

—सूरदास जी

जाति महति पति जाइ न मेरी अरु परलोक नशाईरी ।
गिरिधर बर नैक न छाँडौ मिलि निशान बजाईरी ॥
बहुरि कबहि यह तनु धरि पै हों कहा पुनि श्रीवनवारी री
सूरदास स्वामी के उपर यह तन डारौ वारी री ॥

नन्दलाल सों मेरो मन मान्यो कहा करेगो कोई री । इस
—पद में

एक राधा दुसरी व्याही जानि जिय नागरी पाश आवत लजाही
नैन टहराई टहराई पुनि पुनि रहै कहै नहि कछु हरपत डराही ॥

नागरी चरित पिय चकित भारी—पद में—सूरदास जी ।
गइ ज्ञाति अभिमान मोह मद पति परजन पहिचानि ।
सूर सिन्धु सरिता मिलि जैसे मनसा बुंद हिरानि ॥
विकानी हरि मुख को मुसकानि—पद में—सूरदास जी ।

यां को घूँवट पट न उधारौ ।
परत्रिय देखि अनिति करौ तुम नइ नइ रिति निकारौ ॥
बड़े महारि की पुत्र बधू है नैक तो बात विचारौ ।
भले बुरे की लाज न तुमको मन भावति करि पारौ ॥
दधि गौरस पैदा न लागवत मानो राज तिहारौ ।
नारायण हैं कोन हमारे मग को रोकन हारौ ॥

—नारायणस्वामी जी

सखी मोहि योही करों वदनाम ।
में घर सों बाहर नहि निकसी नैनन देखे स्याम ॥
पीठी पिछार करौ तुम चरचा लै लै मेरौ नाम ।

श्री जी बचन सखी प्रति नारायण स्वामी ॥

(४४)

मोहन बसि गयो मेरे मन में ।

लोक लाज कुल कान छूट गई या की लगन लगन में ॥

श्री जी वचन सखी प्रति नारायण स्वामी ॥

जमुना तीर कान्ह डोलै है ।

भेद भरी बाँसुरी पै मोहिं बोले है ॥

सासु डरन साँस भरां छतियाँ छोलै है ।

प्राण प्यासे आनन्द घन हिं मिलवै को लै हे ॥ पद ७५

विरही कृष्ण-

राधा राधा दीसै स्यामैं घर राधा वन राधा ।

चायनि भरि गाय नि लै निरुसत दुरि मिलये की साधा

ब्रज बसि कैसैं वनत कुलीननि लोकलाज गुरुजनकी बाधा
आनन्दघन चातकलौं जीवत रसवस प्राण समाधा ॥ पद १०२

प्रेम परावधि ब्रजबधू सुनि बंसी धुन मन्द ।

तंजत भई सब सकुच तब भजत भई ब्रजचंद ॥

आरज पथ भूली भले बिस परी हित फंद ।

ब्रज मोहन मन मोहिनो, पूरन प्रेम अमन्द ॥

पद ६८

-कृपाकंद निबंध

मेरी ननंदा री कहि कहा करौं ।

तेरे वीरन परदेस विरमि रहे फागुन के दिन कैसे भरौं ॥

इत ब्रजमोहन होरी गावै मुरली धुनि सुनि सिथिल परौं ।

आनंद घन मोही पै यमड्यो रीकि लाज सौं कौ लौं अरौं ॥

पद ४७६

दुरजन बाहिर गुरुजन घर में ।

लाल गरचारै बोल सुआयो प्राण परे अरवर में ॥

पद १६८

(४५)

गुरुजन गखन वोल् । गृहपति गरजन बोर ॥
 गणई ते गोप किशोरी । गहन गेश्रो गृह छोड़ि ॥
 गोविन्द गुणवती सोई । गुनि गुनि यामिनि रोई ॥

—गोविन्ददामजी

विषेर अधिक विष पाप ननदिनी
 दारुण शाशुड़ी मोर ज्वलन्त आगुनि ॥
 शाणान लुरेर धार स्वामी दुरजन ।
 पाँजरे पाँजरे कुलबधूर गंजन ॥
 बंधु तोमार कि बलिब आन ।
 जे बलु से बलु लोके तुमि से पराण ॥

—बलरामदासजी

जटिला शुनिया आनाये डाकिया यतन करिया कैल ।
 बधूरे साजाआ गावी घृत लैया तुरिते ताहां इ चल ॥
 ए सब वचने सब सखीगणे राई र आनन्द होय ।
 से हेन नागर गुणेर सागर दरश हईवें मोय ॥

—यदुनन्दनदासजी

रायान चतुर बड सदा माथा ठाड ।
 मायेर सने आइला बने करिते कथा दद ॥
 हरिष विषाद मने भाल मन्द गुण ।
 राईर रीति बुझिते तथि बसिला मण्डप कोण ॥
 शाशुड़ी आडे जानि भये भीत भेल धनी ॥

सूर्य पूजा में—कविशेखरजी

घरही घर घेरुकरै घरि हाई नै नांब धरें सब गांवरी री
 तब ढोल दै दै बदनाम कियौ अब कोन की लाज लजांवरी री
 कवि ठाकुर नैनसो नैन लगै अब प्रेम सों क्यों न अघांवरी री
 अब होन दै बीस विसैरी हँसी हिरदै वसी मूरति सांवरी री ॥

—कविठाकुरजी

(४६)

एक दिना मुरली धुनि में रसखानि लियो उन नाम हमारौ
ता दिन ते यह वैरिनि सासु सुभावन देत नहीं निज द्वारौ
होत चवाय बलाय सों आलि हि जो मिलि भेटिये नंददुलारौ
ढीठ परे हि लगो चटकौ खटकौ हियरे पियरे पटवारौ-रसखानि

शुश्रूषन्त्यः पतिन्काश्चिदशनन्त्योऽपास्य भोजनं ।

ता वाय्यमाणाः पतिभिः पितृभि भ्रातृबन्धुभिः ॥

गोविन्दापहृतात्मानो न न्यवर्त्तन्त मोहिताः ।

अन्तर्गृहगताः कारिचद्गोप्योऽलब्धविनिर्गमाः ।

कृष्णं तद्भावनायुक्ता दध्युमीलितलोचनाः ।

“तमेव परमात्मानं जारबुद्ध्यापि संगताः ॥

जहृगुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीणबन्धनाः ।”

“मातरः पितरः पुत्रा भ्रातरः पतयश्च वः ।

विचिन्वन्ति ह्यपश्यन्तो मा कृद्वं बन्धुसाध्वसं ।”

“भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मो ह्यमायया ॥”

“दुःशीलो दुर्भगो बृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा ।

पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी ॥

अस्वर्ग्यमयशस्यं च फल्गु कृच्छ्रं भयावहं ।

जुगुप्सितं च सर्व्वत्र औपपत्यं कुलिस्त्रियाः ॥”

“स कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्त्ताभिरदिता

प्रतीपमाचरद्ब्रह्मन्परदाराभिमर्षणम् ॥

आप्तकामो यदुपतिः कृतवान्यै जुगुप्सितं ।

किममिप्रायं एतं नः संशयं छिन्धि सुव्रत ॥

—दशमे—रासपंचाध्यायेषु

रागोल्लासविलङ्घितार्यपदबीबिश्रान्तयोऽप्युद्धुर

अद्वारज्यदरुन्धतीमुखसतीवृन्देन वन्द्ये हि ताः

(४७)

आरण्या अपि माधुरी परिमलव्याक्षिप्तलक्ष्मीश्रियः
स्तास्त्रैलोक्यविलक्षणा ददतु वः कृष्णस्य सख्यः सुखं ॥
—उज्ज्वलनीलमणौ परकीयायाः।

कात्यायनीकुसुमकामनया किमर्थं
कान्तारकुक्षिकुहरं कुतुकादगतासि ।
सद्यस्तनं स्तनयुगे तव कण्टकाकं
पत्युः स्वसा सखि सशंकमुदीक्षतेऽसौ ॥ तत्रैव परोढायाः ।
विस्त्रध्वा सखि धूलिकेलिषु पटासंघीतवक्षः स्थला
बालासीति न बल्लवस्तव पिता जामातरं मृग्यति
त्वंतु भ्रान्तविलोचनान्तमचिरादाकर्ण्य वृन्दावने
कूजन्तीं शिखिपिच्छमौलिमुरलीं सोत्कम्पमाधूर्णसि ॥

—उज्ज्वलनीलमणौ कन्यायाः

“ मत्कामा रमणं जारमस्वरूपविदोऽवलाः ” इति

—एकादशस्कन्धे

“ गोपनारीभिरनिशं यत्र क्रीडति कंसहा ” --पद्मपुराणे

“ गो-गोप-गोपवनिनिकरैः परितम् ” --क्रमदीपिकायाम् ।

“ अत्र या गोपपत्न्यश्च निवसन्ति ममालये ”

—बृहद्गौतमीयतन्त्रे

“ विचित्राम्बरभूषाभिर्गोपनारीभिरावृतम् ”

—श्रीगोपालस्तवे

“ तदिदं मयोक्तमौपपत्येन रासक्रीडादिमुखमेवेत्यर्थः । विवाहेन
पतित्वे रासक्रीडादिमुखविशेषो न संपद्यत इति भावः । सतीः हे
सत्य इति औपपत्येऽपि यूयं सर्वथा साध्य एव, मदेकमात्रनिष्ठ-
त्वादिति भावः । तत्त्वतोऽनौपपत्यात् । विवाहिताभ्योऽप्यधिक-
प्रियत्वात् ।

—श्रीभाग० १०।२२।२६-२७

बृहद्वैष्णवतोषण्यां श्रीसनातनगोस्वामि-
चरणैरुक्तम्

(४८)

अथ ब्रजे प्रकटायाञ्च श्रीकृष्णस्यौपपत्यं नित्यम् । श्रीराधिकादीनाञ्च परकीयात्वं नित्यम् । तयोः स्वरूपेण द्वैविध्यं नास्ति । किन्तु अप्राकृतद्वारे प्राकृतद्वारस्य मिलने स्वयंरूपे श्रीनन्दनन्दने वसुदेवनन्दनादिषु प्रकाशेषु मिलितेषु सत्सु लीलायाः प्राकट्यं भवति ।

—श्रीजीवगोस्वामीपादाः

“औपपत्यस्याप्राकृततत्वेन नित्यत्वात् प्रकटितौपपत्ये”

—धृतसाधनदीपिकायां

मो विषये गोपीगणेर उपपत्ति भावे ।

योगमाया करिवेक आपन प्रभावे ॥

आमिह ना जानि आर ना जाने गोपीगण ।

योगमाया करिवेक सकलि घटन ॥

—श्री चैतन्यचरितामृते

अनेन श्रीकृष्णस्यौपपत्ये श्रीराधिकादीनां परकीयात्वे प्राकृतदृष्ट्या दोषदृष्टिं कुर्वन्तो जना मायावादिन ईव कामानुगाभक्तिनिरतजनैः सर्वथा त्याज्याः ॥

—साधनदीपिकायाम्

“कवे वृषभानुपुरे

आहीरी गोपेर घरे ” ।

तनया हर्षया जनमिव ।

यावटे आमार कवे ।

ये पाणि ग्रहण हवे ।

बसति करिव कवे ताय ॥

—प्रार्थनायां श्रीनरोत्तमठाकुरमहाशयाः

संग्रहिता—

प्रकाशकः



आर्य समाज
वाराणसी, केंद्र
आर्य समाज-३

ॐ श्रीश्रीभगवते गौरचन्द्राय नमः ॐ

“श्रीश्रीराधाकृपाकटाक्षस्तवराजः”

श्रीश्रीविश्वनाथ-चक्रवर्ती-महोदय-विरचितेन
भागवतीय“सारार्थदर्शिनी” टीकान्तर्गत-
राधाकुण्डोत्पत्तिमहिमावर्णननिबन्धेना-
लङ्कृतस्तथा श्रीगोपालस्तवराज-
स्तोत्रेण युगलीकृतः

अर्थसहायक—

अंगूरीदेवी खण्डेलवाल, पत्नी श्रीडाक्टर बाबूलालगुप्ता
लालदरवाजा, मथुरा.

श्रीराधाष्टमी.
सम्बत् २०२४.

प्रकाशक व अनुवादक—
कृष्णदास चावा
(कुसुमसरोवरवाले)
(मथुरा)

मुद्रकः—गौरहरिप्रेस, कुसुमसरोवर, (गवालियरमन्दिर)
[राधाकुण्ड, मथुरा]

ॐ श्री राधिकायै नमः ॐ

श्रीराधाकृपाकटाक्षस्तवराजः

— ❧ —

॥ श्री शिवोवाच ॥

मुनोन्द्रवृन्दवन्दिते त्रिलोक-शोकहारिणि ,
 प्रसन्न-वक्त्रपङ्कजे निकुञ्ज-भू-विलासिनि ।
 ब्रजेन्द्र-भानु-नन्दिनि ब्रजेन्द्र-सुनु-सङ्गते ,
 कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम् ॥१॥
 अशोक-वृक्ष-वल्लरी-वितान-मण्डप-स्थिते ,
 प्रवालवाल-पल्लव-प्रभाऽरुणाङ्घ्रि-कोमले ।
 वराभयस्फुरत्-करे प्रभूत-सम्पदालये ,
 कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम् ॥२॥

हे श्री वृषभानुनन्दिनी श्रीराधे ! हे शुक-नारदादि मुनिश्रेष्ठ
 सभूह से अभिवन्दिते ! हे तीनों लोक के शोक को हरण करने
 वाली ! हे प्रसन्न-मुख कमल वाली ! हे निकुञ्ज-भूमि में विलास
 कारिणी ! आप निरन्तर नन्दनन्दन श्रीहरि के साथ विहार
 कर रही हैं । दयामयी आप कब मुझे अपनी कृपा-कटाक्ष का
 पात्र बनाएंगी ॥ १ ॥

हे राधिके ! अशोक वृक्ष की मनोहर लताओं के द्वारा चँदोआ
 रूप से आच्छादित निकुञ्ज मण्डप में आप विराजमान हैं ।
 हे मूँगा के नवीन कोमल पल्लवों की लालिमा की भाँति कोमल

(२)

अनङ्ग—रङ्ग—मङ्गल—प्रसङ्ग—भङ्गुरभ्रुवां ,
 सविभ्रमं—समभ्रमं दृगन्त-वाण—पातनैः ।
 निरन्तरं वशीकृत—प्रतीति—नन्दनन्दने ,
 कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम् ॥३॥
 तडित्—सुवर्ण—चम्पक—प्रदीप्त-गौर-विग्रहे ,
 मुखप्रभा-परास्त-कोटि-शारदेन्दुमण्डले ।
 विचित्र—चित्र—सञ्चरचकोर—शावलोचने ,
 कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम् ॥४॥

चरण वाली ! हे अभय वर प्रदान में तत्पर शोभमान हस्त कमल वाली ! हे अनन्त सम्पदाओं की आश्रय-रूपिणी ! आप कब अपनी कृपा कटाक्ष का पात्र बनाएंगी ? ॥ २ ॥

कामदेव के महा मङ्गलमय रङ्ग (विनोद) प्रसङ्ग (सम्पर्क) से मनोहर भृकुटियों के नयन कटाक्ष रूप वाणों से विभ्रम तथा संभ्रम के साथ नन्दनन्दन को निरन्तर वश करने की महान् सामर्थ्य (विश्वास) रखने वाली श्रीकिशोरि ! आप कब मुझे अपनी कृपा कटाक्ष का पात्र बनाएंगी ॥ ३ ॥

हे विद्युत्-सुवर्ण तथा चम्पा पुष्प की भाँति देदीप्यमान गौर विग्रह धारिणी ! हे मुख की प्रभा से शरत्-कालीन करोड़ चन्द्र-मण्डल के गर्व को खर्व (पराजित) करने वाली ! हे विचित्र चित्र वाले चञ्चल चकोर पक्षी के शाबकों (बच्चाओं) के समान चञ्चल नेत्र वाली ! हे श्री राधिके ! आप कब मुझे अपनी कृपा कटाक्ष का पात्र बनाएंगी ॥ ४ ॥

मदोन्मदाति—यौवने प्रमोद-मान-मण्डिते ,
 प्रियानुराग-रञ्जिते कला-विलास-पण्डिते ।
 अनन्य-धन्य-कुञ्ज-राज्य-काम-केलिकोविदे,
 कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम् ॥५॥

अशेष—हाव-भाव—धीर—हीरहार-भूषिते ,
 प्रभूतशातकुम्भ-कुम्भ-कुम्भि-कुम्भ-सुस्तनि ।
 प्रशस्त-मन्द-हास्य-चूर्ण-पूर्ण-सौख्यसागरे,
 कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम् ॥६॥

मृणाल—वाल-वल्लरी-तरङ्ग-रङ्ग—दोलते ;
 लताग्र-लास्य-लोल-नील-लोचनावलोकनं ।

हे मद (मत्तता) से अति उन्मत्त नवीन यौवन-वाली !
 हे मानानन्द से विभूषिते ! हे प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र के अनुराग
 से रञ्जिते ! हे अनन्त-कला-विलास की पण्डिते, हे परम श्रेष्ठ-
 दुर्लभ-पवित्र निकुञ्ज राज्य की काम—केलि को जानने वाली
 श्रीराधिके ! आप कब मुझे अपनी कृपा—कटाक्ष का पात्र
 बनाएंगी ? ॥ ५ ॥

हे अशेष हाव—भाव—धीरता रूपी हीरामणि के हारों से
 विभूषिते ! हे विशुद्ध, वर्तुल सुवर्ण कलश तथा मदमत्त हथिनी
 के मस्तक के कुम्भ के समान ऊँचे स्तनमण्डल वाली ! हे मञ्जुल
 मन्दहास्य रूप चूर्ण से परिपूर्ण सुख-समुद्र रूपिणी श्रीराधिके !
 आप कब मुझे अपनी कृपा कटाक्ष का पात्र बनाएंगी ॥ ६ ॥

ललललुलन्मिलन्मनोज्ञ-मुग्ध-मोहनाश्रिते ,
 कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम् ॥७॥
 सुवर्णमालिकाश्रितत्रिरेख-कम्बु-कण्ठगे ,
 त्रिसूत्र मङ्गलीगुण त्रिरत्न-दीप्ति-दीधिति ।
 सलोल-नीलकुन्तल-प्रसून-गुच्छ-गुम्फिते ,
 कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम् । ८॥
 निलम्बविम्ब-लम्बमान-पुष्पमेखलागुणे ,
 प्रशस्तरत्नकिङ्किणी-कलाप-मध्य-मञ्जुले ।

हे जल की तरङ्गों से हिलती हुई कमल-नाल की वाललता की भाँति सुन्दर भुजवाली ! हे नृत्यशील, चञ्चल लता के अप्रभाग की नीलता की भाँति नील-नयनों से दृष्टिपात करने वाली ! हे मिलते जुलते और प्रेमाकृष्ट अति मनोहर मोहित-मनमोहन की आश्रिते श्री राधिके ! आप कब मुझे अपनी कृपा-कटाक्ष का पात्र बनाएंगी ॥ ७ ॥

हे स्वर्ण-मालाओं से युक्त त्रिरेखा से सुशोभित कम्बु (शङ्ख) कण्ठवाली ! हे मङ्गल गुण वाले त्रिवली सूत्र तथा त्रिरत्न (हीरा-मोती-माणिक्य) अथवा चन्द्रकान्त-इन्द्रकान्त-वैदूर्य नामक मणित्रय की मालाओं की दीप्ति से दीप्तवती ! हे दोलायमान नील-कुन्तल में प्रसूनों के गुथे हुए गुच्छों को धारण करने वाली राधिके ! आप कब मुझे अपनी कृपा कटाक्ष का पात्र बनाएंगी ॥ ८ ॥

हे वृषभानुनन्दिनी ! हे नितम्बभाग में मनोहर पुष्परचित लम्बायमान रञ्जुवत् मेखला (कौंधनी) वाली ! हे मध्यभाग में बीच बीच में प्रशस्त रत्न किङ्किणी (रत्नजटित क्षुद्र घण्टिका)

करीन्द्रशुण्डदण्डिका— वरोहसोभगोरुके ,
 कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम् ॥६॥
 अनेक-मन्त्रनाद—मञ्जु—नूपुरारवस्खलत् ,
 समाल—राजहंस—वंश—निक्वणातिगौरवे ।
 विलोल-हेम—बल्लरी-विडम्बिचारुचङ्क्रमे ,
 कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम् ॥१०॥
 अनन्त-कोटि-विष्णुलोक-नम्र-पद्मजार्चिते ,
 हिमाद्रिजा- पुलोमजा—विरिञ्चिजा—वरप्रदे ।
 अपार-सिद्धि-ऋद्धि-दिग्ध सत्पदाङ्गुलिनखे,
 कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम् ॥११॥

समूह के संयुक्त से अत्यन्त मनोहर शोभा को धारण करने वाली ! हे हस्तिराज की सूँड की तरह सुडौल शौभाग्यशील मनोहर जाँघें वाली श्री राधिके ! आप कब मुझे अपनी कृपा-कटाक्ष का पात्र बनाएंगी ? ॥ ६ ॥

हे कृष्णशौभागिनी राधिके । आपके चरणों में अनेक मोहनमन्त्र मोहन नादों से भी मञ्जुल (मनोहर) नूपुरों के शब्द गौरव विद्यमान हैं, जिस से समस्त राजहंस वंश के महामनोहर शब्दावली तिरस्कृत हो जाती है तथा चरण-गति से चञ्चल सुवर्ण-लताओं की दोलायमान गति भी लज्जित होती है । हे एतादृशी कृष्णप्रिये श्री किशोरि ! आप कब मुझे अपनी कृपा-कटाक्ष का पात्र बनाएंगी ॥ १० ॥

हे राधिके ! आप के नख-कमल की छटा को अनन्त कोटि

मलेश्वरि क्रियेश्वरि स्वधेश्वरि सुरेश्वरि ,
 त्रिवेद-भारतीश्वरि प्रमाण-शासनेश्वरि ।
 रमेश्वरि क्षमेश्वरि प्रमोद-काननेश्वरि ,
 ब्रजेश्वरि ब्रजाधिपे श्रीराधिके नमोऽस्तु ते ॥१२॥
 इतीममद्भुतं स्तवं निशम्य भानुनन्दिनी ,
 करोतु सततं जनं कृपाकटाक्ष-भाजनम् ।

विष्णुलोक नतमस्तक से वन्दना करते हैं । आप तो हिमाद्रिजा (पार्वती) पुत्रोभजा (इन्द्राणी शचीदेवी) बिरिञ्चिजा (सरस्वती जी) को बर देने वाली हो । अनन्त सिद्धि-श्रद्धियाँ तो आपके चरण-कमलों की अँगुली के नख में विद्यमान हैं । हे एतादृश किशोरी जू ! आप कब मुझे अपनी कृपा—कटाक्ष का पात्र बनाएंगी ॥ ११ ॥

हे श्रीराधिके ! हे सब प्रकार के यज्ञकर्म की स्वामिनि ! हे समस्त कर्म की स्वामिनि ! हे आत्म-समर्पण कारी स्वधा-शक्ति की मूलरूपा ! हे समस्त देवताओं की ईश्वरा ! हे ऋक्-यजु-साम इन वेदत्रय तथा वाणी रूपा सरस्वती शक्ति की मूलकारण स्वरूपिणी ! हे प्रमाण—प्रमेयादि समस्त वस्तुओं तथा विधिनियम-शासनादि की मूलाधार रूपिणी ! हे रमा (लक्ष्मी) क्षमा (करुणा-शक्ति) आदि समस्त शक्तियों की मूल स्वरूपे ! हे प्रमोद-दायिनी वृन्दाटवी की अधीश्वरी ! हे ब्रजस्वामिनि श्रीराधिके ! आप को नमस्कार है और पुनः नमस्कार है ॥१२॥

श्रीवृषभानुनन्दिनी राधिका इस अद्भुत राधाकृपाकटाक्ष नामक अपने स्तव को सुन कर निरन्तर स्तम्बनकारी व्यक्ति को अपनी कृपाकटाक्ष का पात्र बनावें । तब तो उस समय एकट्ठे

भवेत्तदैव- सञ्चित- त्रिरूप- कर्म- नाशनं ,
 भवेत्तदा-ब्रजेन्द्र-सूनु- मण्डल-प्रवेशनम् ॥१३॥
 राकार्या च सिताष्टम्यां दशम्यां च विशुद्धधीः ।
 एकादश्यां त्रयोदश्यां यः पठेत्साधकः सुधी ॥१४॥
 यं यं कामयते कामं तं तं प्राप्नोति साधकः ।
 राधाकृपाकटाक्षेण, भक्तिः स्यात् प्रेमलक्षणा ॥१५॥
 उरु-दध्ने नाभि-दध्ने, हृद्-दध्ने कण्ठ-दध्नेके ।
 राधाकुण्डजले स्तित्वा, यः पठेत् साधकः शतम् ॥१६॥
 तस्य सर्वार्थसिद्धिः स्याद् वाक् सामर्थ्यं ततो लभेत् ।
 ऐश्वर्यं च लभेत्साक्षाद्दृशा पश्यति राधिकाम् ॥१७॥

किये हुए सञ्चित-प्रारब्ध-क्रियमाण ये तीनों प्रकार के कर्म नष्ट हो जाते हैं एवं ब्रजराजनन्दन के परिकर-मण्डल में उस स्तवन-कारी का प्रवेश होता है ॥ १३ ॥

जो साधक पूर्णिमा-शुक्लाष्टमी-दशमी-एकादशी-त्रयोदशी इन तिथियों में स्थिरचित्त होकर इस स्तव का पाठ करेगा वह जिस-जिस कामना को चाहेगा उस उस कामना को अवश्य प्राप्त करेगा तथा सर्वेश्वरी श्रीराधा की कृपा-कटाक्ष-पात से उस की प्रेमलक्षणा भक्ति होगी ॥ १४-१५ ॥

श्रीराधाकुण्ड के जङ्घा-नाभि-हृदय-कण्ठ मात्र के जल में स्थित होकर जो साधक इस स्तव को सौ बार पाठ करेगा, उसकी समस्त अर्थसिद्धि होगी । वह वाक्सामर्थ्य तथा परम ऐश्वर्य का लाभ तथा नेत्रों से साक्षात् श्री राधिका का दर्शन

तेन सा तत्क्षणादेव, तुष्टा दत्तो महावरम् ।

येन पश्यति नेत्राभ्यां तत् प्रियं श्यामसुन्दरम् ॥१८॥

नित्य-लीला-प्रवेशं च ददाति हि ब्रजाधिपः ।

अतः परतरं प्राप्यं वैष्णवानां न विद्यते ॥१९॥

प्राप्त करेगा ॥ १६-१७ ॥

श्रीराधिका प्रसन्न होकर उसी समय महान वर का प्रदान करेंगी जिस से वह नेत्रों से उनके प्रिय श्यामसुन्दर का दर्शन कर सकता है और श्रीब्रजनाथ श्रीकृष्ण उस व्यक्ति को अपनी नित्यलीला में प्रवेश करा देते हैं। इस से परतर अन्य कोई वैष्णवों का स्तवराज नहीं है ॥ १८-१९ ॥

॥ शुभं भूयात् ॥



वैकुण्ठाब्जनितो वरा मधुपुरी तत्रापि रासोत्सवाद्

वृन्दारण्यमुदारपाणिरमणात् तत्रापि गोवर्द्धनः ।

राधाकुण्डमिहापि गोकुलपतेः प्रेमामृतस्नावनात्

कुर्यादस्य विराजतो गिरितटे सेवां विवेकी न कः ॥

स्तवावली में—अर्थात्—वैकुण्ठादि से जन्मलीला के कारण मधुपुरी श्रेष्ठ है, मधुपुरी से रासोत्सव के हेतु वृन्दारण्य उत्तम है, वृन्दावन में उदारपाणि श्रीकृष्ण के रमण के हेतु गोवर्द्धन श्रेष्ठ है, पुनः गोवर्द्धन में गोकुलपति के प्रेमामृतस्नान हेतु राधाकुण्ड सर्वोपरि है। अतएव कोन विवेकी गोवर्द्धन तट में विराजमान राधाकुण्ड की सेवा न करे अर्थात् करेगा ही ॥



श्रीराधाकुरुण्डोत्पत्तिवर्णनम्



मास्मान् स्पृशाद्य वृषभार्दन हन्त मुग्धा ,
 घोरोऽसुरोऽयमयि कृष्ण तदप्ययं गौः ।
 वृत्रो यथा द्विज इहास्त्ययि निष्कृतिः किं ,
 शुष्येद्भवतिस्त्रिभुवनस्थिततीर्थकृच्छ्रात् ॥१॥
 किं पर्यटामि भुवनान्यधुनैव सर्वा ,
 आनीय तीर्थविततीः करवाणि तासु ।
 स्नानं विलोकयत तावदिदं मुकुन्दः ,
 प्रोच्यैव तत्र कृववान् वत पाष्णिवातम् ॥२॥

“हे वृषभार्दन ! पवित्र-रूपिणी हम सब ब्रजयुवतियों का स्पर्श मत कीजिये, क्यों कि आज तुमने सबके प्रत्यक्ष वृष (गौ) का वध किया” । इस प्रकार गोपियों का वचन सुन कर श्रीकृष्ण कहने लगे हे मुग्ध-युवतिओं, यह तो बड़ा भारी असुर था । मैंने तो अच्छा ही किया । अनन्तर गोपियाँ कहने लगीं हे कृष्ण ! वह असुर होने पर भी गौ रूप था । जैसा कि वृत्रासुर ब्राह्मण रूप में मौजूद रहा था । गोपियों का इस प्रकार सुखमय वचन श्रवण कर श्रीकृष्ण कहने लगे अच्छा इस दोष का प्रायश्चित्त तो बताइये, तब गोपियाँ कहने लगीं—त्रिभुवन के समस्त तीर्थों में स्नानादि करने पर आप पवित्र हो सकते हैं ॥ १ ॥

अनन्तर गर्व के साथ श्रीकृष्ण कहने लगे—देखिये समस्त तीर्थ में क्यों भ्रमण करेंगे ? वर्तमान हम सब तीर्थों को यहाँ

पातालतो जलमिदं किल भोगवत्या
 आयातमत्र निखिला अपि तीर्थसङ्गाः ।
 आगच्छतेति भगवद्वचसा त एत्य
 तत्रैव रेजुरथ कृष्ण उवाच गोपीः ॥ ३ ॥
 तीर्थानि पश्यत हरेर्वचसा तवैवं ,
 नैव प्रतीम इति ता अथ तीर्थवय्याः ।
 प्रोचुः कृताञ्जलिपुटा लवणाब्धिरस्मि
 क्षीराब्धिरस्मि शृणुतामरदीर्घिकास्मि ॥ ४ ॥
 शोणोऽपि सिन्धुरहमस्मि भवामि ताम्र-
 पर्णी च पुष्करमहश्च सरस्वती च ।

लाकर उन में स्नान करते हैं, ऐसा कह कर आपने पार्ष्णि (ऐंढ़ि) घात से एक मनोहर कुण्ड बनाकर उस में तीर्थों का आवाहन किया ॥ २ ॥

“पाताल से भोगवती का तीर्थजल तथा समस्त तीर्थ यहाँ आओ” इस प्रकार भगवान् के वचन सुन कर वे सब सूक्ष्मः प्रादुर्भूत होकर वहाँ विराजमान हुए, अनन्तर श्रीकृष्ण ने गोपियों से कहा ॥ ३ ॥

ओ ! तीर्थों को तो देखिये । गोपियों ने कहा—हे कृष्ण ! बातों से हम विश्वास नहीं करेंगी । तब श्रेष्ठ समस्त तीर्थ मूर्त्तिमान रूप से प्रकट होकर हाथ जोड़ कर कहने लगे “मैं लवण-समुद्र हूँ, मैं क्षीरसागर हूँ, सुनिये—मैं सुरधुनी गङ्गा हूँ, मैं शोण हूँ, मैं सिन्धु हूँ, मैं ताम्रपर्णी हूँ, मैं पुष्करराज हूँ, मैं सरस्वती

(११)

गोदावरी रविसुता सरयूः प्रयागो
रेवास्मि पश्यत जलं कुरुत प्रतीतम् ॥५॥

स्नात्वा ततो हरिरति प्रजगल्म एव
शुद्धः सरोप्यकरवं स्थितसर्वतीर्थम् ।
युष्माभिरात्मजनुषीह कृतो न धर्मः
कोऽपि क्षितावथ सखीर्निजगाद राधा ॥६॥

कार्यं मयाप्यतिमनोहरकुण्डमेकं
तस्माद्यतध्वमिति तद्वचनेन ताभिः ।

श्रीकृष्णकुण्डतटपश्चिमदिश्यमन्दो
गर्गः कृतो वृषभदैत्यसुरैर्व्यलोकि ॥७॥

हूँ, मैं गोदावरी हूँ, मैं कलिन्दतनया यमुना हूँ, मैं सरयू हूँ,
मैं प्रयाग हूँ, मैं रेवा हूँ, हमारे तीर्थ—जलों को देखिये तथा
विश्वास कीजिये ॥ ४-५ ॥

अनन्तर श्रीहरि उन में स्नान कर अति गर्व के साथ
बोलने लगे कि हम तो अब शुद्ध हो गये हैं। हमने तो समस्त
तीर्थों के विराजमान सरस कुण्ड का निर्माण किया है तुम सब-
ने पृथिवी पर जन्म लेकर अपने इस शरीर से कोई धर्म-कर्म
नहीं किया। श्रीकृष्ण के इस प्रकार वचन सुन कर श्री राधिका
सखियों से कहने लगी ॥ ६ ॥

मैं भी अभी अति मनोहर एक कुण्ड की रचना करूँगी,
अतः तुम सब यत्नशील हो जाओ। इस प्रकार श्री राधा की
चेष्टा को देख कर गोपियों ने श्यामकुण्ड की पश्चिम दिशा में

(१२)

तत्राद्र्मृगमृदुलगोलततीः प्रति स्व—
 हस्तोद्धृता अनतिदुरगता विधाय ।
 दिव्यं सरः प्रकटितं घटिकाद्वयेन
 ताभिर्विलोक्य सरसं स्मरेत स्म कृष्णः ॥ ८ ॥

प्रोचे च तीर्थसलिलैः परिपूरयैतन्
 मत्कुण्डतः सरसिजाक्षि ! सहालिभिस्त्वम् ।
 राधा तदा न न ननेति जगाद यस्मा—
 त्त्वत्कुण्डनीरमुरुगोवधपातकात्तम् ॥ ९ ॥

वृषभ दैत्य के खुरों से किया हुआ सुन्दर गर्ज का अवलोकन किया ॥ ७ ॥

सखियों के देखते हुए उस गर्ज से श्री राधिका ने निज हस्त से गीली मिट्टी, खपरे, कङ्कर आदि निकाल कर श्यामकुण्ड के अनति दूर में दो घड़ी के भीतर मनोहर एक दिव्याति-दिव्य सरोवर का प्रकट किया । परन्तु उस में जल नहीं उठा । उस समय श्रीकृष्ण मन्द—मन्द हँसते हुए आश्चर्यान्वित हुए ॥ ८ ॥

आप कहने लगे हैं कमलनयनि ! मेरे कुण्ड के तीर्थजलों से सखियों के साथ आप अपने कुण्ड को पूरण कीजिये । परन्तु उस समय श्री राधिका नहीं नहीं ऐसा कहती हुई निषेध करने लगी । आप कहने लगी—हे हरे ! आपके कुण्ड का जल गोवध पातक से अत्यन्त युक्त है अतः ऐसा नहीं होगा ॥ ९ ॥

(१३)

आहत्य पुण्यसलिलं शतकोटिकुम्भैः
 सख्यव्बुदेन सह मानसजान्हवीतः ।
 एतत् सरः स्वमधुना परिपूरयामि
 तेनैव कीर्त्तिमतुलां तनवानि लोके ॥१०॥
 कृष्णेङ्गितेन सहसैत्य समस्ततीर्थ —
 सङ्घस्तदीय—सरसो धृतदिव्यमूर्त्तिः ।
 तुष्टाव तत्र वृषभानुसुतां प्रणम्य
 भक्त्या कृताञ्जलिपुटः स्रवदस्रधारः ॥११॥
 देवि ! त्वदीयमहिमानमवैति सर्व—
 शास्त्रार्थविन्न च विधिर्न हरो न लक्ष्मीः ।
 किन्त्वेक एव पुरुषार्थ-शिरोमणिस्त्वत्
 प्रस्वेदमार्जनपरः स्वयमेव कृष्णः ॥१२॥

मैं स्वयं अब्बुद सखियों के साथ शतकोटि घड़ाओं द्वारा
 मानसी गङ्गा से पुण्य जल लाकर अभी इस कुण्ड को पूर्ण
 करूँगी जिससे जगत् में मेरी अतुलनीय कीर्त्ति बढ़ेगी ॥ १० ॥

अनन्तर श्रीकृष्ण के इसारे से उस समय श्यामकुण्ड में
 से समस्त तीर्थ दिव्य मूर्त्ति धारण कर हाथ जोड़ वृषभानुबन्दिनी
 की स्तुति करने लगे तथा अत्यन्त भक्ति के कारण उनके नेत्रों
 से अश्रु धारा बहने लगी ॥ ११ ॥

हे देवि ! आपकी महिमा को समस्त शास्त्रवेत्ता पण्डित-
 गण नहीं जानते हैं । न ब्रह्मा, न देवदेव महादेव, न स्वयं लक्ष्मी
 ही जानती हैं । परन्तु पुरुषार्थ-शिरोमणि रूप, तुम्हारे धर्म-

(१४)

यश्चारुयाचकरसेन भवत्पदाब्ज—

मारज्य नूपुरमहो निदधाति नित्यम् ।

प्राप्य त्वदीय—नयनाब्जतटप्रसादं

स्वं मन्यते परमधन्यतमं प्रहृष्यन् ॥१३॥

तस्याज्ञयैव सहसा वयमाजगाम

तत्पार्श्विधात—कृतकुण्डवरे वसामः ।

त्वञ्चेत् प्रसीदसि करोषि कृपाकटाक्षं

तर्ह्येव तर्पविटपी—फलितो भवेन्नः ॥१४॥

श्रुत्वा स्तुतिं निखिलतीर्थगणस्य तुष्टा

ग्राह स्म तर्पमयि वेदयतेति राधा ।

याम त्वदीयसरसीं सफला भवाम

इत्येव नो वर इति प्रकटं तदोचुः ॥१५॥

जल के मार्जन करने वाले एकमात्र स्वयं श्रीकृष्ण ही जानते हैं ॥ १२ ॥

जो श्रीहरि मनोहर यावक रस से आपके चरण-कमलों को रञ्जित कर नूपुर पहनाते हैं, वे आज आपके नयन-कटाक्ष प्राप्त कर आनन्दित हो अपने को परम धन्यतम मानते हैं ॥१३॥

उनकी आज्ञा से हम सब यहाँ आकर उनके पार्श्विधात के द्वारा निर्मित इस तीर्थवर (श्यामकुण्ड) में निवास कर रहे हैं यदि आप प्रसन्न होकर कृपाकटाक्ष करेंगी तब हम सब की उत्कण्ठा लता फलवती होगी ॥ १४ ॥

अनन्तर तीर्थों की इस प्रकार स्तुति सुन कर श्री राधा प्रसन्ना हो पूछने लगी कि—तुम सब की उत्कण्ठा किस वस्तु में

आगच्छतेति वृषभानुसुता स्मितास्या
 प्रोवाच कान्तवदनाब्ज—वृताक्षिकोणा ।
 सख्योऽपि तत्र कृतसम्मतयः सुखान्धौ
 मग्ना विरेजुरखिला स्थिरजङ्गमाश्च ॥१६॥
 प्राप्य प्रसादमथ ते वृषभानुजायाः
 श्रीकृष्णकुण्डगततीर्थवराः प्रसह्य ।
 भित्त्वेव भित्तिमतिवेगत एव राधा—
 कुण्डं व्यधुः स्वसलिलैः परिपूर्णमेव ॥१७॥
 प्रोचे हरिः प्रियतमे ! तव कुण्डमेतन्
 मत्कुण्डतोऽपि महिमाधिकमस्तु लोके ।

है ? वे सब प्रकाश्य रूप से कहने लगे—आप अपने सरोवर में हम सब को आने की आज्ञा दीजिये, उससे हम कृतकृत्य हो जावेंगे । हम सब की यही प्रार्थना है ॥ १५ ॥

अनन्तर वृषभानुनन्दिनी श्रीराधिका कान्त के वदन कमल में अपने नेत्र कोण फिरा कर, हँसती हुई “तुम सब मेरे सरोवर में आओ” ऐसा कहने लगी । सखियों ने इस विषय में सम्मति दी तथा वे सब सुख-सागर में निमग्ना हो गयीं । उस समय जड़, जङ्गम समस्त सुखसागर में निमग्न होने लगे ॥ १६ ॥

इस प्रकार श्रीमती के आदेश प्रसाद को प्राप्त कर कृष्णकुण्ड-प्राप्त समस्त श्रेष्ठ तीर्थ ने अत्यन्त वेग से हठात् श्यामकुण्ड की भित्ति का भेदन कर निज—जलों से राधाकुण्ड को परिपूर्ण किया ॥ १७ ॥

अनन्तर श्रीहरि कहने लगे हे प्रियतमे ! तुम्हारे यह कुण्ड

(१६)

अत्रैव मे सलिलकेलिरिहैव नित्यं
 स्नानं यथा त्वमसि तद्वदिदं सरो मे ॥१८॥
 राधात्रयीदहमपि स्वसखीभिरेत्य
 स्नास्याम्यरिष्ट—शतमर्दनमस्तु तस्य ।
 योऽरिष्टमर्शनसरस्युरुभक्तिरत्र
 स्नायाद्वसन्मम स एव महाप्रियोऽस्तु ॥१९॥
 रासोत्सवं प्रकुरुते स्म च एव रात्रौ
 कृष्णाम्बुदः कृतमहारसहर्षवर्षः ।
 श्रीराधिकाप्रवरविद्युदलंकृतश्रो—
 स्त्रैलोक्यमध्यविततीकृतदिव्यकीर्त्तिं! ॥२०॥

(साररर्थदर्शिन्याम)

पृथिवी में मेरे सरोवर से महिमाधिक्य प्राप्त करके विख्यात होगा । आपके इस कुण्ड में ही मेरी नित्य जलक्रीड़ा होगी । मैं नित्य इस में स्नान करूँगा । आप जिस प्रकार मेरी अत्यन्त प्रिया हैं ठीक उसी प्रकार यह कुण्ड भी मेरा अत्यन्त प्रिय है ॥ १८ ॥

अनन्तर श्रीराधिका कहने लगी कि—मैं भी निज-सखियों के साथ आ कर इस में नित्य स्नान करूँगी । जो व्यक्ति इस अरिष्ट संसर्गी सरोवर में अर्थात् राधाकुण्ड में अत्यन्त भक्ति रख कर स्नान, निवासादि करेगा वह मेरा परम प्रिय होगा तथा उस के सौ-सौ अरिष्ट नाश होंगे ॥ १९ ॥

इस प्रकार कुण्ड—निर्माण करते हुए उस रात्रि में श्री कृष्णधन ने महारस आनन्द वर्षा करते हुए श्रीराधिका रूप

आदिवाराहे श्रीगोवर्द्धनपरिक्रमे प्रसंगे राधाकुण्डप्राकट्य-
वर्णनम्—

“गङ्गायाश्चोत्तरं गत्वा देवदेवस्य चक्रिणः ।
अरिष्टेन समं यत्र महद् युद्धं प्रवर्तितम् ॥
घातयित्वा ततस्तस्मिन्नरिष्टं वृषरूपिणम् ।
कोपेन पार्थिवघातेन मह्यांस्तीर्थं प्रकल्पितम् ॥
वृषभस्य वधो ज्ञेय आत्मनः शुद्धिमिच्छता ।
स्नातस्तत्र तदा कृष्णो वृषं हत्वा सगोपकः ॥
विपाप्मा राधां प्रोवाच कथं मद्रे ! भविष्यसि ।
वृषो हतो मया चायमरिष्टः पापमूचकः ॥

श्रेष्ठ विद्युत् से अलंकृत होकर रासोत्सव तथा त्रिलोक में
अपनी दिव्य कीर्ति का विस्तार किया ॥ २० ॥



आदिवाराह में श्री गोवर्द्धन-परिक्रमा-वर्णनस्थल में दोनों
कुण्डों की उत्पत्ति का वर्णन इस प्रकार है—

मानसीगङ्गा के उत्तर में जाकर देव—देव चक्रवर का
अरिष्टासुर के साथ महान् युद्ध हुआ । वहाँ हरि ने वृष रूपी उस
अरिष्टासुर को मार कर कोप के साथ पार्थिव-घात के द्वारा
पृथिवी में महान् तीर्थ का प्राकट्य किया । वृषभ का वध हुआ
ऐसा जान कर श्रीहरि अपने को शुद्ध हाने को इच्छा कर सखाओं
के साथ स्नान कर के शुद्ध होकर राधा के लिये कहने लगे—हे

(१८)

तत्र राधा समाश्लिष्य कृष्णमङ्गुष्ठकारिणम् ।
 स्वनाम्ना विदितं कुण्डं कृतं तीर्थमदूरतः ॥
 राधाकुण्डमिति ख्यातं सर्वपापहरं शुभम् ।
 अरिष्टराधाकुण्डाभ्यां स्नानात् फलमवाप्नुते ॥
 राजसूयाश्वमेधाभ्यां नात्र कार्या विचारणा ।
 गोहत्या ब्रह्महत्या च पापं क्षिप्रं प्रणश्यति ॥”

भद्रे ! मैंने वृषभ को मारा नहीं वह तो अरिष्टासुर था अस्तु
 आपके वचनानुसार तीर्थ प्राकट्य कर उस में स्नान कर शुद्ध
 हुआ हूँ । अब आलिङ्गन दीजिये । अनन्तर असाध्य साध्य-
 कारी अद्भुतकर्म श्रीकृष्ण को आलिङ्गन दे श्रीराधिका ने अदूर
 में निजनाम से विख्यात कुण्ड की रचना की , जो कि राधा-
 कुण्ड इस नाम से प्रसिद्ध हुआ है तथा समस्त पापों का हरण
 करने वाला परम शुभमय है । इन दोनों श्रीश्यामकुण्ड-राधाकुण्ड
 में स्नान करने से समस्त फल मिलते हैं । राजसूय-अश्वमेध की
 प्राप्ति तो कुछ भी नहीं है । गोहत्या, ब्रह्महत्यादि पाप क्षीघ्र ही
 नष्ट हो जाते हैं ॥



॥ अथ श्रीगोपालस्तवराजो लिख्यते ॥

ओमस्य श्रीगोपालस्तोत्रमन्त्रस्य नारद ऋषिरनुष्टुप्-
छन्दः, श्रीकृष्णः परमात्मादेवता, श्रीकृष्णप्राप्त्यर्थं
जपे विनियोगः ॥

अथ ध्यानम् ॥

सजलजलदनीलं दर्शितोदारशीलं
करतलधृतशैलं वेणुवाद्ये रसालम् ॥
व्रजजनकुलपालं कामिनीकेलिलोलं
तरुणतुलसीमालं नौमि गोपालबालम् ॥१॥

श्री नारद उवाच

नवीननोरदश्यामं नीलेन्दीवरलोचनम् ॥
वल्लवीनन्दनं वन्दे कृष्णं गोपालरूपिणम् ॥१॥
स्फुरद्बर्हदलद्वन्द्व-नीलकुञ्चितमूर्धजम् ॥
कदम्बकुसुमोद्भासि-वनमालाविभूषितम् ॥२॥
गण्डमण्डलसंसर्गि-चलत्काञ्चनकुण्डलम् ॥
स्थूल-मुक्ताफलोदार-हारोद्योतितवक्षसम् ॥३॥
हेमाङ्गदतुला-कोटि-किरीटोज्ज्वल-विग्रहम् ॥
मन्द-मारुत-संचोभि-वलिताम्बर-सञ्चयम् ॥४॥
रुचिरौष्ठपुटन्यस्त-वंशीमधुर-निस्वनैः ॥
लसद्गोपालिकाचेतो मोहयन्तं मुहुर्मुहुः ॥५॥

(२०)

वल्लवी-वदनाम्भोज-मधुपान-मधुव्रतम् ॥
 क्षोभयन्तं मनस्तासां सस्मेरापाङ्गवीक्षणैः ॥७॥
 यौवनोद्भिन्नदेहाभिः संसक्ताभिः परस्परम् ॥
 विचित्राम्बर-भूषाभिर्गोपनारीभिरावृतम् ॥८॥
 प्रभिन्ना ज्वनकालिन्दी-जलकेलिकलोत्सुकम् ॥
 योधयन्तं कचिद्रोपान् व्याहरन्तं गवां गणम् ॥९॥
 कालिन्दीजलसंसर्गि-शीतलानिलकम्पिते ॥
 कदम्बपादपच्छाये स्थितं वृन्दावने क्वचित् ॥१०॥
 रत्नभूधरसंलग्न-रत्नासनपरिग्रहम् ॥
 कल्पपादपमध्यस्थं हेममण्डपिकागतम् ॥११॥
 वसन्तकुसुमामोद-सुरभीकृत-दिङ्मुखे ॥
 गोवर्द्धनगिरौ रम्ये स्थितं रासरसोत्सुकम् ॥१२॥
 सव्यहस्ततले न्यस्त-गिरिवर्यातिपत्रकम् ॥
 खण्डिता-खण्डलोन्मुक्त-मुक्तासारघनाघनम् ॥१३॥
 वेणुवाद्यमहोल्लासकृतहुङ्कार-निस्वनः ॥
 सवत्सैरुन्मुखैः शश्वद्गोकुलैरभिवीक्षितम् ॥१४॥
 कृष्णमेवानुगायद्भिस्तच्चेष्टा-वशवर्त्तिभिः ॥
 दण्डपाशोद्यतकरैर्गोपालैरूपशोभितम् ॥१५॥
 नारदाद्यैर्मुनिश्रेष्ठैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥
 प्रीति-सुस्निग्धया वाचा स्तूयमानं परात्परम् ॥१६॥

य एवं चिन्तयेद्देवं भक्त्या संस्तौति मानवः ॥
 त्रिसन्ध्यं तस्य तुष्टोऽसौ ददाति वरमीप्सितम् ॥१७॥
 राजवल्लभतामेति भवेत्सर्वजनप्रियः ॥
 अचलां श्रियमाप्नोति स वाग्मी जायते ध्रुवम् ॥१८॥
 इति श्रीगौतमीयतन्त्रोक्तगोपालस्तवराजः सम्पूर्णः ॥



॥ श्रीनवगोविन्ददेवो जयति ॥

अथ गोपालस्तवराजभाषा लिख्यते ।



नव नीरद घन स्याम धाम अभिराम विहारी ।
 नीलेंदीवर नैन वैन रस ऐन जु भारी ॥
 गोपी सुत जुत ललित लील जग प्रगट अघट जस ।
 वर अनूप रस भूपन महुँ गोपाल रूप अस ॥
 रुचिर रचित सुचि चिकुर सीस घुंघरारे कारे ।
 मोर पुच्छ की स्वच्छ लसन कवि वरनत हारे ॥
 सुशम कुसम वर नीपजुक्त बनमाल विराजे ।
 कुंडल लोल अमोल कपोलनि अति छवि छाजे ॥
 मुक्ताहार उदार चारु उर लसत शुभग हृद ।
 कंचन रचित किरीट सुसोमित नूपुर अंगद ॥
 मन्द पवन बस विवस चारु चय चीर चलत भल ।
 सघर अघर पुट न्यस्त बांसुरी रुचिर मधुर कल ॥
 जिहँ रव सौ आनंद कंद ब्रज नंद नंद सुत ।
 बार बार गोपाल नारि चित करत मोह जुत ॥

बाला वदन सरोज सुधा रस पान करत अस ।
 प्रेमी परम प्रवीन मनोहर मत्त भ्रमर जस ॥
 तिन के मन रस विवस बहुरि जुत छोभ कराहीं ।
 मृदु मुसकानि जुत बंक विलोकनि में सचु पाहीं ॥
 नव जीवन जुत अंग प्रेम रस रंग परसपर ।
 भूषन सोभित गात बहुरि निरदूषन अंबर ॥
 अस गोपिन मधि वसत कबहुँ इमल सत गुपाल ।
 उमड़ि घिरथी घन घमड़ि सुजिम बिच दामिन जल ॥
 कबहुँ जमुन जल लाल कबहुँ वर मित्रनि माँहीं ।
 जुद्ध केलि रस मेलि करही अति सचु पाहीं ॥
 नंदलाल गोपाल हरन-दुख वर सुख-कारी ।
 टेरहि गाइनि कौं जु कबहुँ भरि चाइनि भारी ॥
 कंपित धृंदात्रिपिन जमुन जल परस अनिल बल ।
 अमल कदम की विमल छांह जिह माह लसत भल ॥
 ता में नव गोविन्द चंद नव नागर नगधर ।
 लसत कबहुँ सुख साज सुखद ब्रजराज कुंवरवर ॥
 रतन जटित गिरि निकट प्रगट रत्नासन माँही ।
 कंचन मंडप माँहि कबहुँ जैह सुर द्रुम छाहीं ॥
 गिर गोवर्दन माँहि जहाँ निमि द्यौस अमित सुख ।
 सुसम वसंत कुसुम सरस सत करत दिसा सुख ॥
 ता में कबहुँ कसत लसत हिल अति सचु पावत ।
 रास रसोत्सुक रसिक रंगोलौ रस वरसावत ॥
 कबहुँ छत्र सम वाम हाथ नग नग धर धरि अति ।
 दूरि किये जल-धार कूर मति प्रेरित सुरपति ॥
 ललित बैन मुख गलित नाद सुनि वर हुंकार करि ।
 वत्स सहित हित चाथ नैत्रिकी निरख रहैं हरि ॥

हरि ही कौं करि गान प्रेम भरि राखत हिय कौं ।
 हरिलीला अनुकरन लेत सुख देत जु जिय कौं ॥
 दंड पास परकास सु जिन गोपन के हाथन ।
 अधिक सुशोभित कबहुँ जु नग धर तिनके साथन ॥
 नारदादि मुनि वृंद वेद वेदांग सार पार गत ।
 बचन रचन जुत प्रीति रीति जिहि गान करहि नित ॥
 इहि विधि जे चितवनि करत भक्ति युत देववर ।
 नित प्रति ही स्तुति करत दिवस निसि चाय भाय भरि ॥
 तिन कौं नव गोविंद चंद रस कंद सुनहु मल ।
 लेत तुरित अपनाय देत पुन वर वांछित फल ॥
 मानि मानि सनमान तिन्है नित राज सभा महि ।
 जगजन के प्रिय जानि होय अपमान कबहुँ नहि ॥
 तिन भक्तनि में बसै चंचला लसै अचल अति ।
 वावढूक रसवंत अंत पुन लहै परमगाँत ॥
 संतनि की सिख पाय सु रिष गौतम के पायन ।
 करि प्रकास नति रास भाय भरि दरि वरचायन ॥
 गोपाल स्तवराज की जु भाषा हु जथा मति ।
 श्री वृंदावन चंद दास लै रची रुचिर अति ॥
 जो नर याहि जु पढै रढै नित बढै खेम सौं ।
 कढै अंग दुति बढै रंग अंगन मढै प्रेम सौं ॥

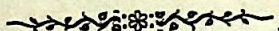
इति श्रीवृंदावनदासजी कृत

गौतमीय—तंत्रोक्त गोपाल स्तवराजकी—

भाषा सम्पूर्णः



॥ युगलाष्टकम् ॥



कृष्णप्रेममयी राधा राधा—प्रेममयो हरिः ।
 जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम ॥१॥
 कृष्णस्य द्रविणं राधा राधाया द्रविणं हरिः ।
 जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम ॥२॥
 कृष्णप्राणमयी राधा राधाप्राणमयो हरिः ।
 जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम ॥३॥
 कृष्णद्रवमयी राधा राधाद्रवमयो हरिः ।
 जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम ॥४॥
 कृष्णगेहे स्थिता राधा राधागेहे स्थितो हरिः ।
 जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम ॥५॥
 कृष्णचित्स्थिता राधा राधाचित्स्थितो हरिः ।
 जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम ॥६॥
 नीलाम्बरधरा राधा पीताम्बरधरो हरिः ।
 जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम ॥७॥
 वृन्दावनेश्वरी राधा कृष्णो वृन्दावनेश्वरः ।
 जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम ॥८॥

इति श्रीजीवगोस्वामिना विरचितं

श्रीश्रीयुगलाष्टकं सम्पूर्णम् ॥



